श्री ब्रह्मगुलाल चरित

(कविवर छत्रपति रचित)

सम्पादक

बनवारीलाल स्याद्वादी

प्रकाशक

जैन साहित्य प्रकाशन संस्था

२२००, गली भूत वाली, दिल्ली

प्रकाशक

जैन साहित्य प्रकाशन संस्था

२२००, गली भूनवाली, दिल्ली

मुद्रक

नया हिन्दुस्तान प्रेस,

चाँदनी चौक, दिल्ली
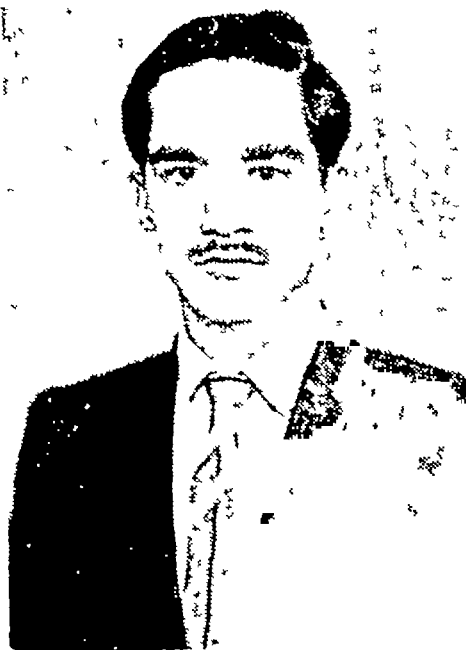
चि० निर्मल कुमार जैन

के

विवाहोत्सव पर

सप्रेम भेंट

—सुनहरीलाल जैन
आगरा ।

पूज्य माता जी !

श्री ब्रह्मगुलाल चरित आपको
अति प्रिय था। इसके सुनने मे
आप आत्म-विभोर हो जाती
थीं। आप अब स्वर्ग में है
यह ग्रन्थ आपको
समर्पित

—बनवारीलाल स्याद्वादी

धर्म-प्रेमी विवेकी व्यापारी

स्व० लाला दौलतराम जी बेलनगंज, आगरा

स्व० लाला जी की पावन-स्मृति मे उनके धर्म-प्रेमी सुपुत्रो
(श्री सुनहरीलाल जैन, श्री सुखनन्दनलाल जैन और
श्री पूरणचन्द्र जैन) ने इस ग्रथ के प्रकाशन मे
आर्थिक सहयोग दिया।

आभार प्रदर्शन

अपनी स्वर्गीय माता जी के ऋण-भार को कुछ कम करने के लिये मेरे मन मे ब्रह्मगुलाल ग्रन्थ सम्पादन की अभिलाषा वडे वेग से आई, साथ ही साथ इस सबंध मे अपनी अल्पज्ञता, सीमित-साधन-स्थिति को देखकर यह कार्य कुछ कठिन सा मालूम हुआ । अत कुछ समय तक सकोच की भावना रही । ग्रन्थ-नायक मुनिवर ब्रह्मगुलाल तथा ग्रथ रचयिता कविवर श्री छत्रपति दोनो हिन्दी साहित्य महारथियो की अनुपम कृतियो को जब देखा, साथ ही साथ इस सबंध मे जैन समाज की चिन्तनीय उपेक्षा पर भी जब मैंने दृष्टि डाली, तो मैंने अचानक भावावेश से इसके सम्पादन करने का दृढ सकल्प कर लिया ।

मेरे इस कार्य मे पूज्य न्यायाचार्य विद्वद्वर प० माणिक्यचन्द्रजी फिरोजावाद, स्वर्गीय व्रती प० खूबचन्द्र जी शास्त्री इन्दौर, धर्मरत्न प० लालाराम जी शास्त्री तथा श्री अक्षयकुमारजी जैन दिल्ली, श्री कामताप्रसाद जी जैन अलीगज, श्री लक्ष्मीचन्द्र जी जैन कलकत्ता, श्री परमानन्द जी शास्त्री दिल्ली, श्री कन्हैयालाल जी मिश्र प्रभाकर सहारनपुर, श्री कस्तूरीचन्द्र जैन एम. ए शास्त्री जयपुर, आचार्य श्री लालवहादुर जी शास्त्री एम ए दिल्ली, मान्य पडित मथुरादास जी शास्त्री एम ए आदि साहित्यिक विद्वानो से समय-समय पर अच्छी सहायता मिली है ।

मेरे प्रियवन्धु श्री रामस्वरूप जी भारतीय, परम सखा व सच्चे हितैषी (किंतु अब समधी) केप्टिन श्री माणिकचन्द्र जी फिरोजावाद, वावू हजारीलाल जैन वकील आगरा, पडित नन्नूमल जी दिल्ली, श्री महावीरसहाय जी पाण्डे शिकोहावाद, श्री महेन्द्रकुमार जी टूंडला, श्री खेमचन्द्र जी दिल्ली आदि महानुभावो ने इस शुभ कार्य मे वडी प्रेरणा और सराहनीय सहयोग दिया है ।

इस ग्रन्थ की भूमिका हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ व लब्धप्रतिष्ठ वयोवृद्ध वरिष्ठ विद्वान श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने लिखी है। अपनी आजन्म अनुपम हिन्दी साहित्य सेवाओ के कारण पूज्य चतुर्वेदी हिन्दी जगत के सूर्य हैं। इस सूर्य से हिन्दी के लेखको, पत्रकारो, सम्पादको आदि को अच्छा प्रकाश मिलता है। श्रद्धेय चतुर्वेदी जी को जैन साहित्य से बडा प्रेम है। इसकी सुरक्षा व समृद्धि के लिये आपने समय-समय पर [illegible]ाहनीय सहयोग दिया है। इनसे जैन साहित्य के प्रति जैन-अजैन विद्वानो की अभिरुचि बढी है।

पूज्य चतुर्वेदी जी की इस विद्वत्तापूर्ण भूमिका ने इस ग्रथ की महत्ता को बढाया है। साथ ही साथ मेरा बढा हित किया है, क्योकि मेरी अभिरुचि साहित्य सेवा करने की ओर बढी है। मैं इनके लिये उनका ऋणी हूँ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन-निमित्त स्व० लाला दौलतराम जी के धार्मिक सुपुत्रो (लाला सुनहरीलाल जी, पूरणचन्द्र जी और लाला सुखनन्दन लाल जी) ने अपने पूज्य पिता ला० दौलतराम जी की पावन स्मृति मे १००१) प्रदान किये हैं। एतदर्थ मैं आपका आभारी हूँ।

दिल्ली
कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा

वनवारीलाल स्याद्वादी
भूतपूर्व व्यापार-सम्पादक "नवभारत टाइम्स"
सम्पादक-वीर

ला० सुनहरीलाल जैन आगरा

मालिक फर्म

मैसर्स—दौलतराम सुनहरीलाल

जैन, हार्डवेयर मर्चेंट

बैलनगज (आगरा)

तथा

लोकेश आइरन इण्डस्ट्रीज आगरा

तार का पता 'फाइलस'

फोन २९३६

ला० सुखनन्दनलाल जैन आगरा

मालिक फर्म

मैसर्स—दौलतराम सुखनन्दनलाल

जैन, हार्डवेयर मर्चेंट

बैलनगज (आगरा)

श्री पूरणचन्द्रजी जैन **श्रीमती वीवोदेवी**

(सुपुत्र—स्व० ला० दौलतरामजी जैन) धर्म पत्नी ला० पूरणचन्द्र जैन

११६६ फाटक सूरजभान बैलनगज (आगरा)

मालिक फर्म
जैन हार्डवेयर स्टोर्स
बैलनगज (आगरा)
तार का पता—
"FIRE FLY"

ब्राच
जैन इडस्ट्रीज
११६६ फाटक सूरजभान (आगरा)
Phone No office 2696
Residence 3145

भूमिका

लगभग पौने चारसौ वर्ष पूर्व फीरोजाबाद के निकट 'टापे' नामक ग्राम मे कविवर ब्रह्मगुलाल का जन्म हुआ था। वह महाकवि तुलसीदास और हिन्दी के सर्वप्रमुख आत्मचरित लेखक कविवर बनारसी दास जैन के समकालीन थे। उन्होने कई ग्रन्थो की रचना की थी, जिनमे केवल एक प्रकाशित, हुआ है यानी "कृपण जगावन चरित्र"। उन्ही ब्रह्मगुलाल जी के जीवन चरित की रचना छत्रपति जी ने सम्वत् १९०९ मे की थी और बन्धुवर बनवारीलाल स्याद्वादी ने बडी योग्यतापूर्वक उसका सम्पादन किया है।

छत्रपति जी अवागढ के रहने वाले थे और सम्पादक महोदय ने खोज करके उनका सक्षिप्त परिचय इस ग्रन्थ की भूमिका मे दे दिया है। श्री छत्र-पति जी एक आदर्शवादी लेखक थे और उन्होने धन-सचय की ओर कुछ भी ध्यान नही दिया। अपनी शारीरिक आवश्यकताओ के लिए पाँच आने पैसे जमाकर शेप वे परोपकारार्थ खर्च कर देते थे वह अपनी दूकान एक घन्टे से अधिक के लिए नही खोलते थे और एक रुपया रोज से ज्यादा नही कमाते थे उनका शेप समय धार्मिक कृत्य तथा साहित्य सेवा मे बीतता था।

कविवर ब्रह्मगुलाल जी का जीवनचरित उपन्यास की तरह मनोरजक है और छत्रपति जी ने उसे बडी सरल भाषा मे लिखा है। यह बडे खेद की बात है कि न तो श्री ब्रह्मगुलाल जी की और न छत्रपति जी की समस्त रचनाएँ प्रकाश मे आ सकी।

जनपदीय लेखको और कवियो की कीर्तिरक्षा का उपाय क्या है? इस प्रश्न पर विचार करके हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि अखिल भारतीय सस्थाएँ—उदाहरणार्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग और नागरी प्रचारिणी

सभा काशी—इस विषय मे हमारी अधिक सहायता नही कर सकती। जब तक, हम लोग जनपदीय ढग पर अपने साहित्य क्षेत्र का विभाजन नहीं करते, तब तक इस प्रकार के लेखक और कवि उपेक्षित ही रहेंगे। इसके सिवाय यह प्रश्न भी विचारणीय है कि छपने पर इन पुस्तको का विधिवत प्रचार भी हो सकता है या नही। लोगो की रुचि मे काफी परिवर्तन हो चुका है और प्राचीन रचनाओ की बिक्री प्राय असम्भव-सी हो गई है। महाकवि तुलसीदास, कबीर और रहीम इत्यादि इनेगिने कवियो को छोडकर अन्य लोगो की रचनाएँ लोकप्रिय नही रहीं। हाँ, यदि कोई पुस्तक पाठ्क्रम मे आ जाय तो बात दूसरी है। ऐसी स्थिति मे इस प्रकार की पुस्तको का प्रकाशन केवल अनुसधान की ही दृष्टि से किया जा सकता है। भिन्न-भिन्न जनपदो के श्रद्धालु महानुभाव इस प्रकार के कवियो की कीर्तिरक्षा अपने-अपने जनपदो मे साधन जुटाकर कर सकते हैं। धार्मिक सस्थाएँ भी इस पुण्य कार्य मे सहायक बन सकती हैं।

चरित नायक

ब्रह्मगुलाल जी के पिता का नाम हल्ल था और जब वे बाहर गए हुए थे, टापे मे भयंकर आग लग जाने से उनका सम्पूर्ण कुटुम्ब स्वाहा हो गया। तत्पश्चात् चन्दवार के राजा कीर्तिसिन्धु ने उनका दूसरा विवाह कराया और उससे ब्रह्मगुलाल का जन्म हुआ। टापे ग्राम के सौन्दर्य का जो वर्णन छत्रपति जी ने किया, उसे पढकर हमे कविवर श्रीधर पाठक के जौधरी नामक ग्राम के वर्णन की याद आ रही है। जब हमने पाठक जी से पूछा कि क्या आपका यह वर्णन सचमुच वास्तविक था तो उन्होने हँसकर कहा—"वह तो कवि कल्पना थी। सुन्दर सरोवर की बजाय जौंधरी मे एक पोखरा अवश्य था और मयूर और कोकिल के बजाय वहाँ कौवे बोलते थे।" सम्भवत छत्रपति जी ने भी टापे के वर्णन मे कवि-कल्पना से ही काम लिया है। टापे मे जो आग लगी थी, उसका वर्णन बडा सजीव बन पडा है। ब्रह्मगुलाल जी स्वाग भरना जानते थे—यो कहिये कि बडे अच्छे ऐक्टर थे। यदि वह आज के जमाने मे होते, तो श्रीमती नरगिस की तरह वह भी अवश्य ही पद्मश्री जैसी उपाधि के अधिकारी

वन जाते। उन्होने जिस खूबी के साथ सिंह का पार्ट अदा किया, उससे यह प्रतीत होता है कि उनकी कला पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी। तत्कालीन समाज मे स्वाग भरने वालो का कोई विशेप सम्मान न था और लोग उन्हे बहुरूपिया कहते थे। बहुरूपिया शब्द मे ही एक प्रकार की अपमानजनक और हीन भावना विद्यमान है। दरअसल ब्रह्मगुलालजी समय से तीन सौ बरस पहले पैदा हो गये थे। उपन्यास की तरह उनका जीवन भी विविध घटनाओ से परिपूर्ण है। सबसे बडी दुर्घटना जो उनके जीवन मे घटी, वह यह थी कि सिंह का रूप धारण करने पर उनके द्वारा राजकुमार की मृत्यु। चन्दवार के राजा श्री कीर्तिसिधु की सहनशीलता और उदारता की हमे भूरि-भूरि प्रशसा ही करनी पडेगी, क्योकि उन्होने ब्रह्मगुलाल को कोई दण्ड नही दिया। सम्भवत इसका कारण यह भी हो सकता है कि वे उनके आश्रित कृपा पात्र हल्ल के सुपुत्र थे। दूसरी बार मुनि का स्वाग भरने के बाद तो ब्रह्मगुलाल जी वास्तविक मुनि ही बन गए। उन्होने घरबार छोड दिया और मुनियो जैसा जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया। सम्भवत इसका कारण यह होगा कि उनके द्वारा जो नर-हत्या हुई थी, उसके प्रायश्चित स्वरूप उनकी सतृप्त आत्मा ने यही मार्ग ठीक समझा हो। ब्रह्मगुलाल जी ने अपने साथी मथुरामल जी को जो उपदेश दिया है, वह अपना महत्व अलग ही रखता है।

यह जीवन चरित एक प्रकार का नाटक या उपन्यास है, जिसके पात्र अपना-अपना पार्ट बडी खूबी के साथ अदा करते हैं और इसीलिए यह इतना मनोरजक बन पडा है।

सम्पादक महोदय श्री बनवारीलाल जी स्याद्वादी ने बीसियो बार ही इस ग्रन्थ को अपनी पूज्य माता जी को सुनाया था और इसके सम्पादन मे उन्होने बडी श्रद्धापूर्वक अपने चार बरसो का अवकाश अर्पित कर दिया है। इस सम्पादन कार्य मे उन्होने एक सच्चे अन्वेषक जैसी लगन प्रदर्शित की है, जिसकी आशा किसी दैनिक पत्र के सहायक सम्पादक से नही की जा सकती है। बिना श्रद्धा के कोई भी व्यक्ति ऐसा परिश्रमसाध्य कार्य नही कर सकता।

श्री ब्रह्मगुलाल जी का यह जीवन चरित हिन्दी की ऐतिहासिक दृष्टि मे भी महत्वपूर्ण है। अर्वाचीन काल मे आगरा जनपद मे सबसे पहला कवि कौन हुआ, यह प्रश्न विचारणीय है। आधुनिक काल के लेखक तो ब्रह्मगुलाल के बहुत पीछे हुए। ब्रह्मगुलाल ने "कृपण जगावन चरित्र की रचना" सवत् १६७१ मे यानी कविवर तुलसीदास की मृत्यु के नौ वर्ष पूर्व की थी जबकि लल्लूजीलाल, नजीर, राजा लक्ष्मणसिंह आदि का जन्म भी नही हुआ था। साहित्य के अन्वेषको से हमारा निवेदन है कि वे इस बात का फैसला करें कि पिछले ४०० बरसो मे आगरा जनपद प्रथम लेखक या कवि कौन था।

इस अवसर पर मुझ जैन समाज की प्रशसा ही करनी पडेगी कि उसके द्वारा अनेक अमूल्य रत्नो की रक्षा हो गई है। जैन ग्रन्थ भण्डारो मे जो ग्रन्थ अब भी सुरक्षित है, उनका विधिवत् सम्पादन होना चाहिए। जैन समाज साधन-सम्पन्न है और यदि वह अपने दान मे विवेक से काम ले, तो उसके लिए यह कोई असम्भव कार्य भी नही। जब तक ये ग्रन्थ विधिवत् प्रकाशित न हो, तब तक एक काम तो किया ही जा सकता है, वह यह कि उनकी पाच-पाच सात-सात प्रतिया नकल कराके भिन्न-भिन्न सग्रहालयो मे सुरक्षित कर दी जावें।

हम साम्प्रदायिकता के घोर विरोधी हैं, फिर भी जैन समाज से हमारा यह अनुरोध है कि वह अपने लेखको और कवियो की कीर्ति-रक्षा के लिये विशेष रूप से प्रयत्नशील हो। उनकी रचनाओ मे कितनी ही ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हो सकती है, जैसे कविवर बनारसीदास जैन का 'अर्द्ध कथानक' इतिहास की कई खोई हुई लडिया हमे उन ग्रन्थो मे मिल सकती हैं। इस प्रकार जैन लेखको की रचनाओ का उद्धार अखिल भारतीय दृष्टिकोण से भी महत्व-पूर्ण होगा।

जनपदीय कार्यकर्ताओ के लिये तो इनको अद्भुत सामग्री मिलेगी और उसके परिणामस्वरूप अपने जनपद से और भी अधिक प्रेम करना सीखेंगे। अपनी पिछली रूस यात्रा मे हमे ओरेल जिले के साहित्य सेवियो का एक नक्शा

देखने को मिला। यह बात ध्यान देने योग्य है कि विश्व-विख्यात लेखक तुर्गनेव का जन्म इसी जिले मे हुआ था। उस नक्शे मे जहा-जहा जिस-जिस कवि लेखक या आलोचक का जन्म हुआ था, वहाँ-वहाँ उसके छोटे से चित्र चिपका दिए गए थे। इस प्रकार एक दृष्टि मे ही जिले भर की साहित्यिक परम्परा का परिचय हो जाता था। यदि इसी प्रकार हम लोग प्रत्येक जिले का साहित्यिक मानचित्र तैयार करें तो वह विद्यार्थियो के लिये बडा मनोरजक और लाभप्रद सिद्ध होगा।

हम फिरोजाबाद जिला आगरे के निवासी है और अब तक इस बात मे बडा गौरव अनुभव करते है कि कविवर बोधा और श्रीधर पाठक तथा मुन्शी जुगलकिशोर हुस्न हमारे ही नगर के निवासी थे—अब इस सूची मे सर्वोपरि ब्रह्मगुलाल जी का नाम जुड गया है। छत्रपति जी की पुस्तक ने टापै और जारखीका नाम भी साहित्यिक मानचित्र पर अकित कर दिया है और इसके लिए हम बनवारीलाल जी के ऋणी और कृतज्ञ है।

इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को देखने के बाद हम इस परिणाम पर पहुँचे है कि यदि श्री बनवारीलालजी को सुविधा दी जाय तो वह अनेक ग्रन्थो का उद्धार कर सकते है और अनेक कवियो की कीर्ति को विस्मृति के गर्भ मे विलीन होने से बचा सकते है। वैसे यह कार्य एक-दो आदमियो का नही, इसके लिये तो अन्वेषको की एक टोली ही चाहिये। अखिल भारतीय लेखको और कवियो की कीर्ति-रक्षा मे तो बहुत से लेखक और कवि सलग्न है। उनके ग्रन्थ भी प्राप्य है, इसलिये उनकी कीर्तिरक्षा का कार्य सुसाध्य है, पर जनपदीय लेखको और कवियो के यश शरीर की रक्षा इसकी अपेक्षा कही अधिक कठिन है।

हमे इस बात का खेद है कि हमे अपने जनपद आगरा और ब्रजभूमि से पिछल ४८ वर्षों मे अलग ही रहना पडा है और इसलिए हम अपने जनपद की कोई विशेप सेवा नही कर सके। हाँ, स्वर्गीय सत्यनारायण कविरत्न के लिए अवश्य कुछ कार्य हमसे बन पडा था। उनके जीवन चरित्र तथा "हृदय तरग" का प्रकाशन और प्रयाग मे सत्यनारायण कुटीर की स्थापना द्वारा हमने

विषय सूची

विषय | पृष्ठ

पूर्वार्द्ध

उत्तरार्द्ध

सम्पादक के दो शब्द

"भैया पुत्तू, मदिर जी की पोथी को १० दिन से घर पर पड रहे हो, पढ चुके होगे । मुझे अब दे दो" ।

"सालभद्रजी, मैंने पोथी तो पूरी पढ ली है, लेकिन दोपहरी मे दादी, चाची और माई को सुनाता हू , अभी कम से कम ५-६ दिन और लग जायेगे ।"

"पढ ली, फिर भी नही देते, पोथी मदिर की है, तुम्हारी नही है, जल्दी दे दो ।"

"कैसे दे दू । अम्मा जी हर रोज सुनती है, उनके साथ और महिलाए भी इसे वडे चाव से सुनती हैं, । पूरी सुनाये बिना पोथी कैसे तुमको दे दू ?"

"यह खूब, पूती, सोनपाल बाबूराम' जिनेश्वर मुशीलाल सव अपने घर पोथी लेकर १५-२० दिन तक रखते हैं । ५-६ माह से मागता हू, मुझे यह पोथी पढनको नही मिलती ! शास्त्र-भडारी चाचा मेवाराम से कहूँगा, कि अव की वार मुझे यह पौथी मिले ।"

उपर्युक्त वार्त्तालाप आज से करीव ५० वर्ष पूर्व मेरी जन्म भूमि मर्थरा (जिला एटा यू० पी०) मे दो युवको के बीच हुआ था। मेरी अवस्था करीव ७-८ वर्ष की होगी । कक्का सालभद्रजी ने बाबा मेवाराम जी से वडे अनुनय और विनय से पोथी (ब्रह्मगुलाल चरित) के लिये निवेदन किया। किन्तु उनको पोथी नही मिली । पोथी मिली कक्का छोटेलाल जी को। इस पर युवक सालभद्र का धैर्य का बाव टूट गया । रोकर अश्रुधारा वहाकर सालभद्रजी ने अपने पिता (स्व० दुर्गादास जी) से शिकायत की । परिणाम यह हुआ कि श्री मदिर जी मे वृद्ध महानुभावो की एक पचायत हुई, इसमे ब्रह्मगुलाल चरित पोथी के घर पर ले जाने पर विचार-विमर्ष चला । इसमे शास्त्र-भडारी विलकुल नियमा-नुकूल पाये गये थे ।क्योकि पोथी मागने वालो की सूची मे कक्का छोटेलाल जी

का नाम श्री सालभद्र जी के नाम से ७५ दिन पूर्व ही लिखा जा चुका था, इस आधार पर श्री सालभद्र जी की शिकायत का दावा खारिज हो गया। इस पचायत ने एक विशेष वात यह भी तय की थी कि इस पोथी के पढने के अनेक पाठक हैं और श्रोता भी वहुत हैं। श्रोताओ मे विशेप सख्या स्त्रियो की है। इस कारण दुपहरी में "वडी वाखर" मे इस पोथी के वाचने का आयोजन किया जाय।

ऐसा ही हुआ। वडी वाखर मे मध्यान्ह को "ब्रह्मगुलाल चरित" पढा जाता था। इससे युवती, वृद्धा और वालिकाओ से 'वडी वाखर' की वैठक भर जाती थी। श्रोताओ मे जैन महिलाओ के अतिरिक्त अजैन स्त्रियो की सख्या भी पर्याप्त रहती थी। फिर गर्मी में सध्या को चौक मे और जाडो मे अगिहानो पर ब्रह्मगुलाल चरित की कथा वडे चाव से चलती थी। इसी गाव में प्रतिवर्ष भादों की पूर्णिमासी के जैन मेला मे भी ब्रह्मगुलाल और मथुरामल्ल के मुनि और ग्रहस्थ के विवाद के कवित्तो के सुनने सुनाने की प्रवृत्ति थी। मुनि ब्रह्मगुलाल चरित का प्रभाव नवयुवको और वृद्धो तक ही सीमित न था, वल्कि वालक भी उससे प्रभावित थे। ब्रह्मगुलाल मुनि का पार्ट खेलने के उद्देश्य से वे समीप के वागो से मोर के पखो को ढूंढकर लाते और और पीछी वनाते, तथा बच्चे की छोटी वाल्टी का कमन्डल वनाकर जैन मुनि का स्वाग करते थे। मेरी स्वर्गीय माताजी को ब्रह्मगुलाल की कथा वडी प्रिय थी। वे गाव मे वडे चाव से सुनती थीं। देहली मे आकर भी वे इसे सुना करती थी। ८० वर्ष की वृद्धावस्था मे जव उनकी नेत्र दृष्टि ने जवाव दे दिया उनकी लटखडाती टागे शास्त्र सभा तक पहुँचने मे असमर्थ हो गई थी, पर उनके दिल मे ब्रह्मगुलाल चरित" के सुनने की इच्छा कम होने के वजाय वढती ही गई।
जादू वह है जो सिर पर जा कर वोले। मेरी सम्मति से पचमकाल के विपयो के विपाक्त वातावरणवाले वर्तमान युग के लिए ब्रह्मगुलाल की जीवन कथा आत्मकल्याण की दृष्टि से तो अनुपम है ही, किन्तु कविवर छत्रपति ने सभी रसो के पुटो के साथ, साज-सज्जा के अलकारो को लेकर ग्रामीण मधुर व्रजभापा में इस ग्रथ की ऐसी अनूठी रचना की है, जिसकी ओर उत्तर भारत के

आदर्श-जननी

स्व० माता रूपाबाई जैन मर्थरा (जि० एटा)

आपकी पावनस्मृति मे इनके पुत्र वनवारीलाल स्याद्वादी ने इस ग्रथ का सम्पादन किया है ।

जैनियो-विशेषकर ग्रामीण जनता का चित्ताकर्पण ठीक उसी प्रकार का है, जैसे कि हिन्दी भापी हिन्दुओ का "तुलसी कृत रामायण" की ओर।

ग्रन्थानायक और ग्रन्थ रचियता मे अपनी-अपनी उल्लेखनीय विशेषतायें भी हैं। ग्रन्थनायक श्री गुलाल ने सुशील सुन्दर स्त्री, सुखमय साथी सखाओ और स्नेहमयी पारिवारिक जनो के प्रेम, स्नेह और ममता की उपेक्षा कर हिंसा के परिशोध के लिए अपनी भरी जवानी मे कठोर तप साधना के गुलाल से खूब खुलकर होली खेली है, तो ग्रन्थ रचियता कविवर छत्रपति ने भी अपने यौवनकाल मे शृगार, हास्य, वीर आदि रसो की ओर ध्यान न देकर अपने आद्यकाव्य "ब्रह्मगुलाल चरित' में वैराग्य धारा को बहाया है।

अपनी महान कृतियो से श्री गुलाल मानव-जीवन के सफल कलाकार हुए है, इधर कविवर छत्रपति ने कलाकार की जीवन मणियो को सुन्दर लडियो मे पिरोकर अपनी ललित कला का उत्कृष्ट परिचय दिया है।

अपनी अल्पज्ञता और सीमित साधन के कारण मुझे यह कार्य कुछ कठिन, जचा, लेकिन गुरुजनो के आशीर्वाद तथा कुछ सहयोगी सहित्यिक मित्रो का हस्तावलवन मिलने की आशा पर मैं इस कार्य ने जुट गया।

ग्रन्थ की प्रतियां

इस ग्रन्थ के सम्पादन-कार्य के लिये मुझे ३ प्रतियाँ प्राप्त हुईं। पहली मर्थरा (जिला एटा यू० पी०) के जैन मदिर की प्रति, दूसरी प्रति गेयथू (जिला एटा यू० पी०) के जैन मदिर की, और तीसरी प्रति दिल्ली के सेठ के कूचा के मदिरजी से प्राप्त हुई थी। इसके अतिरिक्त चतुर्थ प्रति अलीगढ मे मिली। यह प्रति कविवर छत्रपति के प्रमुख शिष्य स्व० कविवर कुन्दनलाल जी के हाथ की लिखी थी। स्व० कुदनलाल जी के सुपुत्र के पास से प्राप्त हुई, इस प्रति से भी मिलान किया गया।

मर्थरा के मन्दिर जी की प्रति मे ये लाइने हैं—

"सवतत्सर विक्रमादित्य राज्ये १६२३। मिति जेठ सुदी ७ को पूरण भयो। लिष्य तजीसुखराय फरिहा के पठनार्थ छदामीलाल मर्थरा (जिला एटा उत्तर

प्रदेश) वारे के मार्थे करी, चुन्नीलाल सन्नढवारे णे फरिहा लिषाइ दीनी।"

इससे प्रगट होता है कि मर्थरा के मदिरजी की प्रति वि० स० १६२३ मे लिखी गई। कविवर छत्रपति ने इस ग्रन्थ की रचना स० १६१४ मे पूर्ण की थी। अत मर्थरा के मदिर की प्रति ६ वर्ष वाद ही लिखी गई। श्री छदामीलाल जी इन पक्तियो के लेखक के स्व० वावा जी (श्री झुन्नीलाल जी,) के सहोदर भ्राता थे। दूसरी गयेथू की प्रति के अन्त मे लिखा है —

"सवत उन्नीस्से से अविक, पचपन ऊपर ठानि।
असुन सुक्ल पचमि कही, सुभ गुरवार सुजानि॥१॥
लिखित गुलजारीलाल श्रावक ग्राम गयेथू (एटा उत्तर प्रदेश)"
अर्थात् वि० स० १६५५ मे यह प्रति गयेथू मे लिखी गई।

तीसरी सेठ के कूंचा के मदिर जी की प्रति वीर निर्वाण सवत २४५१ की लिखी गई है। इन तीनो प्रतियो में मर्थरा वाली प्रति सवसे पुरानी और शुद्ध है। इसकी सुन्दर लिखावट पुराने श्री रामपुरी मोटे कागजो पर है। छीट की कपडे की मजवूत जिल्द ने इसकी पर्याप्त सुरक्षा की है। यद्यपि यह करीव ६० वर्ष पूर्व लिखी गई थी, लेकिन ऐसा मालूम पडता है कि इसी वर्ष इसका लेखन समाप्त हुआ हो।

तीनो प्रतियो मे कही-कही पाठातर भी हैं, मूल ग्रन्थ के फुट नोटो मे मैंने इनका दिग्दर्शन भी कराया है।

ग्रथनायक मुनिवर ब्रह्मगुलाल तथा ग्रथ रचयिता कवि छत्रपति दोनो ही साहित्य-सेवी विद्वान थे। दोनो ने प्रचुर साहित्य सृजन कर हिन्दी साहित्य भण्डार के गौरव को वढाया है। इनकी रचना शैली, तथा उस समय के हिन्दी साहित्य की स्थिति, प्रभाव और इनके रचित ग्रन्थो का सक्षिप्त वृत्तान्त भी इसमे दिया गया है।

इस ग्रन्थ की भाषा ग्रामीण व्रजभाषा है। पाठको की सुविधा के लिये ग्रामीण तथा अन्य क्लिष्ट शब्दो का अर्थ नीचे दिया गया है।

कविवर छत्रपति जैन विद्वान् थे, इनकी रचनाओ मे जैन टैक्नीकल शब्द अच्छे आये हैं। हिन्दी के अजैन विद्वानो को भी इनकी साधारण जानकारी हो जाय, इस उद्देश्य से इन पर पृथक् नोट भी दिये गये हैं।

ग्रन्थ नायक गुलाल की भाव-भावनाओ और उच्च चरित्र की जानकारी के लिए ग्रन्थ की सदर्भित कथाओ का साधारण ज्ञान पाठको को होना अति आवश्यक है। अत। इन कथाओ को भी जोडा गया है।

मुनि श्री ब्रह्मगुलाल की जन्म-भूमि, बालक्रीडा भूमि और स्वाँग व रास-लीला स्थली "टापे गाव" थी। इस टापे के रम्य उद्यानो व वनो मे गुलाल ने घोर तप तपा था। मुनि गुलाल ने अपने सच्चे जीवन सखा मथुरामल्ल की प्रेरणा से जारकी (जि० आगरा) मे अनेक साहित्यिक ग्रन्थो की रचना की थी। अत टापे और जारकी दोनो स्थानो का अतीत व वर्तमान वर्णन भी दिया गया है।
ग्रथ रचयिता ने इस ग्रन्थ मे पद्मावती पुरवालो की उत्पत्ति, सोमवश, रीति-रस्म, कुल-मर्यादा, धर्म प्रवृत्ति आदि विषयो का विशद वर्णन किया है। इस पर भी खोजपूर्ण नया प्रकाश डाला गया है।

साधारण पाठको को ग्रथ का सरल ज्ञान और आशय मिलने के उद्देश्य से मैंने कुछ प्रयत्न किया है। यदि इसके पठन से पाठको के आत्महित करने की कुछ गुदगुदी उठने लगे, तो मै अपने श्रम को सफल समझूँगा।

—वनवारीलाल स्याद्वादी

ग्रन्थ नायक

इस ग्रन्थ के नायक श्री ब्रह्मगुलाल जी हैं। वे कौन थे, कब और किस जाति और वश मे उन्होने मानव शरीर को धारण किया था ? वाल्यकाल मे किस वातावरण मे उनका लालन-पालन हुआ, माता-पिता से उन्होने किन विशेष सस्कारो और पैत्रक गुणो की धरोहर प्राप्त की। उनकी शिक्षा दीक्षा कहाँ और कैसे हुई ? उनकी ज्ञान सम्पत्ति कितनी थी, उसका उन्होने क्या-क्या मानव शरीर मे कितना और किस प्रकार उपभोग किया। साहित्य-सृजन की दिशा मे उनकी गतिविधि किस अवस्था मे कब और क्या-क्या चली, उनकी देन क्या रही ? उनके जीवन को कौन-कौन मुख्य उल्लेखनीय घटनायें थी ? जीवन की किस विशेष घटना ने उनके जीवन की मोड वदली और उन्हे समीचीन परमार्थ—पथ का पथिक वनने की प्रेरणा दी। प्रारम्भ मे परिस्थिति वश किन विघ्न वाधाओ का उन्हे सामना करना पडा, और वे इनमें डरे या सुमेरु के समान अडिग रहे, इन घटनाओ का उन पर क्या प्रभाव पडा ? आदि प्रश्नो की जानकरी के लिए वर्तमान विवेकी पाठको की उत्सुकता स्वाभाविक रूप से होती है, किन्तु इनकी जानकारी पूर्ण रूप से होना टेढी खीर है। इसके निम्न कारण हैं —

(१) भारतीय साहित्यकार—विशेषकर अध्यात्मवादी साहित्यस्रष्टा विदेशी ग्रथ रचयिताओ के समान जन्म-मृत्यु तिथि, स्थान तथा जीवन की अन्य सुख दु ख पूर्ण घटनाओ के वर्णन करने मे दिलचस्पी नही रखते थे। वहुत कम ऐसे ग्रन्थ रचयिता हैं, जिन्होने अन्त मे कुछ प्रशिस्त दी है, नही तो केवल नाम-मात्र ही देते हैं। उदाहरण के लिए इस ग्रथ के रचयिता कविवर छत्रपति ने अन्तिम मगल के छप्पय छन्द मे पच परमेष्टी, धर्म वीतराग विज्ञान-भाव समव-शरण तीर्थ आदि को नमस्कार करते हुए अपना नाम तक केवल सकेत रूप मे ही दिया है।

"नमहु आदि अरहत वहुरि श्री सिद्ध चरण को ।
आचारज उपझाय साधु जिण वचण वरन को ।।
नमहु उभै विधि धरम दया पूरन आचार ।
वीतराग विज्ञान भाव सव विधि सुषकार ।।
समवादिसरण तीरथनि को कल्यानक कालहि वरो ।
पदनमत छत्र सिरनाय करि चरित अन्त मगल करो ।।"

(२) दूसरा कारण यह भी है कि जैन समाज जितना अपना उपयोग धन-सग्रह तथा उसकी रक्षा मे लगाती है, उपका शताश भी अपने साहित्य की सुरक्षा या साहित्यकारो के इतिहास आदि जानने मे नही लगाती ।

इतिहास मे ब्रह्मगुलाल

पाठको की जानकारी के लिये मुनि ब्रह्मगुलाल तथा उनकी रचनाओ के विषय मे इतिहास मे जो वतलाया गया है, वह नीचे दिया जा रहा है ।

"**पद्मावती-पुरवालब्रह्मगुलाल**—प्रसिद्ध पद्मावती (वर्तमान पवाया) से चल कर गगा व यमुना के वीच किसी "टापू" या "टापो" (जिसकी स्थिति कुछ विद्वान् आगरा जिले मे फिरोजावाद के पास वतलाते हैं) के पद्मावती पुरवाल वैश्य परिवार के वश मे ब्रह्मगुलाल नामक जैन मुनि हुए थे । इनने शाह सलीम के राज्य मे सन् १६२२ ई० (वि० स० १६७१ ज्येष्ठ वदी ६, शुक्रवार) को "क्रपन जगावन" नामक कथा लिखी । इस ग्रन्थ में वे अपने निवास स्थान टापू को मध्यदेश मे स्थित वतलाते है और मध्यदेश की भापा-वार्ता को "खरी" कहते हैं —

"मध्यदेश रपडी चन्दवा ता समीप टापौ सुवसार ।
कीरत सिंह धरणीधर धरै, तेग त्याग की समसई करै ।"

कुछ समय पश्चात ब्रह्मगुलाल ग्वालियर आए और सन् १६१८ ई० (वि० स० १६६५, कार्तिक वदी ३) को "त्रेपन विधि" नामक ग्रन्थ की रचना की । उसके अन्त मे वे लिखते हैं —

"ऐ त्रेपन विधि करहु क्रिया भवि पाप समूह चूरे हो।
सोलह से पैंसठि समच्छर कातिक तीज अधियारी हो।
भट्टारक जगभूपन चेला ब्रह्मगुलाल विचारी हो॥
ब्रह्मगुलाल विचारि बनाई गढ गोपाचल थानै।
छत्रपति चहु चक्र विराजै साहि सलेम मुगलानै।"

(मध्यभारत का इतिहास प्रथम खंड, पृष्ठ १२)

कविवर छत्रपति की रचना मे ग्रथ नायक श्री ब्रह्मगुलाल जी की जन्म तिथि का ठीक-ठीक पता नही चलता। हाँ उनके पिता के जन्म के विषय मे इनका यह कहना है —

"सौलेसे के ऊपरे, सत्रेसे के माहि॥
पाडिन ही मे ऊपजे, दिरग हल्न दो भाय॥"

हल्ल (श्री ब्रह्मगुलाल जी के पिता) का जन्म सवत् १६०० से ऊपर और १७०० के अन्दर पाडो मे ही हुआ था। आगे इसी ग्रन्थ मे लिखा है—

"उपजै इनके अगर्तें, जे सुत सुता सुभाय।
जथा रीति पालन कियो, पुनि दीने परनाह॥"

हल्ल के जो पुत्र पुत्रिया हुईं, उनका पालन-पोपण होकर विवाह कर दिया गया।

इनके अनन्तर, आग लग जाने पर हल्ल के सब ग्रहजन जलजाते हैं। राजाश्रय पाने पर राजा को चिन्ता होती है कि इस धर्मात्मा हल्ल का वश आगे को चलने के लिए इसका विवाह होना जरूरी है, किन्तु इसमे सबसे बाधक हो रही थी उनकी ज्यादा उम्र।

"अब भूपति मण करै विचार, जाणें पूर्वापर विवहार।
हल्ल तणी परपाटी किसें, चलें विवाहे को वय रवसैं॥"

हल्ल का विवाह राजा के लिए भी एक विकट समस्या बनी। किन्तु भारी प्रयत्न से विवेकी राजा ने उसको हल कर ही लिया। इसमे अनुमान होता है हल्ल का दूसरा विवाह ३५ से ४० वर्प तक की आयु मे हुआ होगा।

इस दूसरी स्त्री से ब्रह्मगुलाल का जन्म होता है। इससे हम केवल यह ही अनुमान लगा सकते हैं कि करीब १६४० के लगभग इनका जन्म हुआ होगा। इससे अधिक ठीक-ठीक जन्म तिथि का ज्ञान अभी तक नही हो पाया है।

कविवर छत्रपति जी ने इस ग्रन्थ की रचना समाप्ति के विपय मे लिखा है:

"सवत्सर विक्रमतनो सार, रसनभ रस ससि ए अकलार।
वदि माघ द्वादसी सनी साझ, पूरण रिपि पूर्वाषाड माझ ।।"

श्री छत्रपति जी ने इस ग्रन्थ को विक्रम सवत् १६०६ पूर्वाषाड नक्षत्र माघवदी १२, वार शनिवार को सध्या समय पूर्ण किया था। श्री ब्रह्मगुलाल जी के स्वर्गवास होने से करीब २०० वर्ष बाद इस ग्रन्थ की रचना की गई है।

श्री ब्रह्मगुलाल जी का जन्म स्थान "टापे" है। यह टापें स्थान चद्रवार के समीप था। चद्रवार वह प्राचीन इतिहास-प्रसिद्ध स्थान है, जिसके खडरात, समुन्नत-महलो और विशाल-काय मन्दिरो के खडरात तथा अवशेष चिह्न फीरोजाबाद के कुछ दूर पर पाये जाते हैं। कविवर छत्रपति ने लिखा है:—

"अब ए सब ही विधि बस होय। देस देस विचरैं सब लोय ।।
पद्म नगर को त्यागि निवास। मध्यदेश की कीनी आस ।।
कोई कहूँ कोई कहुं बसा। अन्न पान कारन मनलसा ।।
पाडे निकलि तहाँ से आय। टापे माहि बसे सुख पाय ।।

अर्थात् प्राचीन काल मे कर्मसयोग से पद्मावती पुरवालो को पद्मनगर छोड कर मध्यदेश जाकर रहना पडा, जहा जिसके रोज़गार का निमित्त मिला, वही वह बस गया। इसमे से पाडे 'टापे' मे आकर बसे। धर्मात्मा तथा शुद्धाचारणी होने से राज-द्वार तथा जनता मे इनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। जैसा कवि ने कहा है —

"राजा करे भूरि सन्मान। सचिव प्रधान करे सव काज ।।
पुरजन परियण मे अधिकार। आगे और सुनो विस्तार ।।

श्री ब्रह्मगुलाल जी के पिता हल्ल, तथा इनकी माता उस समय के प्रसिद्ध व सम्पन्न-वश के साहुनशाह की सुन्दरी कन्या थी। हल्ल की यह दहेजा पत्नी थी।

"दहेजा की नारि, बादशाह की घोडी ।
जितनी ही नाचे, उतनी ही थोडी ।।"

इस लोकोक्ति के अनुसार हल्ल की इसमे विशेष अनुरक्ति थी । श्री ब्रह्म-गुलाल इनकी आद्य सतान थी । आग मे अपने घर के सब जल जाने के बाद "पुत्र रत्न" की प्राप्ति का हर्ष, हल्ल के लिए डर्बिन की लौटरी के आने के समान था । ब्रह्मगुलाल का सुन्दर व स्वस्थ शरीर था । शरीर के सभी अवयव चित्ताकर्षक व कमनीय थे । इनमे महापुरुषो के से लक्षण थे । इसी कारण कवि ने इनका नख-सिख वर्णन बहुत ही बढिया किया है ।

बृह्मगुलाल को शैशव मे जनक-जननी का दुलार, परिजनो का प्यार और सम्बन्धियो का सुखद-स्नेह प्राप्त था । उनका लालन-पालन सभी सुविधाओ तथा सुख की सामग्रियो से किया गया । इनकी शिक्षा एक श्रुत-पाठक विद्वान द्वारा दी गई थी । धर्म शास्त्र, गणित, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छन्द, अलकार शिल्प, शकुन शास्त्र और वैद्यक शिक्षा इन्होने स्वल्पकाल में ही प्राप्त कर ली थी । जैसा कि कवि ने कहा —

"ब्रह्मगुलाल कुमारणे, पूर्व उपायो पुन्य ।
यातें बहु विद्याफुरी, कह्यो जगत ने धन्य ।।"

विद्या प्राप्ति के साथ युवक ब्रह्मगुलाल मे विनय, पात्रता, धार्मिक वृत्ति आदि सद्गुणो का अच्छा समावेश हो गया था ।

अग्रेजी के एक अन्तर्राष्ट्रीय—ख्याति प्राप्त निवन्ध-लेखक ने अपने एक निवन्ध मे लिखा है कि युवको की १४ वर्ष की आयु से १८ वर्ष तक की आयु पागल जैसी होती है । चाहे युवक विद्वान हो या मूर्ख, गरीब हो या अमीर, निर्बल हो या सबल, सरल हो या वक्र, सुष्ट हो या दुष्ट, सभी युवको के हृदयो मे इस अवस्था मे बडे-बडे अजीब और आश्चर्यपूर्ण विचारधाराएँ इतनी जल्दी उठती हैं, जितनी कि एक पागल के हृदय मे । इनका आचरण भी कभी-कभी पागल जैसा हो जाता है ।

इस आयु मे जो बुरी लत लग जाती है, वह बडी कठिनाई से छूटती है,

कभी-कभी तो वह जीवन-सगिनी हो जाती है। विद्वान ब्रह्मगुलाल भी इस अपवाद से नही बचे। दूसरो की रची लावनी, शेर आदि सुनने का इन्हे चाव हो गया। फिर ये स्वय गाने लगे और बादको ये इन्हे रचने भी लगे। ये कविताएँ वीर, हास्य, शृगार तथा अश्लीलता को स्पर्श करने वाली थी। रासलीला रचने, स्वाग भरने और उनके अनुरूप आचरण करने की प्रवृत्ति इनमे बढ गई। जैसा कवि ने कहा है —

"सुणे लामणी सेर अनेक। तो ही आपु चवै गहि टेक।
लगी झूलना की बहुभाय। रचि रचि करै प्रकाश, अघाय ॥
कहे कवित्त वीर रस तणे। तथा हास्य सिंगारहिं सनें।
किस्ता जकरी मुकरी आदि। भाषे सुनें पहेरी वादि ॥
ऐसे रमहिं कुमारग माहि। हित अनहित की चिन्ता नाहिं।
या पर भाडपना इक और। ग्रहण कियो बहु दुख की गौर ॥
मान बढाई के रस पगौ। कुपथी जननि मान दे ठगौ।
ता मे स्वाग विविध परकार। देखि देखि विगसें नर नार ॥
सखा सहित कबही हरि रूप। धरि दिखलाये स्वाग अनूप।
मोर मुकट मुरली कर धार। धेनु चरावै होय गुआर ॥
कबहिं रासमडल विधि करे। गोपी सग बहु लीला धरे।
दधि लूटण माषन अपहार। चीर चोरि पुणि माँडै रार ॥
कबही राघव लीला भाव। दिखलावे धरि मन बहुचाव।
सीय हरण रावण बध अन्त। बहुरि राज अभिषेक प्रजन्त ॥
कबहुँक विक्रम राजविलास। करि दिखावै कौतुक रास।
कबहुँ भरथरी तप प्रारम्भ। प्रघट करत जन धरत अचम्भ ॥
त्यो ही गोपीचन्द्र की रीति। विह्वल करै विषै रस प्रीति।
हर गौरी अरधग सरूप। णिरषत होय मूढ भ्रम रूप ॥"

स्वाग भरने तथा तद्रुप आचरण दिखाने की ब्रह्मगुलाल की प्रवृत्ति से माता-पिता तथा परिवार के जन बहुत दु खी थे, उन्होने बहुत समझाया,

पर वे न माने। इस होनहार युवक की इस दयनीय दशा पर अनेक विवेकी हितैषियों ने जब बराबर टोका और समझाया, तब उनके मन पर कुछ प्रभाव पडा और इन कार्यो मे रोक लगी, पर पडी हुई बान बिल्कुल छूटी नही। वे इस कार्य को त्यौहारो, वसन्तोत्सव आदि अवसरो पर करते। विचारशील पाठको को यह भी विचार करना है कि युवक ब्रह्मगुलाल मे रास रचने, स्वाग भरने और तद्‌रूप आचरण करने की जो प्रवृत्ति जगी थी, हमारे दृष्टिकोण मे यह भी एक कला थी। यह वह कला है, जिसे आज बीसवी सदी मे सिनेमा की दुनिया मे एक्टिग (Acting) कहते हैं, जिसकी ओर बडे-बडे समझदार शिक्षित और सम्पन्न घरानो के व्यक्तियो का झुकाव अधिक बढता जा रहा है, क्योकि इससे वे केवल कितने ही हजारो रुपयो की मासिक आय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय जगत मे प्रसिद्ध ही प्राप्ति नही कर लेंगे, बल्कि इस कला व्यवसाय मे अति सतोप का अनुभव करते हैं। इसका कारण काल का प्रभाव हैं। ब्रह्मगुलालजी १७ वी सदी मे थे, किन्तु अब २० वी सदी है, दूसरा कारण यह भी है कि ये उस पद्‌मावती पुरवार जाति और पाडो मे से थे, जिनकी दृष्टि मे यह बहुरूपिया का वह व्यवसाय था, जिसे वह हीन समझते थे। यह उनका दृष्टिकोण था, पर कला-कला ही होती है, वह अपना गुण और प्रभाव नही छोडती। इस कला द्वारा ब्रह्मगुलाल जी ने जनता मे अपनी प्रसिद्धि और सन्मान प्राप्त कर लिया था, साथ ही साथ राजद्वार और राजा के यहाँ भी उनकी प्रतिष्ठा और गौरव इतना चमक गया था, जिस पर प्रधान मन्त्री तक को बडी जलन और ईर्षा हो गई थी। श्री ब्रह्मगुलाल जी की कीर्ति को कम करने के लिए प्रधान मन्त्री एक गम्भीर—षडयन्त्र रचते हैं। वे राजकुमार से कहते है कि तुम ब्रह्मगुलाल जी से सिंह का स्वाँग बना लाने को कहो। और इसकी परीक्षा करना। कौतूहल-प्रेमी भोले भाले राजकुमार ने इसे मान लिया। राजकुमार ने राजा के सम्मुख ब्रह्मगुलाल से सिंह का स्वाग भरने के लिए कहा। ब्रह्मगुलाल ने उसे स्वीकार तो किया, किन्तु विनयवश महाराजा से निवेदन भी कर दिया कि इसमे कोई भूलचूक हो जाय, तो मुझे क्षमा किया जाय। राजा ने इसको स्वीकृति दे दी। राजनीति के दाँव-पेंचो के चतुर

खिलाडी प्रधान-मन्त्री की यह चाल थी कि ब्रह्मगुलाल जब दि० जैन श्रावक है, अहिंसा, दया और जीव रक्षा की घुट्टी बाल्यकाल से इसे दी गई हैं। सिह-स्वाग के अभिनय मे उसके लिए ऐसा अवसर आना चाहिए, जिससे इसकी सिहवृत्ति की परीक्षा जीव वध से की जाय। यदि यह जीव वध करेगा, तो जैनी श्रावक-पद से च्युत होगा, यदि जीव वध नही करेगा, तो इसका सिंह स्वाग असफल रहेगा, और इसको अपयश मिलेगा। जैसा कवि ने कहा है—

"ब्रह्मगुलाल चरित अवलोह, कियो विचार प्रधान वहोय।
राजादिकन सराह्यो थको, उद्धत भयौ मान-पद छको ॥
होय खिजालति इसकी जेम। सार उपाय कीजिये तेम।
यह वाणिक श्रावक वृतधार। करै णही मृगया अधिकार ॥
सिंध स्वाँग ते हिरन सिकार। करत अकरत होय वहु ख्वार।
यह विचारि सिखयो नृपपूत। पेरक भयो वचण के सूत ॥
छतें भूपकें कही कुमार। ब्रह्मगुलाल सुनो हम यार।
स्वाग सिंध को लावो खरो। हऊत्रऊ णिज कारज भरो ॥
सुणत कही मैं ल्यायो सोय। जो कृत दोष माफ हम होय।
पूर्वापर विचार णहि करो। सहसा वचण जाल मे परौ ॥
सुनि भूपति आरे करि लही। होनहार वस सुधि बुधि गई।
वचन वध आपस मे भये। निज-निज काज करण उम गये ॥"

कलाकार ब्रह्मगुलाल जी सिंह स्वाग को वना कर राज-द्वार मे पहुँचते हैं, उनका सिंह स्वाग नही, वल्कि उनकी आकृति व आचरण सिंह सरीखा होने से वे सिंह मालूम हुए।

सिह के तीक्ष्ण दाड, विकराल जीव, अरुण नयनो की क्रूर चितवन, सिर पर चढी हुई लम्बी पूछ, मज़वूत पजे के वडे तेज नख, लम्बी उछलन और उसकी भयानक घाड को सुनकर सभा के सभी सभासद आश्चर्य मे रह गए। प्रधान-मत्री ने राजा की अनुमति से एक हिरण उसी समय सभा मे मगवाया। हिरण के वच्चे को अपने सम्मुख खडा देखकर श्री ब्रह्मगुलाल एकदम खिसिया गये।

और किंकर्तव्य-विमूढ हो गये। वे सोचने लगे यदि मैं इस हिरण-शिशु का वध करता हूँ तो हिंसा का दोषी होता हूँ, यदि नही मारता हूँ तो सिंह की स्वाभाविक वृत्ति से विचलित होता हूँ।

"सन्मुख पडो हिरण अवलोय। मनहि खिजानति घरी वहोय।
सोचत वुरी करी महाराज। हतत तजत हम होय अकाज॥"

ब्रह्मगुलाल की चित्त-स्थिति अस्थिर हो रही थी। उसी समय प्रधानमंत्री की प्रेरणा से राजकुमार ने सिंह-स्वाग के धारक ब्रह्मगुलाल जी से जोर से अपमान-सूचक निम्न शब्द कहे —

"सिंघ णही तू स्याल है, मारत नाहि शिकार।
वृथा जनम जननी दियो, जीतन को धरकार॥"

उपर्युक्त शब्द मनस्वी कलाकार तथा उसकी जननी के लिए विशेष अपमान जनक थे। इन्हे सुनकर ब्रह्मगुलाल की आत्मा विल्कुल विक्षुब्ध हो गई। निरपराध हिरण-शिशु से उसकी दृष्टि हटी, और अचानक क्रोधावेश मे उसने उछल कर राजकुमार के शीष पर छाप मारी। इनसे राजकुमार घायल होकर वेसुध जमीन पर गिर पडा। ब्रह्मगुलाल अपने सखा संगियो महित सभा से वाहर हो गए। इस घातक हमले मे राजकुमार के प्राण-पखेरू शरीर रूपी पिंजरे से उड गए। इकलौते प्यारे राजकुमार के मरजाने से राजा को अपार दुःख और शोक हो गया। किन्तु वचन-वद्ध होने के कारण महाराजा कलाकार ब्रह्मगुलाल से कुछ भी नही कह सकते थे। इधर हिंसा कार्य के करने से ब्रह्मगुलाल वहुत ही दुःखी तथा व्याकुल थे, पश्चाताप की प्रचंड-अग्नि ने उनका शरीर और मन विल्कुल झुनस गया। हर समय उनके दिल मे एक ही हूक उठती थी, इस हिंसा कार्य को मैंने क्यो किया? उनकी भूख, प्यास, नींद सव गई। धीरे धीरे इस मानसिक संताप से उनका शरीर भी कृश होने लगा। उन्हे दिन-रात नेत्रो के सामने अन्धकार का परदा सा पडा मालूम होता था। इससे अपना जीवन-पथ नही दिखाई पडता था। जैसा कि कवि ने कहा है —

"हूजे तण मन विकल विसेस। दीरघ स्वास लेय मुखनेस।
खाण पाण की रुचि सव गई। अधोवदन मूकमण ठई॥

दिण धधा निस निद्रानास। रुचे णही मण भोग विलास।
कसी काय व्यापी तण पीर। पछितावै ण धरै छिन धीर।।
सोचे कहा कियो हम एह। इह पर भव अपजस दुपगेह।।
बुधि जण मोहि णिवारो घनो। मैं ण रह्यौ दुरमतिरस सनो।।
ए सुमित्र हुवै सत्रु भये। पाप करम पेरक परनए।
सार उपाय कहा अब करो। जाकरि अन्तरदाह सुहरो।।"

कुछ लोगो ने जव ब्रह्मगुलाल की इस मनोवृत्ति को देखा, तो उन्हे सबोधा। इस पर श्री ब्रह्मगुलाल ने कहा —

"बोले ब्रह्मगुलाल। राजतनो कछु भय नही।।
जाये प्रान धन माल। परि परभव विगरो डरो।।
यह हिंसा अघमूल। अघते दुरगति होत है।
सो हमकीनी भूल। यह लपि चित धीर ण धरे।।"

इस दुर्घटना से धन माल की क्षति होगी या प्राणो का विनाश होगा, इसकी श्री ब्रह्मगुलाल को कोई चिन्ता न थी, उन्हे कोई चिन्ता थी, तो यह ही थी कि मेरा परभव विगड गया।

प्रधानमत्री ने राजा से कहा, "महाराज इस ब्रह्मगुलाल के कारण आपको पुत्र-वियोग की महान् विपत्ति को झेलना पड रहा है। इसका अव एक उपाय है। आप ब्रह्मगुलाल से कहे कि वह दिगम्बर मुनि का स्वाग दिखाये, यदि लज्जा और भयवश वह इस स्वाग को नही करना चाहेगा, तो वह राज्य छोड कर अन्यत्र चला जायेगा, अथवा राजदड पायेगा। यदि इमने दिगम्बरी भेप धारण कर लिया और वाद मे छोड दिया, तो इसका अपयश वढ जायेगा।

प्रधानमत्री की उपर्युक्त योजना राजा ने स्वीकार कर ली। श्री ब्रह्मगुलाल को दिगम्बर मुनि के स्वाग भरने का राजादेश मिला।

जीवन मे नई मोड़

ब्रह्मगुलाल को दड देने तथा अपमानित करने के उद्देश्य से मुनि स्वाग धारण कराने का चक्रव्यूह, राजनीति अखाडे के चतुर खिलाडी प्रधानमत्री ने

रचा था, किन्तु इस चक्रव्यूह में घिरने के बजाय श्री ब्रह्मगुलाल को एक निर्मल ज्योति दिखाई दी, इस ज्योति के प्रकाश में उन्हे अपने जीवन का सुपथ दिखाई दे गया। इस सुपथ के राही बनने से उनकी वर्तमान-विपत्ति और चिन्ताओं की ही समाप्ति नही होती, वल्कि आत्महित भावना का भी सुअवसर मिलेगा। इसके लिए उन्हें अपने जीवन मे आवश्यक नई मोड लेनी पडेगी। इसके लेने का उन्होंने दृढ-संकल्प कर लिया। घर पर आकर वडी चतुरता से घर के जनो तथा अपनी धर्मपत्नी से भी दिगम्बर मुनि के रूप बनने की सम्मति प्राप्त कर लेते हैं। उनके मित्र मल्ल (श्री मथुरामल्ल) और परिवार के सभी जनो को यह विश्वास हो गया था कि राजकुमार के मरने से ब्रह्मगुलाल पर जो विपत्ति आई हुई है, वह दिगम्बर मुनि का स्वाग दिखाने से टल जायेगी। अन्य स्वागो के समान यदि यह भी स्वाग राजा को दिखाया जाय, तो इसमे क्या हानि है? इसी कारण उन सबने मुनि स्वाग भरने की सम्मति ही नहीं दी, वल्कि प्रेरणा भी दी। इस पर ब्रह्मगुलाल ने कहा —

"जो तुम कहो करो मैं सोय। मेरी ढीलण रचक कोय॥
धरो भेप वदलो णहि कोय। जो कुछ होणी होय सु होय॥

इससे श्री ब्रह्मगुलाल जी के स्थिर मन की दृढता का संकेत मिलता है। श्री ब्रह्मगुलाल जी रात भर सोये नहीं, वल्कि वैराग्य भावों को सुदृढ करने के लिए १२ अनुप्रेक्षाओ (वैराग्य भावनाओ) का चिन्तन करते रहे। प्रात:काल श्री जिन मन्दिर में जाकर श्री जिनेन्द्र देव को ही अपना आचार्य मान कर सब जैन पचो के समक्ष वस्त्रादि सब परिग्रहो को त्यागकर मुनि दीक्षा ले ली।

वाद को आप पीछी कमडल ले ४ हाथ आगे की भूमि सोधते हुए समता और शातिमयी परिणामो के साथ राजद्वार की ओर गमन करते हैं।

अचानक मुनिवेष में ब्रह्मगुलाल को देखकर राजसभा के सदस्य आश्चर्य-चकित रह गये। प्रधानमत्री ने मुनिवर से निवेदन किया कि आप अपने उप-देश से महाराज के मानसिक शोक को दूर करने की कृपा करें।

मुनिवर ब्रह्मगुलाल ने अपना उत्तम-उपदेश जनमनमोहक भरथरी चालि के गाने मे प्रारम्भ किया। इस समय ऐसा मालूम पड रहा था कि मुनिवर की

शरीर, इन्द्रिय और मन मे बिलकुल अनाशक्ति है। महाराजा को सबोधन करने के लिए जो उपदेश निकल रहा था, वह शरीर और मन का न होकर उनकी अन्तर-आत्मा का था। इसी कारण यह उपदेश राजा, प्रधानमत्री तथा सभा के सभी सदस्यो के लिए तलस्पर्शी हो गया। आपने इसमे बताया कि कर्म का सम्बन्ध होने के कारण यह जीव विभाव-परिणति को अपनाए हुए और ससार मे अनेक योनियो मे चक्कर लगाता रहता है। जिस योनि मे जिस शरीर को धारण करता है, उस शरीर के निमित्त से माता-पिता, स्त्री, पुत्र आदि को अपना मान लेता है। पर वे अपने से बिलकुल प्रथक् हे।

"मात तात सुत कामनी, सुसा सहोदर मित्र
सर्व विपरजे परणमे, जग सनृबध अणित्त।
कोण निहारो नैन सो॥
जहाँ मात सुतको हणें। नारि हणें पति प्राण।
पुत्र पिता को छै करे। मित्र होय अरिमान॥
यह जग-चरित विचित्र है॥
कोयण काऊ को सगौ। सब स्वारथ सणबध।
काको गहभरि रोइये। काको सोक प्रबन्ध॥
करि क्यो भव दुःख भोगिये॥
भिन्न-भिन्न सब जीव हैं। भिन्न भिन्न सब देह॥
भिन्न भिन्न परनयन हैं। होय दुखी करि नेह॥
यो भ्रम भूल अनादि की॥

पुत्रादि के सम्बन्ध सब झूठे है, प्रेम और मोह दुःख देते हैं।

बाद को मुनिवर ने उपदेश दिया कि ससार मे प्रत्येक कार्य अतरग और वहिरग दो कारणो से होता है। प्रत्येक जीव के जन्म मरण का प्रमुख कारण तो इसका आयुकर्म है, बहिरग कारण एक नही, अनेक हो सकते हे।

"कुमर मरण मे भूपती। हम हैं बाहिज हेत।
अन्तर आयु णिसेस ही। जानि होऊ समचेत॥
हम सो रोस णिवारिये॥

हम अग्याण थकी कियो । यह कुकरम दुखदाय ।
सो, अब तप, आयुध थकें । छेदेंगे मुनि राय ।।
या मे कछु संसे नही ।।"

इन वचनो को सुनकर राजा का शोक और भ्रम दूर हो गया। राजा तथा प्रधानमन्त्री ब्रह्मगुलाल की प्रशसा करने लगे।

"करत प्रशसा साधकी, सब विधि होय प्रसन्न ।
सब कारज मे निपुन यह, ब्रह्मगुलाल रतन्न ।।
यह सब कारज माही सूर । वचण निवाहक साहस पूर ।
जो जो आयस याको दियौ । सो सो सब कीनो दे हियो ।
भो कुमार उर इच्छा लहो, सो अब लेऊ प्रघट करि कहो ।।
णिदर्नो अपने गेह सुखित । मण मे रचण राख्यो चिन्त ।।"

राजा द्वारा इतनी प्रशसा, अभयदान तथा मनचाहा इनाम लेने के लिए कहे जाने पर, भव-भोगो से वैरागी मुनिवर ब्रह्मगुलाल जी कहते हैं —

"इमि सुणि बोले कुमर सुभाय । हमहिं नही कछु चाह सुरराय ।
इस परिगह में दोष अपार । प्रघट णेन लखि तजो अवार ।।
हम अब तुम प्रसादतें राय । परमारथ पथ लह्यो सुभाय ।
तजि उपाधि अगाधि समाधि । लहि हैं सहजानद अगाध ।।"

राजद्वार से जाकर मुनिवर नगर से दूर एक बाग मे ठहरते हैं। यहाँ पर इनके परिजन पहुँचते हैं, और घर पर वापिस चलने को कहते हैं, समझाते हैं और अन्त मे प्रार्थना भी करते हैं, किन्तु मुनिवर यह ही उत्तर देते हैं—

"तुम णिज वास करो विसराम । हमरो मोह तजो दुख धाम ।
अब ण करि सके हम कछु और । करि हैं तप सावण सुख ठौर ।।"

श्री ब्रह्मगुलाल जी के मुनि बनने पर उनकी धर्म पत्नी को पति-वियोग की असह्य वेदना हुई । उसकी स्थिति जब बहुत ही बिगड गई, तो अन्य स्त्रिया उसे लेकर ब्रह्मगुलालजी के पास गई और उन्हे समझाया कि आप यहाँ वन मे अनेक कष्टो को सेल रहे हो, घर चलो, और आनन्द जीवन व्यतीत करो। पर

ब्रह्मगुलाल ने कहा, "घर गृस्हथी मे दु ख ही दु ख है, ससार मे दु ख का कारण मोह और ममता है। इसके त्यागने से जीव को सुख मिलता है।" इस वैराग्य-पूर्ण उत्तर को सुनकर स्त्रियाँ निरुत्तर हो गई, किन्तु श्री ब्रह्मगुलाल की धर्म-पत्नी विह्वल हो गई और उनके चरणो को नमस्कार कर प्रार्थना करने लगी, "नाथ, आप मुझे त्यागकर वनवास ले रहे हैं, अब मैं किसके पास रहूँ ? इस जगत मे स्त्री का आधार केवल पति है, बिना पति के स्त्री की क्या स्थिति ? आपने क्या वचन दिया था। आप मुझे कैसे छोड सकते हैं ? आदि बडी विनय से प्रार्थना करती है, किन्तु मुनिश्री कहते हैं कि कोई भी वस्तु किसी के आधार पर नही हैं। पत्नी का आधार पति है यह मिथ्या भ्रम है। हर जीव अपने आश्रय होकर परिणमन कर रहा है। यह जीव पराश्रित होकर अनेक भवो मे नाना कष्टो को सहता चला आ रहा है, निजाश्रय पाने पर आत्मा को सच्चा सुख मिलता है। स्त्री की पर्याय दुखमयी है, तुम धर्म सेवन करो। देव शास्त्र गुरु की सेवा पचाणुव्रतो को पालन कर, अपना जीवन सफल करो।

मुनिश्री के उक्त उपदेश से उनकी धर्मपत्नी के चित्त को शान्ति मिली, और उनकी रुचि ग्रहस्थ धर्म सेवन की ओर हो गई।

सुन्दर, विद्वान, युवक कलाकार ब्रह्मगुलाल की प्रियता केवल परिजनो तक ही सीमित न थी, उसका दायिरा नगर के अन्य नर-नारियो तक भी विस्तृत था। ग्रह त्याग और वैरागी होने से वे भी बडे विकल हुए। उन्होने उनके मित्र मथुरामल्ल से कहा, "तुम अपने मित्र को वापिस लाओ।" इधर महिलाओ ने श्री मथुरामल्ल की स्त्री को उलाहने देने शुरू कर दिए कि तुम्हारे पतिदेव बडे होशियार निकले। अपने हार्दिक मित्र को तो वन मे तप तपने भेज दिया और आप ग्रहस्थ के सुखो को भोग रहे हैं। "क्या यह ही सच्ची दोस्ती है ?" इन उलहनो से मथुरामल्ल की स्त्री ने दुखी होकर अपने स्वामी से निवेदन किया कि आप जैसे भी हो, श्री ब्रह्मगुलाल को समझा कर वन से वापिस ले आये। श्री मथुरामल्ल को मालूम था कि ब्रह्मगुलाल जैसे विशेष-ज्ञानी और विवेकशील हैं, वैसे ही दृढ प्रतिज्ञापालक है। जैसा कवि छत्रपति ने कहा है

"मथुरामल्ल मुनि इमि कही, वह नहीं माणे एक ।
हठग्राही वह पुरिपु है तजै न पकनी टेक ॥
बार बार पेरित भई, तिया माडि हट जोर ।
मल्ल अखाडे हाथ करि, आहत वचण कठोर ॥
रहैं तुम्हारे ते प्रिया, मै जाऊँ उन पास ।
जो नहि आये तो मुनौ, नति कीजो हम आस ॥"

श्री मथुरामल्ल ब्रह्मगुलाल जी के पास वन मे जाते हैं, और वनवास को व्यर्थ तथा पचम काल मे मुनि धर्म पालन को अव्यवहार्य्य बतला कर पुन. ग्रहस्थ होने के लिए कहते हैं। श्री ब्रह्मगुलालजी का हृदय वैराग्य-आलोक से अच्छा आलोकित हो चुका था, साथ ही साथ आत्म कल्याण करने की भावना भावना रूप में परिणत हो चुकी थी, उनसे उन्हे सच्चे सुख का स्वाद भी आने लगा। मित्र मल्ल ने घर लौटने के लिए बहुत समझाया, दोनो मे अच्छा वाद-विवाद भी चला, किन्तु श्री ब्रह्मगुलाल ने मित्र मल्ल को करारी मात दी, मल्ल जी आये थे ब्रह्मगुलाल को घर लौटाने के निमित्त, किन्तु मित्र ब्रह्मगुलाल की युक्तियो से प्रभावित और पराजित होकर उन्हे अपना घर छोडना पडा। जैसा कवि ने कहा है—

"यह विचार बोले करि प्यार। ब्रह्मगुलाल सुनो हम यार।
जो ण चलौ तुम घर इस बार। तौ हम भी बरतैं तुम लार॥
मुणिव्रत पालन उचित न हमे। यह तुम ही सो भावन यमे।
पुनि मध्यम श्रावक आचार। पालैं ब्रह्मचरज व्रत सार॥"

इस प्रकार धर्म सेवन के उद्देश्य से ब्रह्मचारी बन कर श्री मथुरामल्ल भी अपने परम मित्र ब्रह्मगुलाल जी के हमराही हो गए।

इन दोनो ने आत्म-कल्याण भावना की, साथ ही साथ अनेक स्थानो पर विहार कर जनता को धर्मोपदेश तथा कर्त्तव्य का उद्बोधन भी किया।

जैन साहित्य-सृजन

मुनि ब्रह्मगुलाल जी ने आत्महित की कामना से मुनि धर्म धारण किया, किन्तु दिगम्बर मुनि-अवस्था मे कठोरतम साधना मे तल्लीन रहने पर भी

आपने इस काल मे परोपकार की भावना से परमार्थ-रस परिपूर्ण जैन साहित्य-सृजन के महान कार्य को भी किया है।

उस समय का हिन्दी-साहित्य

पाठको को विदित होना चाहिए, जिस समय मुनि ब्रह्मगुलाल जी ने जैन साहित्य-सृजन को किया है, उस समय मुगल सम्राट अकबर और जहागीर का साम्राज्य था, इस काल मे हिन्दी साहित्य की विशेष रचना हुई है। इसी काल मे रामायण आदि हिन्दी ग्रन्थो के रचयिता श्री तुलसीदास आदि प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार अपनी-अपनी रचनाओ मे लगे हुए थे। उस समय हिन्दी साहित्य मे निम्नाकित पाच शैलिया प्रचलित थी।

(१) वीरगाथा काल की छप्पय पद्धति।

(२) विद्यापति की गीत-पद्धति।

(३) गग आदि भाटो की कवित्त-पद्धति।

(४) कबीर तथा रहीम की दोहा पद्धति।

रचना शैली की विशेषताएँ

इन सब शैलियो का प्रभाव जैन साहित्य-स्रष्टा श्री ब्रह्मगुलाल पर पडा। उन्होने भी अपनी कविता प्रमुखतया इन्ही छन्दो, दोहा चौपाई, कवित्त, छप्पय आदि में की है। किन्तु इनका विषय और उद्देश्य उपर्युक्त साहित्यकारो के विषयो एव लक्ष्यो से विभिन्न था। श्री ब्रह्मगुलाल जी ने शृङ्गार, वीर, हास्य, रसो को न लेकर केवल आध्यात्म रस को ही लिया है। साहित्य स्रष्टा श्री ब्रह्मगुलाल अपने जीवन की विशेष घटना से ससार के विषय भोगो, परिग्रहो और मोह माया-ममता को, विष वृक्ष के जहरीले फल अनुभव किए हुए थे, और उनको त्यागकर सर्वोत्कृष्ट परमार्थ रस का सुस्वाद ले रहे थे। भला ऐसा साहित्य स्रष्टा श्रगार, वीर, हास्य आदि निस्सार, अनुपयोगी और हीन रस को क्यो दे? उनकी दृष्टि तो यह थी "यह राग आग दहे सदा, ताते समामृत सेइये" श्री ब्रह्मगुलाल जी ने इसी उद्देश्य को लेकर साहित्य-स्रजन मे योग दिया। यह बात नही थी कि उनको अन्य रसो का ज्ञान न था, वे इनके

ज्ञानी थे, पर इन्हें वे हीन और हेय माने हुए थे। ब्रह्मगुलाल जी ने केवल हिन्दी में ही कविता नहीं रची, बल्कि उन्होंने संस्कृत और प्राकृत में भी अपनी रचनाएँ की हैं, पर इनका अधिक साहित्य हमें हिन्दी में मिलता है। उनकी भावना यह थी कि संस्कृत के पाठी, तथा ज्ञाता बहुत ही थोड़े हैं, हिन्दी सर्वसाधारण की भाषा है, क्या ही अच्छा हो कि संस्कृत में रचे हुए उत्तमोत्तम विषयों का रस हिन्दी के पाठकों को भी मिले, इसी उद्देश्य से इन्होंने प्राचीन उपयोगी संस्कृत रचनाओं का बहुत ही अनूठा वर्णन हिन्दी की सरस कविता में किया है।

रचनाओं की भाषा

कविवर ब्रह्मगुलाल जी के ग्रन्थों की रचना भाषा पुरानी हिन्दी ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा भी वह, जिस पर कवि के निवास "टापे" के चारोंओर बोली जाने वाली (एटा आगरा, और मैनपुरी में बोले जाने वाली) हिन्दी का प्रभाव पड़ा है। कविवर ब्रह्मगुलाल संस्कृत और प्राकृत के विद्वान थे। उस समय देश में मुगल साम्राज्य का सूर्य उदीयमान था। राज्याश्रय पाने के कारण उर्दू भी जगह-जगह अपनी चटक-मटक दिखा रही थी। यह ही कारण है संस्कृत और उर्दू के शब्द भी आपकी रचनाओं में हैं। खैर, फिर भी आपकी भाषा सरल, सरस और सर्वसाधारण के समझ में आने योग्य है।

कविवर ब्रह्मगुलाल जी के रचे हुए निम्न कविता ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं :

१ त्रेपन क्रिया — २. कृपण जगावन चरित
३. समोसरण — ४ जलगालन विधि,
५. मथुरा वाद-पच्चीसी — ६ विवेक चौपाई
७. नित्यनियम पूजा के अनूठे छंद — ८. हिन्दी अष्टक आदि।

१. त्रेपन क्रिया—इसको कविवर ने विक्रम सम्वत् १६६५ में रचा है।

आमेर के प्राचीन जैन ग्रन्थों के भंडार में इसकी प्रति उपलब्ध हुई है इसका मंगलाचरण निम्न है :

राग-सारंग--

प्रथम परम मगलु जिन चर्च्चनु दुरित तरित तजि भाजै हो।
कोटिविघन नाशन अभिनदन लोक शिखरि सुखराजे हो।
सुमरि सरस्वति श्री जिन उद्भव सिद्ध कवित्त सुभवानी हो।
गत गधर्व जत्थ मुनि इद्रनि तानि भुवन जन मानी हो ।।१।।
गुरुपद सेंह् परम निरगथनि जिन मारग उपदेशी हो।
दरशन ज्ञान चरण आभूषित मुक्ति भुवन परवेसी हो।
देव शास्त्र गुरुमे आराधित करउँ कवित्त कछु आगै हो।
श्रावगव्रत त्रेपनविधि वरनो पच गुरनु अनुरागे हो ।।२।।

× × ×

अन्तिम भाग—

वसु गुन मूल कहे जिन स्वामी जो कोऊ जिय जाने हो।
द्वादशव्रत अनजान न को गनि कहत सुनत पहिचाने हो।
वारह तप छह अभ्यतर वाहिज जतन जुगति परि पाले हो।
समजल गालन ग्यारह प्रतिमा जीव को नित्य सुखालै हो ।।
दान स चहुँविधि रयनि अभोजी रत्नत्रय वृत पूरे हो।
ए त्रेपन विधि करह कृपाभवि, पाप समूह निचूरै हो ।।

ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति मे लिखा है—

"सोरहसौ पेंसठि सवच्छर कातिक तीज अधियारी हो।
भट्टारक जगभूषण चेला ब्रह्मगुलाल विचारी हो।।
ब्रह्मगुलाल विचार बनाई गढ गोपाचल थाने।
छत्रपती चहुँछत्र विराजै साहि सलेम मुगलाने ।।"

इससे मालूम होता है कि कविवर ब्रह्मगुलाल ने इस ग्रन्थ की रचना ग्वालियर मे विक्रम सवत् १६६५ कार्तिक वदी ३ को पूरी की है। आपने अपने को ग्वालियर के भट्टारक श्री जगभूषण का चेला बतलाया है।

भारतवर्ष मे उस समय मुगल बादशाह जहागीर (सम्राट अकवर के पुत्र सलीम) का साम्राज्य था। ग्वालियर भी इसी सामाज्य मे था।

२ कृपण-जगावन-चरित्र—कविवरब्रह्मगुलाल जी ने इसे संवत् १६७१ में रचा था। इसमे सवैया, चौपाई, छन्द, दोहा, छप्पय आदि ३०० से ऊपर हैं। विद्वान ग्रथ-रचयिता ने बीच-बीच मे नीतिपूर्ण संस्कृति श्लोक और प्राकृत गाथा भी दी है। इस ग्रथ का सम्पादन जैन साहित्य के विद्वान श्री बाबू कामता प्रसाद जी जैन, अलीगंज (वर्तमान मे संचालक-अखिल विश्व जैन मिशन) ने सं० २००१ मे किया है, और उन्होने अपने स्व० पिता लाला प्रागदास जी जैन की स्मृति मे अपने व्यय से प्रकाशित कराया है। इसकी भूमिका मे लिखा गया है।

"पुराने हिन्दी के प्रागण मे श्री मुहम्मद मलिक जायसी के "पद्मावत" काव्य जैसी एक-दो ही उल्लेखनीय रचनाए हैं। श्री ब्रह्मगुलाल जी का "कृपण जगावन चरित्र भी इसी कोटि मे आता है। प्राचीन हिन्दी साहित्य मे इसको गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त है। यद्यपि कविवर ब्रह्मगुलालजी ने इस ग्रन्थ की मूल-कथा को प्राचीन जैन साहित्य से लिया है, किन्तु उसको अपनी वर्णन शैली तथा चमत्कृत कल्पना से चमका दिया है। अपने इस मौलिक रूप मे यह रचना साहित्य की दृष्टि से महत्वपुर्ण होने के साथ ही सर्वसाधारणोपयोगी बन-गई है। इसके पहले कवि ठकरसी ने भी एक "कृपण चरित्र' रचा था। किन्तु इसमे उन साहित्यिक कल्पना और चमत्कार के दर्शन नही होते, जो श्री ब्रह्मगुलाल के प्रस्तुत चरित्र ग्रन्थ मे मिलता है।"

इसकी कथा लोभ "कृपणता" को लेकर है। जीवन मे कजूसी दु:ख का कारण है, किन्तु धर्मार्थ दान देने मे कजूसी और कुभाव करने से इस जीव को रौरव नरक तथा सूकरी कूकरी आदि निकृष्ट पर्यायो मे महान् कष्टो को सहना पडता है। जैसा कि इस ग्रन्थ (कृपण जगावत चरित्र) की पात्रा क्षय-करी को सहना पडा। केवल स्त्रिया ही कृपण नही होती, पुरुष भी होते हैं। इसको एक ओर अनर्कथा कहकर कवि ने इस ग्रन्थ की अनूठी रचना की है। इस ग्रथ का स्वाध्याय करने पर विचारशील पाठक की जिज्ञासा तथा चित्ता कर्षण दिलचस्प उपन्यास के समान बढता ही जाता है। बीच बीच में नीति शिक्षापूर्ण संस्कृत के श्लोक और कहीं-कहीं प्राकृतिक गाथाए पाठको के हृदयो

मे स्थायी अन्तर्पुट का काम करती है। साथ ही साथ इस ग्रथ मे अध्यात्म रस पूर्ण पावन-पाथेय परमार्थपथ के पथिको को पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त होता जाता है।

इस प्रकार कवि ने "कजूस" का कैसा वढिया चित्र खीचा है—

॥ चौपाई ॥

"सुनि राजा सूमनि की वात, नाम लेत पापहिं परभात।
जे भूले मुख निकसे नाम, भयौ करयौ धरि विनसे काम॥
मुख देखे ते परे उपासु, मुख आये गिर जाय गरासु।
गारी कुवात कहहिं जन भाषी, प्रगट नाम, व्रज वौलहि राशी।
अपत सूम घर पाहुनो जाइ, जैसे ऊट लदे वरराइ।
आपुन खाइ न वाको करे, सहित पाहुने भूषनि मरे॥
खिजे, वके, सिर धुने, विगोय, झुरि-झुरि इमि जरि पजरु होइ।
सदा मलिन मुख रहे थुथाय, मीडे कर मुख निकसे हाय॥
मरि निवरे मरि जैहे कवे, हमरे जी को रुठे सवे।
जो कछु वस्तु उठे घर माहि, पीसे दात जु काटै वाह॥
वहन-भानजे विधि व्योहार, व्याह काज पावन त्यौहार।
घर के हियो सुहारी जात, सुनि राजा सूमनि की वात॥"

हे राजन्! कजूस या सूम का प्रभातकाल मे नाम लेने से पाप लग जाता है, यदि भूल से किसी के मुह से उसका नाम निकल जाय, तो करा कराया काम भी विगड़ जाता है। यदि कजूस का मुँह दिखाई दे जाय, तो दुःखपूर्ण उच्छवास निकलते हैं, मुख पर उसका नाम याद आ जाय, तो मुँह मे गया गस्सा भी गिर जाता है। लोगो मे कजूस का नाम गारी से लिया जाता है। अपने घर मे मेहमान को आया हुआ देख कर सूम को वडा दुःख होता है, भारी वोझ से लदे हुए ऊट के समान वह वढ-वढ करता है। सूम स्वय खाना छोड देता है, तथा मेहमान के लिए भी खाना नही वनाता। वह भूखा रहता है। तथा मेहमान को भी भूखा रखता है। यदि कजूस से कोई खर्च करने की वात करता है तो उसे सुनकर वह चिढ जाता है, वकने लगता है, अपने घर

की चीज किसी दूसरे के दिये जाने पर वह सिर धुन-धुन कर पछताता है। क्रोधाग्नि मे शरीर को जलाता है, वह सूख-सूख कर पिंजर हो जाता है। थोडा सा भी खर्च यदि हो जाय, तो हाथो को मल कर कहता है "हाय यह क्या हुआ ?" मैं तो मर गया, ये कब मरेंगें ? ये सब मुझ को ही रोने आये हैं।" गुस्से में दातो को पीसता है, अपनी भुजा को काट खाता है। विवाहादि शुभ अवसरो या होली, दिवाली आदि पवित्र त्योंहारो पर बहिन भाजी आदि के लिए जो देने की रीति हैं, उसे यह बिल्कुल नही भाती।

महिला-महिमा

कविवर ब्रह्मगुलाल ने इसी ग्रन्थ मे स्त्री को सर्वोत्तम गुणो से विभूषित तथा पुरुष को सच्चा सुख देने का प्रमुख कारण बतलाया है।

"कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी, स्नेहेषु मित्र शयनेषु रम्भा।
धर्मानुकूलस्यो क्षमया धरित्री, षड गुणा पुण्य वधूरिहे च ॥
वक्षोजो कठिनो, न वाग्विरचना मदागतिर्नो मति।
वंक्रभ्रयुगल मनो न जठर, क्षाम नितबो न च ॥
युग्म लोचनयोश्चल न चरित, कृष्णा ककचा, नो गुणा।
नीच नाभि सरोवर न रमण यस्या मनोज्ञाकृते ॥ २
स्त्रीत सर्वज्ञनाथ सुरनतचरणो जायतेऽत्रावबोध।
स्तस्मात्तीर्थ श्रुताख्य जनहित कथक मोक्षमार्गावबोध ॥
तस्मात्तस्माद्विनाशो भवदुरितत्तते सौख्यमस्माद्विबावति।
बुध्वेव स्त्री पवित्रा शिवसुखकरिणी सज्जन स्वीकरोति ॥

भावार्थ "स्त्रियो से देवो द्वारा वंदनीय सर्वज्ञदेव उत्पन्न होते हैं, सर्वज्ञ-देव सच्चे शास्त्रो का उपदेश देते हैं, सच्चे शास्त्रो से मोक्षमार्ग का ज्ञान होता है, मोक्षमार्ग के ज्ञान से ससार का नाश होता है, और ससार के नाश होने से निराबाध नित्य अनन्त सुख मोक्ष मिलता है। इसीलिए जिसके (स्त्री के) कुच कठिन होते हैं, वाक्य नहीं, गति ही मद होता है, बुद्धि नही, भौंहे ही कुटिल होती है, मन नही, उदर ही कृश रहता है, नितब नही, नेत्र ही चचल होते है,

चरित नही, केश ही काले होते हैं, गुण नही, और नाभि (सूंडी) ही नीच होती है, काम नही, ऐसी स्त्री को सज्जन स्वीकार करते हैं।

महिलाओं की धर्मरुचि

इसी प्रकार लोभी सेठ लोभदत्त की समुद्र मे मृत्यु हो जाने पर उनकी दोनो धर्मपत्निया—कमला और लक्ष्मी—धर्मसेवन की ओर प्रवृति बढाने को सन्मुल होती हैं, तव कविवर ब्रह्मगुलाल जी अविकारी कुलांगना स्त्री के चरित गुण की उपमा शीतल चदन से देते हैं।

॥ दोहा ॥

"दुखी सुखी घर कुलवधू जनम न बहे विकार।
जिम चदन शीतल सदा, घिसे पिसें टक सार॥"

भावार्थ—कुलांगना चाहे दुखी हो या सुखी, अपने घर मे ही रहेगी, कितनी ही विपत्तियाँ उसके जीवन पथ मे आयेगी, किन्तु उसका मन कभी भी विकृत न होगा। जैसे चदन को कितना भी घिसो, पीसो और कष्ट दो, किन्तु उसका शीतल गुण टकसाल की तरह अविकृत रहेगा।

यह ग्रन्थ इसी प्रकार की बढिया-बढिया उपमा, ज्वलत उदाहरणो तथा मनमोहक और शिक्षाप्रद कथा से युक्त होने के कारण पाठको के लिए बडा हितकारी है। इस ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति मे ग्रन्थ रचयिता ने लिखा है—

॥ चौपाई ॥

"सुनहु कथा तुम भव्य महान्, जाहि सुनें मन वाढें ज्ञान।
कृपण जगावन याको नाउ, पढे सुनें ताकी बलि जाउ॥
जगभूपण भट्टारक पाइ, कर यो ध्यान अतरगति आइ।
ताको सेवक ब्रह्मगुलाल, कीनी कथा कृपण उर साल।
मध्यदेश रपरी चद्रवार, ता समीप टापे सुखसार।
कीरति सिन्धु धरणीधर रहे, तेग-त्याग को समसरि करे।
महि मडल कीनो गोधीर, कुलदीपक उपज्यो महि वीर।
अति उदार कीने जगदीश, जीज कुलवर कोर वरीस॥

पद्य हैं। इसमे विस्तृत रूप मे जलछालन विधि दी गई है। जलछालन विधि का ज्ञान तथा उसको प्रतिदिन व्यवहार मे लाना प्रत्येक जैन गृहस्थ का आवश्यक कर्तव्य है। विद्वान् कवि ने इस ग्रन्थ को रचकर जैन गृहस्थो का परम कल्याण किया है। उपर्यूक्त ग्रथ की प्रति अजमेर के घडा जिन मदिर जी के गुट का न० ७४७ से प्राप्त हुई है।

इसका मगलाचरण यह है—

"प्रथम वद्य जिनदेव अनत, परम सुभग शीतल शिव सत।
सारद गुरु वदो परवान, जलगालन विधि करो बखान ॥ १ ॥
जो जलगालइ जतन स्यो, जिहि विधि कहै पुरान।
गुलाल ब्रह्म सो नर सुखी, लोक मध्य परवान ॥ २ ॥

इसका अन्तिम छन्द यह है—

गालन विधि पूरन भई, कहत अतु नहिं वेद।
गुलाल ब्रह्म सुनि जो भनै, सो नर होय अभेद ॥

५. "मथुरा-बाद पच्चीसी"—कविवर गुलाल के इस ग्रन्थ मे २८ मनोहर पद्य हैं। इसमें मुनि श्री ब्रह्मगुलाल तथा इनके सखा मथुरामल्ल में मुनि और गृहस्थ पर हुए विवाद का सुन्दर वर्णन है। श्री मथुरामल्ल की स्त्री ने अपने पति को पुन पुन प्रेरणा की कि वह किसी भी तरह से हो, श्री गुलाल को मुनि धर्म त्याग कराकर घर ले आवे। श्री मल्ल जी अपने मित्र से कहते है कि पचमकाल मे मुनि धर्म का पालन नही हो सकता, क्योकि इसके लिये क्षेत्र काल और परिणाम नही बनते। घर मे रहकर गृहस्थ के व्रत पाल कर जीव अपना कल्याण कर सकता है ? आदि प्रश्नो के उत्तर विद्वान् ब्रह्मगुलाल अपनी ऊँची तरको से देते हैं। अन्त मे मल्ल जी अपनी हार मान लेते है और स्वय घर वार छोडकर ब्रह्मचारी बन आत्म-हित-पथ पर लग जाते है।

इसका प्रथम छन्द निम्न है—

ध्यान धरहु भगवत को, तजहु सकल विपपाद।
सुनहु भव्य इक चित्त है, जोग भोग परमाद ॥

सग्रु परिग्रह ग्रह तज्यो, ति जेति चचल वाज ।
पूछे मल्ल ग्रुलाल को, जोग लिये केहि काज ॥ १ ॥

भोगहि छाड के जोग लियो । तुम जोग मे मीठो कहा है ग्रुसाई ।
सेज विचित्र सकोमल सुच्छ, तजी घर कामिणि काहे के ताई ॥
इन्द्रिन के सुख छाडि प्रतक्ष, कहा सुख देखत शीतल ताई ।
'मल्ल' कहे सुणि ब्रह्मगुलाल, मुकारण कोण कियो तप आई ॥ ३ ॥

इसके उत्तर मे गुलाल जी अपनी तर्क पूर्ण युक्तियो को वतलाते हुए कहते हैं कि जोग के विना इस जीव का कल्याण ही नही—

"भोग किये तन रोग वढे, अति जोग किये जम आवे न जोरे ।
कामिनि सेज दिना दस की, फुनि जै हैं सवै जु कियो कछु ओरे ॥
इन्द्रिय स्वाद अनेक किये, नही तृपति कहूँ, फिर वाढत खोरे ।
ब्रह्मगुलाल कहैं मथुरा, सुनु जोग विना नही निरभै ठोरे ॥

इस प्रकार के मल्ल जी के अनेक प्रश्न उठते हैं, उन प्रश्नो का करारा उत्तर समाधान के रूप मे मुनि गुलाल जी देते हैं और वह भी जन मनमोहक सवैया (तेईसो) छद मे देते हैं । अन्तिम २८ वाँ छद मुनि ब्रह्मगुलाल का कितना वढिया है, इसे देखिये—

या घर तें उठि वा घरि वैठिये, भोगति देहतें देह धरेगो ।
मान कलेसू कहा इननौ मन, पुण्य भलो घर और करेगो ॥
मरिवे ते गुलाल नि शक रहो, अव देह मरे, फिर तू न मरेगो ।
आगि लगे जरहै टपरी, टपरी के जरेंते न अकासु जरेगो ॥

इसमे कितना वढिया आत्म-रस, ऊँचा भाव और उपमा-उपमेय है । जव तक यह जीव भोग विलासो मे तल्लीन है, इसके देह रखने की प्रवृति वरावर जारी रहेगी । अगर कोई पुण्य कार्य कर लिया, तो अच्छे कुल मे पैदा हो जाओगे, पर सुख दु ख की झडी लगी ही रहेगी । लेकिन यदि तूने कही भोग छोडकर योग ले लिया, तो तू मौत से नि शक हो जायेगा । उस समय यह तेरी देह मर जायेगी, पर आत्मा अमर वनेगी । इसके लिये मुनिवर गुलाल फवता हुआ दृष्टात टपरी (छोटी झौंपडी) से देते हैं । जैसे किसी झोपडी मे

आग लग जाये, तो झोपड़ी ही जल जायेगी, झोपडी के फुकने से अनत आकाश कभी नही फुकेगा।

कविवर गुलाल जी की यह "मथुरा वाद पच्चीसी" सभी दृष्टियो से हिन्दी साहित्य मे चमकता हुआ रत्न है। कविवर छत्रपति ने अपने ब्रह्मगुलाल के २३ वें अध्याय मे इसे लिया है। २८ छदो में से कविवर छत्रपति ने केवल २३ छदो को लिया है। इसके कारण यह है कि ब्रह्मगुलाल अध्याय में पहिला छद तो (जिसमे नियमानुसार २३वे तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ को नमस्कार किया गया है) मगलाचरण का है और इसके छद मे "मथूरामल्ल जी के विवाद का प्रश्न आरम्भ हो जाता है। अब शेष २३ छद "मथुरामल वाद पच्चीसी" के हैं। कविवर गुलाल के इन २३ छदो ने वैराग्य रस की झडी लगा दी है। इससे छत्रपति के ब्रह्मगुलाल मे शोभा के चार-चद लग गये हैं। इस अध्याय का अन्तिम २६ वाँ छद कवि छत्रपति का रचा हुआ है। जिसमे बतलाया गया है कि इस प्रकार के उत्तरो से मल्ल जी के हृदय में प्रतिबोधता जग गई और उन्हे सासारिक-भोग-विलास कडवे, झूठे और व्यर्थ लगने लगे।

६. **विवेक चौपाई**—जयपुर के ठोलियो के दि० जैन मदिर के शास्त्र भडार के गुटका न० ६२६।१२५ मे यह प्राप्त हुई है। इस गुटका का लेखनकाल स० १७१२, ज्येष्ठ सुदी २ है। कविवर ब्रह्मगुलाल जी ने इसकी रचना सरल किन्तु सरस चौपाई छद मे की है। इसकी प्रत्येक चौपाई से विवेक का वह अमृत-रस झरता है, जो सुषुप्त श्रोताओ तक की अन्त स्थली पर विवेक की झनकार सुनाता है। हमारी सम्मति मे भारतीय-साहित्य मे, अनेक सत कवियो ने अपने विशुद्ध ज्ञान और जीवन के अमूल्य अनुभवो को आश्रय कर जो बढिया विवेक—बोल और ज्ञान—सूक्तियाँ रची हैं, उनमे गुलाल जी की इस विवेक-वचनावली को भी उच्च स्थान दिया जा रहा है। इसका स्पष्ट कारण यह है कि श्री गुलाल जन्मजात कलाकार थे, युवावस्था मे हम उनमे विविध स्वाग भरने की सफलता तथा हास्य शृङ्गार और आमोद-विनोद की साहित्य रचनाओ की कला को देखते हैं, फिर अपनी ही जीवन घटना से बने वैरागी आत्म-शुद्धि की तड़पन लिए, कठोर तप तपने मे तल्लीन हो जाते है। शुद्धाचरण का

साधना के साथ-साथ परोपकार की निर्मल-भावना से परमार्थ-साहित्य रचना को भी करते जाते हैं। ऐसे विवेकी साधक की ज्ञानवृद्धि ही नही होती, बल्कि उनमें निर्मलता का पुट बढता जाता है, ऐसी स्थिति मे जाग्रत-अनुभव के साथ जो छन-छन कर बढिया विवेक आता है, वह ही हमे विवेक-वचनावली मे मिलता है। पाठक निम्न पक्तियो मे इसे देखेंगे—

"आचार सो ही जीह-सजम पोख।
ग्यान सोई जीह पावो मोख॥
दान सोही दीजे करी भाव।
पूजा सोही जी उपजो चाव॥
ध्यान सोही जीह आपो लखै।
सील सोही सब अग निरखै॥
कवी सोई प्रभु को गुन कहै।
सोई तपा क्षमा को लहै॥
वीरह सोई गरुर है कुचील।
सती सोई जो पालें सील॥
गुनी सोई सो औगन तजो।
धरम सोही सब करुना सजो॥
मुख सोही जोह लीजे नाम।
जती सोही जो राखो काम॥
खत्री सोई जो रखा करै।
पडत सो जो पापै डरै॥
उदास रहो सोही वैरागी।
धनी सोही जो अपनो भागी॥
वयन सोही जो सांचो कहो।
सुख सोही जीह निरभय रहो॥
रहनी सो जीह रहै अबाध।
नयन सोही जिन देखो साध॥

हस्त सोहो मुनि दीजै दान ।
कर्न सोही जीह सुणा पुराण ॥
चरन सोही जिन तीर्थ चलौ ।
भुज सोही जे सजन मिलौ ॥
माथो सो जिनदेउ नमती ।
कठ सोही गावौ जगपती ॥
बुधी सोही जीह धर्म ही चढौ ।
जीभ सोही प्रभु अस्तुती पढौ ॥
देह सोही व्रत सजम धरौ ।
मन सोही सुभ चिंता करो ॥
भवी होही सो जाने भेव ।
मन सो सत्य जिनेसर देव ॥
मिथ्यात के चित न रहौ ।
मन मौ अर अरमुख कहौ ॥
दया धरम की महिमा हीती ।
पालो सो काटो भव गीती ॥
कहौ गुलाल जग भूषन सिस्य ॥
पच महाव्रत पालो दख्य ॥
सुणो भवी थिर दे करि कान ॥
जो बढौ मन आछौ ग्यान ॥"

भावार्थ कवि का आशय है कि आचार वह है, जो सयम की सुरक्षा करे, सच्चा ज्ञान वही है, जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो सके। उत्तम दान वही है, जो सद्भावो से दिया जाय। पूजा वही है, जो चाव (हार्दिक चाह) से की जाय, उत्तम ध्यान वही है, जिससे आत्मस्वरूप पहिचाना जाय।

कवि वही है, जो अपनी कविता से भगवान के गुणो का गान करे। तप वह ही है, जिसके तप से क्षमा-प्राप्ति हो। वीर वही है, जिसने मान का मर्दन कर दिया हो। सती वह ही है, जो सर्व प्रकार से अपने शील का पालन करे।

सच्चा गुणी वह ही है, जिसने अवगुणो का परित्याग कर दिया हो। सच्चा धर्म वह ही है जो दया-करुणा मे भूपित हो। मुह वह ही श्रेष्ठ है जिससे भगवान का शुभ नाम निकले। यती वह ही है, जिसने कठोर कामदेव पर विजय प्राप्त करली हो। क्षत्रिय वह ही है, जो अन्यो की रक्षा करे। पडित वह ही है, जो पापो से भयभीत रहे। वैरागी वह ही है जो ससार के भोगो से विरक्त हो। जो अपने भाग या हिस्से का है उसी धन से धनी कहा जा सकता है। वचन वह ही हैं जो सचाई सहित है। सच्चा सुख वह ही है, जिसके मिल जाने से वह जीव निर्भय-निडर होकर रहे। रहने के योग्य निवास वहा है, जहा कोई बाधा न हो। नेत्र वही हैं, जिनसे भली प्रकार देखा जा सके। बढिया हाथ वह है, जिसने मुनियो को दान दिया हो। अच्छा कान वही है जो शास्त्रो की कथनी को सुने। पैरो की सार्थकता इसी से है कि उनसे तीर्थो की वदना की जाय। उत्तम भुजायें वे हैं, जिनके द्वारा सज्जनो से भेंट हो। मस्तक वह ही उत्तम है, जो जिनेन्द्र भगवान के दर्शन पाकर अचानक अवनत हो जाय। कमनीय कठ वही है, जो बडी लय से भगवान के गुणो का गान करे। बुद्धिमान वह ही है, जिसने अपने जीवन मे धर्माचरण किया हो, वह ही जीभ प्रशसनीय है, जो परमात्मा की स्तुति मे लगी रहती है। मानव शरीर की सफलता इसी मे है कि इसके द्वारा व्रतो और सयम का पालन किया जाय।

मन की शोभा इसी मे है कि वह शुभ-चितन मे ही रहे। भव्यजीव वही है, जो आत्मा को अपने शरीरादि से विभिन्न अनुभव करता हो, तथा मन से जिनेन्द्र भगवान को ही सच्चा देव मानता हो, जो मन मे होय उसे ही मुँह से कहे। दया-धर्म की सबसे बडी महिमा है, इसका पालन करने से जीव चारो गतियो के बन्धन को काट सकता है, भट्टारक श्री जगभूषण के शिष्य श्री गुलाल का कहना है कि हे भव्यजीवो! पच महाव्रतो को पालन कर मानव-जीवन सफल करो।" कविवर की विवेक-वचनावली यह है तो छोटी, किन्तु उपयोग मे रसायन की उपमा रखती है। कविवर के इन अनमोल-बोलो से मानव के हृदय मे सहसा विवेक जग जाता है और वह ससार को अनित्य और असार समझ कर सुपथ की ओर दृष्टि करता है।

पूजा के हिन्दी अष्टक

देवशास्त्र गुरु संस्कृत पूजा का प्रचलन जैन समाज मे प्राचीन काल से है, किन्तु संस्कृत भाषा के ज्ञाता भक्त पूजकों मे शायद एक प्रतिशत के ही करीब होंगे। हिन्दी भाषा-भाषियों को भी पूजा का अर्थ, भाव और ध्येय समझ मे आ जावे, इस उद्देश्य से कविवर पं० ब्रह्मगुलाल जी ने संस्कृत के जलादि अष्टकों के साथ निम्न हिन्दी अष्टकों की रचना की, जिनके पढने की प्रवृत्ति जैन समाज में आज भी चालू है

'मलिन वस्तु उज्ज्वल करै, यह सुभाव जल माहि।
जलसौं श्री जिनपद पूजियै, कृत कलंक मिटि जाहि।१। जल।
तपत वस्तु शीतल करै, चंदन शीतल आप।
चंदन सों जिन पूजियै, कृत कलंक मिटि जाहि।२।
तंदुल धवल पवित्र अति, नामुज अक्षित तास।
अक्षित सों प्रभु पूजिए, अक्षय गुनहि प्रकाश।३। अक्षत।
पुहप चाप धर पुष्पसर, धारै मन्मथ वीर।
यातें पूजो पुष्प सों, हरै मदन सरपीर।४। पुष्प
परम अन्न पकवान विधि, क्षुधाहरण तन-पोष।
मैं पूजो नैवेद्य सों, मिटै क्षुधादिक रोग।५। नैवेद्य
आपा पर देखै सकल, निशि मे दीपक ज्योति।
दीपक सो प्रभु पूजिये, निर्मल ज्ञान उद्योत।६। दीप
पावक दहै सुगंध को, धूप कहावै सोय।
खेवत धूप जिनेन्द्र पद, अष्ट कर्म क्षय होहि।७। धूप।
निंबु अंबु, श्री फल पुगी कैवरो।
होंहि मुकति फलसार, श्री जिन आगै सुपुञ्ज फल॥
जो जैसी करनी करै, सो तैसो फल लेहि।
फल पूजा महाराज की, निहचै शिवफल देहि।२। फल।
जल चंदन करमाल, पुहपाक्षत नैवैद्यसो।
दीप धूप फलसार, श्री जिनेन्द्र आगे अर्घ दें॥

जो जिन पूजैं अष्ट विधि, कीजै कर सुचि अग।
प्रथम पूजि जल धार सों, दीजैं अर्घ अभग ॥६॥ अर्घ
पूजों हों सर्वज्ञपद, अष्टदरवि करि भाव।
ब्रह्मगुलाल शिवगमन कों, सचमुच यहे उपाय ॥१०॥ महार्घ

कविवर ब्रह्मगुलाल ने इन हिन्दी पूजा अष्टको को रच कर हिन्दी भाषी जिन भक्तो का परमोपकार किया है।

ग्रन्थ के ग्रन्य पात्र

श्री हल्ल

हल्ल के पिता ग्रल्ल थे। इनके ज्येष्ट भ्राता दीर्घ थे। ये ब्रह्मगुलाल के पिता थे। सुयोग्य ग्रहस्थ होने के साथ-साथ ये वडे विवेकी ग्रौर "धैर्यशाली व्यक्ति थे। ग्रग्नि मे इनके घर की सब वस्तुग्रो तथा स्वजनो व परिजनो के जल कर मर जाने की खवर जब इनको गाव से वाहिर मिलती है, तो उनके हृदय पर ग्रचानक वज्र की मी चोट पहुँचती है, किन्तु उससे ग्राहत होने पर भी स्वाभाविक साहस गुण से मन मे सोचते हैं

"जो हम हैं तो हैं सब लोग। कौण हेत ग्रब करिये सोग॥'

इस साहस के साथ-साथ उनमे कर्तव्य ग्रौर विवेक भी जाग्रत होते है, ग्रौर वे सीधे राजा के पास जाते है। राजा ने गुणी धर्मात्मा हल्ल को विपद-ग्रस्त देखकर ग्रपने यहाँ सहर्ष ग्राश्रय दिया। इनके गुण, स्वभाव ग्रौर वर्ताव से प्रसन्न होकर राजा ने इनकी वडी सहायता की। पिता को कुल चलाने के निमित्त ग्रपने प्राणतिप्रिय पुत्र के विवाह के लिए चिन्ता, प्रयत्न ग्रौर प्रवृत्ति करनी पडती है, ठीक उसी प्रकार ग्रायु-खसे हुए हल्ल के दूसरे विवाह के लिए राजा को सब कुछ करना पडा। स्त्री मिल जाने ग्रौर घर वस जाने पर, हल्ल पुनः ग्रपना सुखमय ग्रहस्थ्य-जीवन बिताते हुए उचित कर्तव्यो का पालन करते हैं। ग्रापके शिशु ब्रह्मगुलाल का लालन-पालन ऊँचे स्तर पर चलता है। वाद मे समय ग्राने पर वच्चे मे ऊँची शिक्षा तथा धार्मिक सस्कारो को लाने के लिए ग्रापकी सराहनीय प्रवृत्ति होती है। एक ग्रादर्श-पिता मे पुत्र के चरित्र-निर्माण के लिए जितने ग्रावश्यक गुण चाहिए, उन्हे हम श्री हल्ल मे पाते हैं।

श्री मथुरामल्ल सिरमौर

जारकी के श्री महिमडल सिरमौर के पुत्र श्री मथुरामल्ल थे। जारकी और "टापू" के बीच केवल ५-७ मील का अन्तर है। श्री मथुरामल्ल श्री ब्रह्मगुलाल के भतीजे थे। ब्रह्मगुलाल और मथुरामल्ल दोनो ही बचपन से परम मित्र थे, दोनो ही बाल्यकाल मे एक धूलि मे साथ-साथ खेले, युवावस्था मे विविध स्वाग भरते और दुख-सुख मे साथ रहे। कविवर छत्रपति जी के कथनानुसार ब्रह्मगुलाल हर कार्य को मित्र मल्ल की मत्रणा लेकर ही करते थे। यहाँ तक कि राजा ने ब्रह्मगुलाल को जब दिगम्बर मुनि का स्वाग भरने के लिए आदेश दिया था तो सबसे पहिले आपने मल्ल से मत्रणा की। विपद-ग्रस्त श्री ब्रह्मगुलाल ने राजा की आज्ञा को बतलाते हुए कहा था

१. यदि आप चाहते हैं कि मै घर मे रहूँ, तो आपको यह नगर तथा अपनी कुल सम्पत्ति छोडकर अन्यत्र जाना पडेगा।

२ यदि मै यहाँ पर रहता हूँ, तो मेरी गति या तो बनवास (दि० मुनि) करने की बनेगी या मुझे भी प्राण छोडने पडेंगे।

इन वचनो को सुनकर घर के सभी जन विह्वल होकर चुप हो गए, केवल मल्लजी ने कहा, "यदि आप राजा के आदेश का पालन न करेंगे और अन्यत्र भी छोडकर चले जायेंगे, तो सारे कुटुम्बिजनो पर घोर आपत्ति आ सकती है, ऐसी स्थिति मे यदि दि० मुनि का स्वाँग आप भरकर राजाज्ञा का पालन करते हैं, तो इसमे कोई भी हानि नही है।' इससे मालूम होता है कि "मल्ल" कितने धैर्यशाली, दूरदर्शी और विवेकपूर्ण विचारक थे।

जब सब लोगो ने मथुरामल्ल जी से कहा, कि आप अपने सौहार्द-सखा गुलाल को वन से वापिस ले आइये। साथ में श्री मथुरामल्ल जी की धर्मपत्नी ने भी इनके लिए जब उन्हे बहुत जोर दिया, तो विवेकी तथा दूरदर्शी मल्ल ने समझाया कि श्री गुलाल किसी की नहीं मानेंगे, प्रतिज्ञा पालक महापुरुष हैं, वे लिए हुए व्रत को कभी नही त्यागेंगे। इस पर भी जब उनकी धर्मपत्नी ने उनके वापिस लाने के लिए बार-बार हट की, तो विवेकी तथा विचारक मल्ल ने कहा—

"कहे तुम्हारे ते प्रिया, मैं जाऊँ उन पास ।
जो नहिं आवे तो सुनौ, मति कीजौ हम आस ।।"

इसका आशय यह है कि यदि श्री गुलाल जी ने वन से वापिस आने को मना कर दिया, तो फिर तुम हमारे भी घर लौटने की आशा मत रखना" इससे अनुमान होता है कि मल्ल जी के हृदय मे भी अपने सौहार्द सखा गुलाल जी के साथ, राख से ढके अगार के समान आत्महित साधने की भावना छिपी हुई थी। श्री ब्रह्मगुलाल के साथ वाद विवाद की तीक्ष्ण वायु चलते ही राख उड जाती है, तेज अगारे के समान त्याग भावना प्रदीप्त हो जाती है और वे अपने ग्रह गृहिणी और परिजनो को त्याग कर ब्रह्मचारी बन जाते हैं। आत्म-कल्याण के लिए श्रावक के वृतो को पालते हैं। मुनि ब्रह्मगुलाल को अपने सौहार्द सखा का जब समागम मिला, तो वे एक (१ + १) दो नही हुए, बल्कि ११ हो गए हैं, क्योकि इन दोनो के सघ ने जगह-जगह जनता मे धर्म भावना को ही जाग्रत नही किया, बल्कि अनुपम जैन साहित्य का स्रजन भी किया है। मुनि ब्रह्मगुलाल जी ने मित्र मल्ल की प्रेरणा से ही साहित्यिक ग्रन्थ "कृपण जगावन चरित" की रचना की, जिसकी समाप्ति भी मित्र मल्ल की जन्मभूमि जारकी मे ही हुई। सौजन्य, सुविवेक और सुहृदयता आदि सद्गुण श्री मथुरा-मल्ल जी मे प्रकृति प्रदत्त तो थे ही, साथ-साथ मे इनके आदर्श ब्रह्मचर्य से स्वय मुनि ब्रह्मगुलाल जी प्रभावित थे, जैसा कि उन्होने कहा है

"सेठ सुदर्शन सील सम, दान-मान श्रेयंस ।
मथुरामल्ल चौधरी को, कलि मे भरत सुवश ।।
ब्रह्मचर्य मन थिर रहे, कामिनि मीत समान ।
ब्रह्मगुलाल तन मन बसै, कोटि के मध्य सुजान ।।"

भावार्थ—श्री मथुरामल्ल जी ब्रह्मचर्य पालने मे सेठ सुदर्शन के समान, आदरपूर्वक दान देने मे राजा श्रेयास के तुल्य है। इस कलिकाल में राजा भरत के वशज हो रहे हैं। इनका मन ब्रह्मचर्य मे सुस्थिर और स्त्री को मित्र के समान समझते है।

अन्त मे देखते हैं कि मल्ल जी ने भी अपने जीवन मे ग्रहस्थव्रतो को पाला, और अन्त में समाधि मरण कर सुगति को प्राप्त किया है।

राजा कीर्तिसिंघु

यह रपडी चन्द्रवार के यशस्वी राजा थे, "टापे" गाव मे भी इनका राज्य था। ये वडे प्रतापी गोरक्षक और सूरवीर थे, इन्होने कौसम के किले को विजय किया था। सारे मडल को आपने गोरक्षक बना दिया था।

कविवर क्षत्रपति ने राजा चन्द्रकीर्ति के विषय मे कहा हैं —

"न्याय निपुन नृपभुजे राज। जाके भुजवल धन परकाज॥
जाके राज न चोर लवार। नही फासीगर ठग वट मार॥
निज पर चक्र तनी भय नाहि। सब विधि सुखी प्रजा निवसाहि।
सब प्रकार नृप रक्षा करे। काहू भाति न भय सचरे॥"

आशय यह है कि राजा चन्द्रकीर्ति महान्यायवादी, पराक्रमी व परोपकारी और कुशल शासक थे, इनके राज्य मे प्रजा निर्भय और सब तरह से सुखी व सम्पन्न थी।

घर कुटुम्बिजन आदि सर्वस्व आग मे भस्म हो जाने की खबर पा कर हल्ल राजा के पास पहुँचते है, राजा इन्हे अपने यहा आश्रय देते हैं, जिस प्रकार एक योग्य पिता को अपने प्राणाति-प्रिय पुत्र के सुख दुख विवाह आदि की चिंता रहती है, ठीक उसी प्रकार प्रजापालक व दूरदर्शी राजा चन्द्र कीर्ति को अपनी प्रजा के साधारण जन हल्ल के आगे वश चलाने के उद्देश्य से विवाह कराने की चिन्ता उठती है। विशेष विवेकी व व्यवहार-पटु होने के कारण वे यह सोचते हैं:—

"हल्ल तणी परिपाटी किमें। चलें विवाहे तो वय खमें।
मेरे किये होय तो होय। और समर्थ न दीसे कोय॥"

आशय यह है कि हल्ल के वश चलने के लिए उनका विवाह होना चाहिए, किन्तु उनकी विवाह योग्य उम्र ढल चुकी है, कौन उनको अपनी कन्या देगा? उनका विवाह होना कठिन है, मेरे करने से ही यह कार्य हो सकता है। अपने

सचिव से यह जानकर कि यहा से दूर नगर मे हल्ल के जातीय जन साहसाह के एक सुन्दरी विवाह योग्य हल्ल के लिए उपयुक्त कन्या है ।

"सचिव णिसान देय चुप रह्यो, भूपति फिर विचार मन लह्यो ।
साह बुलाइ जहा जो कहे । गणि दवाब पुरजन दुख लहैं ।।"

यदि साह जी को मैं यहा बुला कर विवाह के लिए कहता हू, तो नगर निवासी समझेगे कि राजा ने दबाव डालकर इस कार्य को कराया है । अत राजा ने साहसाह के नगर मे जाकर इस प्रस्ताव को रखना उचित समझा । नीति-निपुण राजा इस कार्य के लिए साहसाह के नगर एक दिन नही, कितने ही दिनो तक जाते रहते हैं, किन्तु इस विषय की कोई भी बात नही करते । अन्त मे साहसाह ही सोचता है कि महाराजा मेरे घर क्यो प्रतिदिन आते है ? और अहसान भार से दबा हुआ पूछता है, महाराज आप किस कारण पधार रहे है, मेरे योग्य कोई सेवा हो, तो आदेश दीजिये ? राजा ने कहा साहसाह, यदि आप मेरे कहे काम करने का वचन दें, तो मैं निवेदन कर सकता हूँ, अन्यथा मेरा कहना व्यर्थ है । आप अच्छी तरह से विचार ले, और कल मुझे उत्तर दे दें" ।

दूसरे दिन राजा के कहने पर साहसाह अपनी कन्या को हल्ल को देने के लिए सहर्ष राजी हो जाते हैं । इससे राजा चन्द्रकीर्ति की व्यवहार-पटुता और कार्य साधने की अनोखी क्षमता का अनुमान होता है ।

राजा महाराजा महान् पुरुप होते हैं, प्रजा-पालन और न्यायवृत्ति का सम स्तर रखना आदि का उत्तरदायित्व रहने से उनको अपने मन्त्रियो का आश्रय व विश्वास करना ही पडता है। नीतिकारो के अनुसार राजा अपने आखो से कम देख पाते हैं, किन्तु कानो से अधिक सुनते हैं, विशेपकर प्रधान सचिव की मन्त्रणा पर चलते हैं। प्राय राजनीति के चतुर खिलाडी को ही, प्रधान सचिव का पद प्राप्त होता है । इस प्रधान सचिवो की जीवन वृत्ति तोड-मोड आदि नीतियो (policies) के निर्द्धारण मे ही रहती हैं। इनकी जिह्वा मीठे वचनो का स्रोत होती है, पर मन इन का गम्भीर होते हुए भी स्वार्थ वासनाओ से पूर्ण होता है, भीतरी हृदय का हलाहल कभी-कभी वाहर भी छलक पडता है ।

राजा चन्द्रकीर्ति धर्मात्मा, महान् और कलाप्रिय पुरुष थे। कलाकार ब्रह्मगुलाल के स्वांग भरने, तद्रूप अभिनय करने, कविता, विद्वत्ता आदि गुणों पर गुणानुरागी महाराजा मुग्ध थे और उनकी पुन-पुन प्रशंसा करते थे। किन्तु महाराजा के हृदय में ब्रह्मगुलाल का ऊंचा स्थान होना, प्रधान सचिव को अखरता था। यह अखरना धीरे-धीरे बढ़ता गया। जैसा कि कविवर ने कहा है —

"होय खिजालत इनकी जेय। सार उपाय कीजिए तेय।।"

कोई ऐसा उपाय किया जाय, जिससे ब्रह्मगुलाल को नीचा देखना पड़े। प्रधान सचिव सोचते हैं —

"यह वाणिक श्रावक व्रतधार। करैं णही मृगया अधिकार।।
सिंघ स्वांगने हिरन सिकार। करत अकरत होय बहुख्वार।।"

भावार्थ—ब्रह्मगुलाल जैनी श्रावक व्रतों के पालक हैं। यह कभी भी जीवों का शिकार नहीं कर सकते। इनसे सिंह स्वांग भरवाया जाय, और हिरन के शिकार करने का संयोग मिलाया जाय। इनके हाथों से यदि सिंह का शिकार होता है, तो व्रतभंग होगा, और अगर शिकार नहीं करेगा, तो सिंह की स्वाभाविक वृत्ति न करने से सिंह-स्वांग असफल रहेगा, और इनकी अप्रतिष्ठा होगी।

राजनीति सतरंज के दावपेचों के मर्मज्ञ चतुर खिलाड़ी मंत्री अपनी इस योजना की साधना स्वयं नहीं करते, बल्कि वे दूसरे के कंधे पर बंदूक धर कर बंदूक धारी से ही शिकार करवाते हैं। वे राजकुमार को प्रेरणा करते हैं कि ब्रह्मगुलाल से सिंह-स्वांग करवाओ। बाल-बुद्धि सरल, कौतूहलप्रिय राजकुमार राजा के सम्मुख ब्रह्मगुलाल से सिंह-स्वांग लाने का प्रस्ताव करता है, राजा भी राजकुमार की इच्छा पूर्ति के लिए कहते हैं "हुबहू सिंह स्वांग को बनाकर लाना" ब्रह्मगुलाल ने कहा, "मैं लाऊंगा, यदि कोई भूलचूक हो, तो मुझे क्षमा किया जाय"। महाराजा ने इसे स्वीकार कर लिया था।

ब्रह्मगुलाल जी सिंह स्वांग धर कर राजद्वार में पहुँचते हैं किन्तु वहां अपने सम्मुख एक हिरण का बच्चा खड़ा देखते हैं और किं कर्त्तव्य विमूढ़' हो जाते हैं कि मैं हिरण का शिकार करूँ या नहीं ? दोनों रूप में उनकी गति सांप छछूंदर की सी हो रही थी। इस अवसर पर पूर्व से सिखाए हुए राज-

कुमार को मत्री जी ने आँख का इशारा किया, इस पर राजकुमार ने कहा,

"सिंह णही तू स्याल है, मारत नाहिं सिकार।
वृथा जणम जननी दियौ, जीतव को धरकार॥
सुणत क्रोध करि तन जलौं, सहिन सकौ तिस वैन।
उछरि कुमर के सीस पैं, दई थाप दुख दैण॥२४॥"

भावार्थ—तू अपने शिकार को नही मार रहा है, इस कारण तू शेर नही, सियार है। तेरी माता ने तुझे व्यर्थ जना, तेरे जीवन को धिक्कार है। अब तक वृह्मगुलाल की बुद्धि यह निर्णय नही कर पाई थी कि श्रावक के व्रत की रक्षा की जाय या स्वाग वृत्ति की कर्त्तव्य पूर्ति की जाय ? किन्तु राजकुमार के तीक्ष्ण वचन-वाण से उनका अतर छिद गया, जननी का अपमान सुनकर उनकी आत्मा तिलमिला गई, श्रावक व्रत की उपेक्षा कर कलाकार को कला कर्त्तव्य पालन करने का शीघ्र निर्णय करना पडा। उसने शीघ्र ही सिही छलाग मार कर राज कुमार के सिर पर जोर की थाप मारी। इससे राजकुमार की मृत्यु हो जाती है।

इकलौते पुत्र की इस प्रकार अपने ही नेत्रो के सम्मुख नृशस-हत्या देखकर महाराजा के हृदय पर वज्राघात सी चोट लगी। वे बेहोश होकर गिर पडे। होश हो जाने पर सुयोग्य पुत्र की स्मृति कर वे फूट फूट कर रोने लगे। किन्तु विवेक जागृत होने पर वे सोचने लगे।

"सूनौ भयौ आज घरवार। दाहै बिना पुत्र परिवार॥
मैं पूरव असो कहा पाप। उपजायौ दायक सताप॥
तातै पुत्र विछोहा भयौ। वचन, प्रतीत दुस्सह दुखलहौ॥
व्रह्मगुलाल महा निरदई। मारत कुमर न करुना लई॥
मैं इन बडिन साथ उपकार। कियौ कहैं कहा होय, अवार।
सो इण सब बिसारि करि दियौ। जावत जीव दुखी मोहिकियौ॥
जो मैं, अब या सग घटि करौ। अजस भार अघ सिर पर धरौं॥
जो कछु होनी ही सो भई। अब क्यो व्याधि उपामे नई॥"

भावार्थ—पुत्र के वियोग से मेरा घर सूना है। बिना पुत्र के आज यह

घर मुझे जला रहा है। मैंने पूर्व भव मे किसी को घोर कष्ट दिया होगा, इसी के फल से आज मुझे पुत्र विछोहा हुआ है। मैंने ब्रह्मगुलाल के माता पिता के साथ उपकार किया था। किन्तु उन सब को इसने भुला दिया, और इसने मेरे पुत्र को मारकर मुझे आजीवन दुखित कर दिया है। किन्तु महान्याय वादी और विवेक शिरोमणि राजा सोचते हैं कि यदि मैं अब इसकी हानि पहुँचाऊँगा तो मेरा अपयश होगा, साथ ही साथ मैं पाप भार से भी लदूँगा। जो कुछ होनहार थी, वह तो हो चुकी। अब इस विषय मे व्यर्थ क्यो नयी व्याधि उठाई जाय ? इससे मालूम पडता है कि राजा चन्द्रकीर्ति कितने वचन पालक,, विवेकी, क्षमाशील और सतोप वृत्ति के महापुरुप थे, जिन्होने अपने इकलौते पुत्र-वध करने वाले ब्रह्मगुलाल को हृदय से क्षमा कर दिया।

किन्तु अवसर पाकर प्रधान सचिव पुन महाराजा के कान भरते हैं— "वृह्मगुलाल महाकृतघ्नी हैं, इसने जो घोर हिंसा की है, उससे इस नगर मे रहने के लायक नही है, मैं इसका ऐसा अचूक उपाय वताता हूँ, जिससे यह-चुभता हुआ तेज काटा सदा के लिए निकल जाएगा। आप ब्रह्मगुलाल को दिगम्वर मुनि का स्वाग भरने का आदेश दें, इसके लिए अच्छे इनाम देने का भी लालच दें। यदि वह मुनि स्वाग मे सफल होता है, तो आपका इनाम लेने व न लेने दोनो मे ही इसकी अप्रतिष्ठा और हानि हैं। यदि मुनि स्वाग भरने के आपके आदेश का पालन नही करे, तो दड का पात्र है। इसमे आपकी कोई भी हानि नही है।"

महाराजा ने ब्रह्मगुलाल को वुलाकर कहा, "पुत्र वियोग से हम शोकाकुलित हैं, दिगम्वर मुनि का भेप वनाकर कुछ ऐसा सवोधन दो, जिससे हमारी आत्मा को शान्ति मिले।"

श्री ब्रह्मगुलाल ने मुनि भेप मे राज दरवार मे ससार की अनित्यता आत्मा के एकत्व, कर्मोदय से जीव की विभाव परिणति और आत्म हित साधने में ही मानव-जीवन का सार है आदि विपयो का भरथरी चाल मे तलस्पर्शी उपदेश दिया, इससे महीपाल के मन के मोहकपाट खुले, और शीतल मद समीर रूपी उपदेश से उन्हे आत्म प्रवोध होने लगा। जब मुनिवर ब्रह्म-

गुलाल ने देखा कि महाराज को अब अच्छा सबोधन हो गया है, तब उन्होने कहा,

"कारज उतपति हेत दो, अतरग वहिरग ।
अन्तर प्रण मन शक्ति है, द्रव्य चतुस्क प्रसग ।।
वाहिज हेत गुरा कह्यो ।।
यो ही जनम मुमरन मे, आयु करम है आदि ।
वाहिज हेत अणेक है, यह विवहार अनादि ।।
साधक वाधक देपिये ।।
कुमर मरण मे भूपती । हम हैं वाहिज हेत ।।
अन्तर आयु णिसेस ही, जानि होऊ समचेत ।।
हम सो रोस णिवारिये ।।
हम अग्याण थकी कियो । यह कुकुरम दुखदाय ।।
सो अव तप आपुध थको । छे देगे सुनि राय ।।"
यामे कछु ससे नही ।।

भावार्थ—ससार मे प्रत्येक कार्य की उत्पति के दो कारण है १ अतरग कारण जीव के प्राण और मन है, वहिरग कारण द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव हैं । इसी प्रकार प्रत्येक जीव के जन्म लेने और मरने मे प्रधान कारण (अतरग) आयुकर्म है । वहिरग कारण अनेक हो सकते हैं । इस ससार मे ऐसा व्यवहार अनादि काल से चला आ रहा है । किन्तु भूलवस अन्यो को इसमे साधक और वाधक मानते हैं ! राजकुमार की मृत्यु मे उसकी आयु समाप्त होना ही प्रमुख कारण है, हम तो वहिरग निमित मात्र हैं । ऐसा जानकर हमे पर क्रोध मत करो । हम से यह निंदनीय कार्य अज्ञानतावश हुआ है । यह कार्य वहुत ही दुखमयी है । हे राजन् ! अव तो तप-साधना से हम इस पाप कर्म को नष्ट करेगे ।"

इसका महाराजा पर यह प्रभाव हुआ ।

"ब्रह्मगुलाल वचण रस जोग । दूरि भयो भूपति को सोग ।
होय प्रसन्न विचारी येह । अव कीजिये कुमर सो णेह ।।

जो कुमार उर इच्छा लहो। मो अब लेऊ प्रगट करि कहो।
णिवसो अपने गेह सुखित। मण मे रचण राख्यो चित ॥"

आशय यह है मुनिवर ब्रह्मगुलाल के उपदेश से राजा का शोक बिलकुल चला गया, मन मे प्रसन्न हो कर ब्रह्मगुलाल से स्नेह करने लगे। उन्होंने कहा, 'कुमर जो आपकी इच्छा हो, वह मुझसे ले लो'। और निश्चित होकर अब तुम सुख से अपने घर पर रहो, और किसी भी प्रकार की आशका मत करो।"

इनसे मालुम होता है कि गुणग्राही राजा चन्द्रकीर्ति का हृदय कितना विशाल और निर्मल है। हेय और उपादेय पदार्थों की यथार्थता जान कर अपने चचल-चित को त्याग के चावुक द्वारा बडी अनोखी रीति से मोडना भी वे जानते हैं। वे महान्यायवादी होने पर भी दयालु हैं, धर्मात्मा होने पर भी सुविवेकी हैं, वे राजसी ठाठ मे होने पर भी हृदय से राजर्पि हैं। वे जैसे आदर्श प्रजा पालक, प्रतिज्ञा पालक और प्रतापी पृथ्वीपति हैं, उतने ही दानी और त्यागी भी हैं। तभी तो कविवर ब्रह्मगुलाल जी ने भी अपने ग्रन्थ "कृपण जगावन चरित" की प्रशस्ति मे इनके विपय मे लिखा है—

"कीरतिसिंधु धरणी धर रहै, तेग त्याग की समसरि करे।"

भावार्थ—राजा कीर्तिसिंधु जैसे तलवार के धनी थे वैसे ही त्याग के सूर थे, तेज और त्याग दोनो का आप मे सच्चा समन्वय था।

प्रधान-सचिव

राजा चन्द्र कीर्ति के प्रधान सचिव, राजनीति-चतुर, व्यवहार कुशल और अनेक नीतियो मे निश्णात थे। कौसम के किले को विजय कराने राजा चद्र कीर्ति की राज्य वृद्धि कराने, यश और प्रताप फैलाने मे इनको श्रेय मिलना चाहिए। जहा इनमे प्रधान सचिव योग्य अनेक प्रशमनीय गुण थे, वहाँ इनमे एक अवगुण भी यह था कि अपने से अधिक बढा हुआ दूसरे को नही देख सकते थे। कलाकार वृह्मगुलाल की राजा द्वारा द्वारा प्रशसा और प्रतिष्ठा उन्हे असह्य लगी, उनको, अप्रतिष्ठित और बदनाम करने के लिए उन्होने दो बडी अचूक योजनाएँ रची। पहली योजना में प्रधान सचिव एक ऐसा चक्रव्यूह बनाते हैं, जिसमे कुमार ब्रह्मगुलाल अभिमन्यु के समान फस जाते हैं, और

घोर मानसिक यत्रणाओ को सहते हैं। प्रधान सचिव की दूसरी योजना भी सुनियोजित थी, उसमे जीवन के कलाकार बृह्मगुलाल को एक ओर खाई दूसरी ओर भयकर खदक, और साथ ही साथ इनाम के रस्से से उनकी गर्दन भी बाँधी हुई थी। पर ससार-त्याग, और तप-साधना के महान निर्णय ने उनके जीवन पथ को निर्बाध बना दिया था। इससे वे सकुशल पार हो गए। इन दो षडयत्रो के रचयिता व साधक प्रधान सचिव इतनी होशियारी से अपना पार्ट खेलते हैं कि ब्रह्मगुलाल को इसका कुछ भी प्रतिभास तक नही होने पाता, बल्कि महाराजा तक को प्रथम षडयत्र के रचयिता और उसके साधक की छिपी साधना तक का भेद नही चलता। प्रधान सचिव के चरित्र के विषय मे एक अन्तिम घटना यह भी होती है कि मुनि ब्रह्मगुलाल जी राज-दरबार मे राजा को सबोधन करते हैं, और आत्मा के एकत्व तथा राजकुमार के मरने मे अतरग और वहिरग कारणो को सुनते हैं, तो प्रधान सचिव भी महाराजा के साथ मानव जीवन के सच्चे कलाकार ब्रह्मगुलाल की हृदय से प्रशसा करते हैं, और उनके उपदेशो को अपने जीवन मे उतारने की ओर उत्सुक दिखाई देते हैं।

ब्रह्मगुलाल की धर्मपत्नी

योग्य गृहस्थिनी के समान यह पतिव्रता स्त्री थी, पर यह सरल हृदया और विमुग्धा थी। इसकी झाँकी इससे होती है, कि जिस समय दि० मुनि स्वाग भरने के राज्य के आदेश पर ब्रह्मगुलाल के परिजन व मित्र मल्ल आदि विचार-विमर्श कर रहे थे, वह बडी भयावह परिस्थिति थी, मौत की नगी तलवार श्री ब्रह्मगुलाल के लिए लटक रही थी, किन्तु श्री गुलाल की धर्मपत्नी बिलकुल शात थी, जिस समय श्री गुलाल ने कहा, "तुम भी अपने विचारो को कहो, किन्तु यह शर्मिन्दा चुप रहती है, जब फिर पूछा जाता है, तो यह ही कहती है, "जो ए कहे कहौ मैं सोइ, और अधिक बुधि नाही मोह"। जिस समय परवार के जन यह कहते हैं कि श्री ब्रह्मगुलाल दिगम्बर मुनि होकर बनवास कर रहे हैं, बहुत कुछ कहे जाने तथा समझाये जाने पर भी धारण किया हुआ मुनि धर्म नही छोडा। घर तथा घर के सभी लोगो से उन्होने ममता मोह

त्याग दिया है, और तप तपने मे तल्लीन हैं। इन वचनो को सुनकर पति वियोग-तप्ता कुमार पत्नी अचेत हो गई, चेतना आने पर उसे घोर मानसिक व्यथा होने लगी। उनकी व्यथा घटने के स्थान पर बढती ही गई। उनकी इस विषम स्थिति को देख कर कुछ महिलाओ ने कहा, "चलो हम सब तुम्हारे साथ वन मे चलती हैं और कुमर को समझाकर वापस ले आयेंगे।" इन महिलाओ ने श्री ब्रह्मगुलाल जी से बहुत कुछ कहा, किन्तु वे हिमालय के समान दृढ और अचल रहे, जब कुमार की पत्नी ने देखा कि ये घर नही चलना चाहते, तो वह रोकर उनके पैरो पर गिर पडी और प्रार्थना करने लगी "नाथ, आप मुझ से क्यो अप्रसन्न हो गये है ? मुझ से जो अपराध हो गया है, उसे दासी समझकर क्षमा करें। मैं आपके आश्रित हूँ, बिना आपके मेरा ससार मे कोई नहीं है" आदि निवेदन किया, किन्तु विज्ञ ब्रह्मगुलाल जी ने समझाया कि यह भ्रान्त धारणा है कि तुम मेरे आश्रित हो। सब जीव अपने आश्रय मे हैं। पराश्रित होने से ही जीव भव भव मे कष्ट पा रहा है। तुम सच्चे देवशास्त्र गुरु की सेवा करते हुए पचाणुव्रतो का पालन करो, और मानव जीवन को सफल करो। सरल-हृदया कुमार की स्त्री अपने पति के आदेश को पा अणुव्रतो को पालती हुई धर्म सेवन मे ही अपने जीवन को बिताती है।

ग्रंथकार श्री छत्रपति जी

इस ग्रन्थ के रचयिता कविवर प० छत्रपति जी हैं।

श्री छत्रपति जी का जन्म अवागढ (जिला एटा) मे हुआ था। तथा लालन पालन, सस्कार, शिक्षा भी यही मिली। किन्तु इन्हे अपनी वृत्ति के लिए अलीगढ आना पडा, जैसा कि प्रशस्ति मे लिखा है

"तब दैव जोग तैं वास हम, आप कियौ कछु कालतें।
बहु अन्योद के लाभ कर, सुषित रहे निज चाल तें ।।"

अलीगढ मे आप खिन्नी सराय मे रहते थे। श्री जिन मदिर जी की सीडियो के समीप ही आपका मकान था। यह मकान अब भी मौजूद है। पडित छत्रपति जी पुराने पडित थे, सस्कृत व्याकरण न्याय, साहित्य के प्रकाड पडित तथा हिन्दी के उच्च कवि होने पर भी उन्होने अपनी जीविका स्वतन्त्र ही रक्खी। पडित जी की सतोष प्रवृत्ति थी। पडित जी एक दूकान करते थे। करीब प्रात काल से ११ बजे तक मदिर जी मे पूजन, स्वाध्याय और जैन ग्रन्थो के पठन पाठन आदि मे अपना बहुमूल्य समय लगाते थे, करीब १॥ बजे दुकान पर पहुचते थे। आपके ग्राहक पहिले से पहुँचकर आपकी प्रतीक्षा करते रहते थे। दुकान करीब एक घटा तक ही खुलती, बाद को बन्द हो जाती थी। पडित जी परिग्रह परिमाण व्रत के पालक थे, उनका नियम था कि एक रुपया प्रतिदिन से अधिक द्रव्य न अर्जन करना। इस एक रुपये मे से दस आने आप धर्मार्थ दान (औषधि बिना मूल्य देने, पूजन सामग्री आदि) में देते, पाच आने अपने खाना कपडा आदि मे लगाते और एक आना बचाते थे। इसके बाद आप आकर जैन ग्रन्थो के शोधने और परमार्थ साहित्य सृजन मे अपना काल बिताते थे।

अलीगढ जैन समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति, धर्माचरण की लगन आदि आपने अच्छी बढाई। प० प्यारेलाल जी पाटनी (स्व० प० श्रीलाल जी

पाटनी के पिता) कविवर स्व० कुदनलाल जी पाटनी आदि आपके प्रमुख शिष्य थे। पडित जी ने इन सब को उच्चकोटि के जैन ग्रन्थो को पढाया।

जैन संस्कृत पाठशाला की स्थापना

कविवर छत्रपति के प्रयत्नो से यहां पर (अलीगढ में) जैन सस्कृत पाठशाला की स्थापना हुई। खुर्जा के रानी वाले सेठ के ५ गावो का मुकदमा कोर्ट मे चल रहा था। मुकद्दमे की स्थिति अच्छी नही थी, प० झगवरमल ने रानी वालो से कहा, "अगर तुम केस जीतना चाहते हो, तो प० छत्रपति जी से विधान कराओ" सेठ जी ने पडित जी से विधान कराया और वे ५ गाव जीत गये। इस पर प० छत्रपति जी ने अलीगढ मे जैन सस्कृत पाठशाला स्थापन के लिये कहा, सेठ जी ने २ गाव की आय से जैन सस्कृत पाठशाला चलाना स्वीकार किया। यह पाठशाला, जैन पाठशाला खुर्जा से भी पहिले की थी। इसमे स्व० प० गौरीलाल जी सिद्धान्त शास्त्री (भा० दि० जैन महासभा के परीक्षालय विभाग के मन्त्री), स्व० प० नरसिंहदास जी चावली (न्यायाचार्य प० माणक्यचन्द्र जी के ज्येष्ठ भ्राता) आदि समाज मान्य विद्वानो ने जैन सिद्धान्त की शिक्षा प्राप्त की थी। उन्ही की प्रेरणा से उनके ये शिष्य बनारस पढने गये। इस जैन पाठशाला के विषय मे कविवर छत्रपति ने अपने ग्रन्थ "श्री विरहमान पूजा (पाठ)" की प्रशस्ति मे लिखा है।

वहुत दिवस सोचत गये, वनो आय शुभ जोग।
भयो मदरसौ जैन को कोयल मध्यमनोग॥
पढत अमर भाषा अरथ, विद्यारथी अनेक।
तिनमे जुगल विशाल वुध, धारें परम विवेक॥

यह जैन पाठशाला १९वी सदी मे जैन समाज की आद्य जैन पाठशाला थी, जिसमे सस्कृत ग्रन्थो का पठन-पाठन कार्य प्रारम्भ हुआ था।

छात्रो को व्यापार-ट्रेनिंग

प० छत्रपति ने आजन्म नौकरी नही की। उनके विचार थे कि जैन विद्वानो को नौकरी न कर स्वतत्र आजीविका करनी चाहिए। अपने विद्यार्थियो

ग्रंथकार के शिष्य
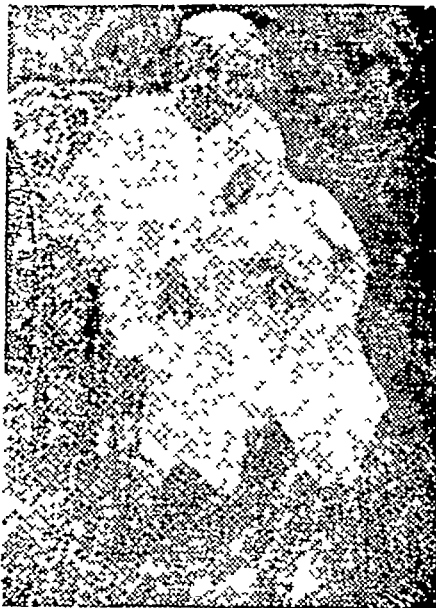
स्व० पं० प्यारेलाल जी पाटनी अलीगढ़

श्री पाटनीजी जैन समाज के प्राचीन विद्वानो मे से थे।
आपने श्री भा० दि० जैन महासभा की स्थापना
की थी, बाद मे आप इसके सभा-
पति भी रहे थे।

को भी इस प्रकार व्यापार ट्रेनिंग देते थे। करीब १०० रु० अपने देकर अपने शिष्यो से कहते कि सध्या समय कुंजडियो आदि से धैला छदाम ऊपर खैरीज ले लो। उस खैरीज को वे छात्रो से गिनवाते। यदि यह खैरीज कभी बढती, छात्र से कहते "किससे तुम यह खैरीज लाए हो अधिक क्यो लाए ? वापिस कर आओ। अन्याय और बेईमानी का पैसा हमको नही चाहिए।" यह रेज गारी फिर बाजार मे बिक जाती। इससे जो आय होती, वह इस कार्य को करने वाले छात्रो को ही दे देते थे।

उस समय की रचना-शैली

कविवर छत्रपति ने जब साहित्य-सृजन आरम्भ किया था, हिन्दी रीति काल का अन्तिम समय था। हिन्दी साहित्य के साहित्यकारो की रचना की गति कुछ बदली हुई थी। अग्रेजी राज्य भारत मे दृढ हो चुका था, पश्चिमी सभ्यता, भारत की प्राचीन सस्कृति पर घातक-प्रहार करने लगी थी। शिक्षित और विवेकी व्यक्तियो मे कुछ जागरूकता और चिन्ता होने लगी, भारत के अतीत आदर्शों के प्रति श्रद्धा का स्रोत उमड रहा था। प्राचीन सस्कृति के पुनरुद्धार के लिये जनसाधारण मे एक स्फूर्तिमय एव आशापूर्ण वातावरण जमाई ले रहा था, और सूदूर पश्चिम मे भी नव्य-भव्य परिवर्तन हो रहे थे। ऐसा भारतीय मानसिक एव सास्कृतिक परिस्थितियो मे कविवर छत्रपति ने सवत् १९०६ मे इस काव्य (ब्रह्मगुलाल) की रचना आरभ की थी, उस समय काशी मे कवि-वर गिरधरदास (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता) भी भारतीभूषण, रसरत्नाकर, नहुषनाटक, जरासिन्धुवध, गगसहिता आदि धार्मिक ग्रन्थो की रचना मे लगे हुये थे।

हिन्दी गद्य मे उस समय आगरा मे लल्लूलाल (भागवत के दशम अध्याय से) प्रेमसागर की रचना कर रहे थे। दिल्ली मे सदासुखलाल जी 'सुखसागर' की रचना मे लगे थे, इधर बिहार मे सदलमिश्र 'नासिकेतोपाख्यान' की और ईशा अल्लाखा रानी केतकी" की रचना कर रहे थे। उस समय प्रमुख रूप से देश की भाषा ब्रजभाषा थी, इसी भाषा मे उपयुक्त चार प्रमुख हिन्दी गद्य

लेखको ने लिखा है, पर इनमें खडी वोली के शव्द भी मिश्रित हैं। इन चारो लेखको की हिन्दी गद्य की वानगी देखिये —

"जो वात मत्य होय उसे कहा चहिये, कोई वुरा माने कि भला माने।
विद्या इस हेतू पढते हैं कि तात्पर्य इसका (जो) सतोवृत्ति है।
वह प्राप्त हो और उसमे निजस्वरूप मे लय हूजिये।"

मुशी सदासुखलाल)

"तिस समय घन जो गरजता था सोई तो घौसा वजता था।
और वर्ण-वर्ण की घटा जो घिर आती थी सोई
शूरवीर रावत थे, तिसके वीच विजली की दमक शस्त्र की सी चमक थी।"

(लल्लूलाल)

"तव नृप ने पडितो को वोला दिन विचार वडी प्रसन्नता से सव राजाओ ऋषियो को नेवत वुलाया। लगन के समय सवो को साथ ले मडप मे जहा सोनन्ह के थम्म पर मानिक दीप वलते थे जा पहुँचे।"

(सदलमिश्र)

"तुम अभी अल्हड हो, तुमने अभी कुछ देखा नही।
जो ऐसी वात पर सचमुच ढलाव देखूंगी, तो तुम्हारे वाप से कह कर वभूत जो वह मुआ निगोडा भूत, मुछदर का पूत, अवधूत दे गया है, हाथ मुरवा कर छिनवा लूगी। ' (ईशाअल्लाखा)

उम समय के हिन्दी पद्य साहित्य की रचना भी देखिये। इस ग्रन्थ ब्रह्म-गुलाल की रचना मवत् १९०९ मे पूर्ण हुई थी, उसके करीव ३-४ वर्ष वाद ५-६ वर्ष की अल्पायु मे कुशाग्रवुद्धि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने पिता की "वलराम कथामृत" रचना देख पिता की आज्ञा पाकर निम्न दोहा रचा था।

लै व्योडा ठाटे भये, श्री अनुरुद्ध मुजान।
वानासुर की सेन को, हनन लगे भगवान॥"

वह पद सुनते ही भारतेन्दु के पिता अत्यन्त विस्मित हुये और कहने लगे "तू म्हारा नाम वटावेगा" इसमे "ले, व्योडा ठाढे, सेन, को हनन, लगे, तू, म्हारो, वटावेगो" आदि गव्दो को देखिये।

इसी प्रकार भारतेन्दु जी की निम्न कविता को भी देखिये। (भगवान कृष्ण के दर्शन नेत्रो से न होने पर नेत्रो की विकलता तथा दूसरे लोक मे पहुच ने पर भी पछतावे के पद्य मे दिखलाया है)।

इन दुखियान को न सुख सपनेहूँ मिल्यौ,
यो ही सदा व्याकुल विकल अकुलायेगी।
प्यारे हरिश्चन्द्र जू की बीतीजानि औधि जो पै
जै, है प्रान तऊ ये तो सग न समायेगी।।
देख्यो एक वारहू न नैन भरि तोहि यातें,
जौ-जौन लोक जै हैं, तहा पछितायेंगी।
बिना प्रान प्यारे भये, दरस तिहारे हाय,
देख लीजो आखे ये खुली ही रहजायेगी।।

कविवर छत्रपति के समकालीन प्रसिद्ध-कवि जगन्नाथ" रत्नाकर" की उद्यत शतक के निम्न छन्द को भी देखिये। (इसमे राधिका द्वारा बहाये गये कमल को यमुना मे देखकर कृष्ण उदास और व्याकुल हो जाते है। उद्धत के सचेत करने पर भी वह अपनी व्याकुलता से मुक्त नही हो पाते, ब्रज के कुँजो, लताओ की स्मृति उन्हे इस प्रकार बेचैन कर रही है कि वह हृदय से उतारे नही उतरती। उस स्मृति का एक चित्र इस प्रकार है)

दिनन के फेर सौं भयो है हेर फेर ऐसौं।
जाको हेरि फेरि हेरि बोह हैरिवौं करै।।
फिरत हुते जू निज कुजनि मे आठो जाम।
नैनन मे अव सोई कुज फिरबो करें।।

उपर्युक्त पद्यो मे रेखाकित शब्दो को देखिये तो आपको ज्ञात हो जायेगा कि कविवर छत्रपति के पद्यो मे भी ठीक इसी प्रकार के शब्द हैं, तथा बोल-चाल की भाषा भी उनकी यह ही थी। उत्तर भारत के गाँवो, कस्बो तक मे अब भी यह बोली प्रचलित है।

उल्लेखनीय बात यह भी है कि जिस प्रकार उस युग के हिन्दी साहित्य-कार कृष्ण उपासना, धार्मिक-भावना और प्राचीन सस्कृति के प्रचार मे लीन

थे, उसी रूप में छत्रपति ने भी साहित्य-सृजन को किया है। रीतिकाल के प्रारम्भ और मध्य के युग मे हिन्दी के कवि प्राय अवतारो, तीर्थंकरो या राजा महाराजा को अपना ग्रन्थ नायक चुनते थे और उनकी स्तुति और प्रशसा मे अपने काव्य को पूरा करते थे, किन्तु हम छत्रपति को देखते हैं कि उन्होंने ग्रन्थ-नायक एक साधारण पुरुष को चुना है, जो उनसे करीब २०० वर्ष पूर्व हुआ था, जिसने अपने यौवन काल मे ससार के सुखो को असार समझ कर आत्महित की साधना की, साथ ही साथ परोपकार की भावना से उच्चकोटि के साहित्य की भी रचना की।

रीतिकाल का कवि शृगारिक नायक नायिका के अतिरिक्त कुछ सोच ही नही पाता था, इसी कारण रीतिकाल का काव्य सकीर्ण और कूपमडूकता का प्रति रूप माना गया है। छत्रपति ने भी अपने नायक का नखसिख सुन्दर वर्णन किया है, किन्तु इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने पाठक के लिए नायक के उन अनुपम-आदर्शो, गुणो, कर्त्तव्यो और जीवन-कलाओ पर भी प्रकाश डाला है, जिनकी हर व्यक्ति को अपने मानव-जीवन मे जरूरत पडती है। जीवन के कदम-कदम पर सकट, आपत्तिया और विघ्न बिछे हुये हैं। तुम उनको कुचलते हुए मानव जीवन के सच्चे सफल कलाकार ब्रह्मगुलाल के समान आदर्श कर्त्तव्य की पूर्ति करो। जीवन-सिद्धि आत्म-हित साधने मे, अन्यो को सुपथ प्रदर्शन करने और परोपकार करने मे वे निहित हैं।

छत्रपति रीतिकाल के अन्तिम कवि थे। भारतेन्दु, हरिश्चन्द्र जब अपनी जननी के उदर मे थे, तब छत्रपति ब्रह्मगुलाल की रचना मे लगे थे। छत्रपति ने हिन्दी काव्य की वर्णन शैली मे जिस नयी क्रान्ति का दिग्दर्शन किया है, भारतेन्दु युग मे वह शैली खूब पनपी और जगन्नाथ रत्नाकर श्री "हरिऔध" आदि प्रखर-कवियो ने उसमे शोभा के चारचाद लगाकर हिन्दी साहित्य का परमोपकार किया है।

कविवर छत्रपति साहित्य-सृजन मे जीवन के अन्तिम समय तक लगे रहे, बुढापा आ गया, हाथ पैरो ने जवाब दे दिया है, बाध्य होकर घर की चहार दीवारी मे पडे हैं, फिर भी साहित्य-सृजन मे आप जुटे हैं। यहाँ तक कि नेत्रो

ने अपना कार्य (देखना) बन्द कर दिया है, फिर भी आपका साहित्य-सृजन चालू रहता है। आप अपने शिष्यो से काव्य-कृति को लिखाते जाते हैं और काव्य के अन्त में प्रशस्ति मे उनका आभार प्रदर्शन भी करते है।

जैन साहित्य-सृजन

कविवर छत्रपति ने अपने मानव-जीवन में कितना जैन साहित्य रचा है, अभी तक हम इसका ठीक-ठीक पता नही लगा पाये हैं, किन्तु इनके प्रमुख शिष्य अलीगढ निवासी स्वर्गीय प० प्यारेलाल जी पाटनी ने अपने गुरु छत्रपति जी का जो सुन्दर तैल-चित्र बनवाया था, यह चित्र बहुत समय तक स्व० प० प्यारेलाल जी के कमरे की शोभा को बढाता रहा, बाद में वहा की जैन पाठ-शाला के भवन मे टगा रहा, पाठशाला के अध्यापको तथा छात्रो को इस चित्र से धर्म सेवन, चरित्र निर्माण तथा आदर्श निर्व्याज सेवा का पाठ मिलता था। स्व० प० प्यारेलाल जी के पौत्रो (प० श्री लालजी के पुत्रो) श्री कमलकुमार जी आदि से मालूम हुआ कि उनके पूज्य बाबा तथा पिता जी कहा करते थे कि स्व० कविवर छत्रपति जी का आदर्श जीवन था। उन्होने अपने जीवन का बहुभाग धर्म सेवा में, धार्मिक सस्थाओ के स्थापन, प्रबन्ध, जैन ग्रन्थो के पठन-पाठन, साहित्य सृजन आदि कार्यो मे ही लगाया। उनका शान्त स्वभाव, निर्लोभ-वृत्ति जैन समाज के लिए आदर्श रूप थी। स्व० कविवर छत्रपति के उपर्युक्त तैल चित्र को हमने अलीगढ के जैन पच महानुभावो की कृपा से प्राप्त किया है। इस तैल चित्र के नीचे निम्न दो कवित्त हैं .

"पद्मावती पुरवार अए के निवासी जिन,
अलीगढ आय के निवास वास कीनो हैं।
साचे सरधानी जिनजानी जिनवानी जैन,
ग्रंथ सोध-सोध के भडार शुद्ध कीनो हैं।
पर उपकार- काज जिनने जनम धरौ,
ऐसौ धरमात्मा न दूजौ और चीनो है।
प्यारे कहैं विद्यारथी आये ते पढाए सब,
कहाँ लो बखानो उपकार घनो कीनो है ॥"

दूसरी कवित्त दीपक द्वारा नष्ट कर दिया गया है, किन्तु उनके लाइनो के आवे शब्द निम्न प्रकार अवशेष रूप मे हैं .

"महावैद्य औषधी
वडे उपकारी काका
कवित्त की कला
ग्रन्थ रचै वसु ता
प्यारे कहे मेरे
कीनो उपकार"

इससे मालूम होता है इन्होने आठ ग्रन्थो की रचना की है। इनमे से अब तक इनके हमे चार ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं।

१ ब्रह्मगुलाल चरित।
२ मनमोहन पचसती।
३ परमार्थ उद्यम प्रकाश।
४ वीस विरहमान पूजा (पाठ)।

(१) ब्रह्मगुलाल रचित

इसकी रचना कविवर छत्रपति ने विक्रम सवत् १६०६ मे की है। कविवर ब्रह्मगुलाल जी ने १७ वी शताब्दी मे मानव शरीर मे मुनि धर्म पालन कर जीवन सफल किया था। मुनि ब्रह्मगुलाल ने आत्म कल्याण के साथ-साथ जैन साहित्य में अनेक ग्रन्थो को रच कर हिन्दी भाषियो का परमोपकार किया था। इसके अतिरिक्त मुनि ब्रह्मगुलाल जी की जीवन-घटनाए जिन भक्तो के लिए ही नही, वल्कि सर्वसाधारण जनो के लिए नवीन-आलोक को देती हैं। मुनि ब्रह्मगुलाल जी जैसे विवेकपूर्ण विद्वान थे, वैसे तो साहस-सूर, त्याग-सूर, तप-सूर और साहित्य-सूर थे। हिन्दी जैन साहित्य के लिए उनकी बहुत वढिया देन है। ऐसे आदर्श आत्मकल्याण-साधक, परोपकारी, साहित्य सेवी कविवर की प्रमुख जीवन घटना को लक्ष्यकर कविवर छत्रपति ने इस ग्रन्थ को रचा है। मुनि ब्रह्मगुलाल की कथा जैन समाज मे ही नही, वल्कि उत्तर भारत मे

पद्मावत पुरवार आरा के निवासी जिन
अलीगढ़ आयकें निवास वास कीनो है
सांचे सरधानी जिन ज्ञानी जिनवानी जैन
ग्रंथ सोध सोध कें भंडार शुद्ध कीनो है
पर उपकार काज जिनने जनम धरो
ऐसो धरमात्मा न दूजो और चीनो है
प्यारे कहै विद्यारथी आये ते पढ़ाए सब
कहां लों बखानो उपकार घनो कीनो है
१

स्व० प० प्यारेलाल जी पाटनी अलीगढ ने अपने गुरुवर्य्य स्वर्गीय कविवर प० छत्रपतिजी का सुन्दर तैल-चित्र बनवाया था। उस चित्र के नीचे उपर्युक्त कविता स्वय प० प्यारेलाल जी ने अपने सुन्दर लेख मे लिखी थी।

साधारण जनता मे भी प्रसिद्ध थी, उसी की कविवर छत्रपति ने अपनी सरस कविता मे रच कर इसकी शोभा मे चारचाँद लगा दिये है।

(२) मनमोहन पंचवती

इस ग्रन्थ की रचना कविवर छत्रपति ने विक्रम सवत् १९१६ मे की है। इसकी पृष्ट सख्या १०२ साइज १२ × ७ हैं। इनमे कविवर ने पच परमेष्ठियो देव, शास्त्र, गुरु, तीर्थों, रत्नत्रय आदि को नमस्कार कर धर्म, तत्त्व, द्रव्य, लेश्या, शास्त्र, कर्म व आतमा का सम्बन्ध आदि के लक्षण सवैया ३१ छन्द मे वडी सरल सरस और मनमोहक कविता मे किये हैं। इसमे ५०० छन्द है, तथा इसकी भाषा, भाव और कथन-शैली पाठको के मन को मोहने वाली है। इसका मगल चरण निम्न है।

"सकल सिद्धि मय सिद्धि वर, पच परम गुर जेह।
तिन पद पकज को सदा, प्रनमो धरि मन नेह॥
नहिं अधिकार प्रबन्ध नहिं, फुटकर कवित्त समस्त।
जुदा जुदा रस वरनऊ, स्वादौ चतुर प्रशस्त॥"

॥ अथ अरहत नमस्कार ॥

सवैया ३१

"जो अखड परताप धर दृग ज्ञान सुख वीरज-
अनन्त प्रभुता समाज-धर है।
इन्द्र अहमिद्र सुरबृन्द और मुनिंद जाके-
सेवत चरन कज जोरि जुग कर है।
जो निज वचन वाहु थकी जग जीवन को-
काढि दुष विवरतें देत सुषवर है।
असे अरहत को निरतर नमन करो जो सुजन-
वाछितार्थ देन कल्पतर है॥"

॥ अथ सुभ उपाय ॥

सवैया ३१

सुप को उपाय कह्यौ सरवग्य श्रुत माहि सम्यक् दरस-
ग्यान चारित्रौ तप है।
विपरीते आशं चुत आतम सरूप लाभ दिढ परतीति-
रुचि सम्यक् अकप है।
पर दव्य परगुन पर परजायचुत निज अनुभूति-
अनुभव ज्ञान घप है।
पाप क्रिया निरवृत्ति चारित प्रवर्ति-
पुनि अनसन आदि तप कुगति उथप है॥

॥ अर्थ सम्यक् महात्म्य ॥

सवैया ३१

विरछ कें जखत, महल कें नांव जैसें, धरम की
आदि जैसे सम्यक् दरस हैं।
या विन प्रसम भाव श्रुत ज्ञान वृत तप विवहार
होत है न आतम परस है।
जैसें विन वीज कृप साधमन अन्न हेत आकडे
विहीन सुन्न सप्या अदरस है।
तैमें विन आतम परस कौन लेस रहत
हमेस पर गेय को तरस है।
धन एक भव कछु यक सुपदायक है
समकित धन भव भव सुप करता
कल्पतरु कामधेनु चिन्तामनि चित्रावेलि
चिंतत ही देत यो अचित लाभ भरता।
भव वीज छेदक सुभेदक भरमतम परम धरम
मूल दुप दोप हरना।

या ममान मित्र न सहोदर न माततात
तत्र सरधान रूप लछिन को धरता ।।

।। अथ सम्यक् दृष्टि लछिन ।।

सवैया ३१

वस्तु के स्वभाव मे न जिनकै भरम कछू
भवतन भोगन की चाह दूरे भई है।
देखि के गिलान गेय होय न गिलान रूप
देव गुर धरम मे मूढ मति गई है।
देपि परदोप दावै सुगुन मैं थिर धावै
सारिपोन सेती जाकी प्रीति नित नई है।
जिस तिस भाति करि धरम प्रभाव करै
पुव्व क्रत कर्म हरे वधविधि षई है ।।

इसी तरह के उत्तम-उत्तम ५०० सवैया कवित्त कविवर ने रचे हैं, जिनमे सभी के लक्षण रूप ज्वलत दृप्टातो सहित सरल भाव और भाषा मे दिये है। हिन्दी भापा भापियो के तत्वज्ञान और अनेक पदार्थो के स्वरूप जानने के लिए यह उपयोगी ग्रन्थ हैं।

ग्रन्थ समाप्ति का निम्न छप्पय छन्द मे वर्णन किया है—

वीर भये, अशरीर गई पट पनसत वरपहि
प्रगटो वैक्रम दैत्यतनो सवत्सरसहि।
उनइमगत षोडशहि पौप प्रतिपदा उजारी,
पूर्वाषाढ नक्षत्र अर्क दिन सव सुखकारी।
वरवृद्धि जोगि मे छत इह ग्रन्थ समापत कर लियौ,
अनुपम अशेष आनन्द घन भोगत निवसत थिरथयो ।।

इसका आशय है कि कविवर ने इस ग्रन्थ को विक्रम सवत् १९१६ पौष शुक्ला प्रतिपदा पूर्वाषाढ नक्षत्र मे पूर्ण किया।

(इस ग्रन्थ की प्रति मालीवाडा दिल्ली के श्री जिन मन्दिर जी से प्राप्त हुई थी। यह विक्रम स० १९७५ मे लिखी गई थी।)

(३) परमार्थ उद्यम प्रकाश

कविवर छत्रपति का यह तृतीय ग्रथ है। इसकी रचना सवत् १९३४ मे पूरी हुई है। इस ग्रथ की पृष्ट सख्या ९९, साहज १२॥ × ८॥ है। श्लोक सख्या १५११ है। इस ग्रथ मे कविवर ने श्रावक की ११ प्रतिमाओ का सुन्दर वर्णन दोहा, चौपाई, छप्पय, सवैया आदि विविध छन्दो मे बडा ही सुन्दर चित्ताकर्पक वर्णन किया है। ११ प्रतिमाओ के वर्णन के अन्तर्गत गुणस्थानो, मार्गणाओ, कर्म-प्रकृतियो आदि का वर्णन करते हुए कविवर ने गहस्थ के लिए व्रत, नियम शुद्धाचरण व खान-पान की शुद्धि आदि ग्रहस्थ की क्रियाओ का बडा ही सुन्दर वर्णन किया है।

इस ग्रन्थ का मगलाचरण यह है

॥ दोहा ॥

उद्दिम फल के भोगता, जे जतिवर गुण धाम ॥
तिनके चरण सरोज को, अब करिके परनाम ॥१॥
जतिवर धर्म निवाहने, जे, असमर्थ पुमान ॥
तिनको साधन सुगम हो, वरनो पुन्न प्रमान ॥२॥

(विसेप वरनन छपै)

भवदुख सो भयभीत कायबल वर्जित जन हैं ॥
स्वबल साध्य, आचर्न उपायन को जिन मन हैं ॥
तिनको प्रतिमा रूप सुगम साधन जिन जिन बरना ॥
तिन प्रति करि परनाम करूं अब कछुयक निरना ॥

सो सुनत प्रीति परतीति करि ॥
जथा सकत्ति साधन करौं ॥
नहि अन्त समै सन्यास को ॥
सुर नर नृप लहि सिव वरौ ॥३॥

(अथ मिथ्या अभावरूप गुन)

।। सवैया ३१ ।।

जैसै महा ध्वांत मे न भासत वरन भेद वारुनी
अमल मे न सूझै वात हित की ।।
जेमे सन्निपात मे न जाने निज पर जात भोग पभिलाष
मैं न भावै सीष व्रत की ।।
तैसे महा मोह की मरोर में न दिढ होय
सिव पथ भूल रीति भावे अनुचित की ।।
ताकौ उपसम छय उपसम छपकरि साधै निज देश
यह वृत्य समकित की ।।

अथ सम्यक मिथ्यात्व मिश्र भाव के, अभावरूप सम्यक गुन

।। सवैया ३१ ।।

जाके उदै माहि तथ, अतथ मिलाप रूप तत्वसर
धान धारा वहति अफर है ।।
जैसै गुड तक्र के मिलाप सिपरनरस
आमिल मधुर रूप होत एक लार है ।।
समक मिथ्यात नाम धार जिनराजग्यानगम्य
रोकै सम्यक मयक प्रभाभार हैं ।।
ताहि निज देश मे न करन प्रवेस देय
सम्यक प्रभाव यह टरत सुटार है ।।

अथ सम्यक प्रकृति मिथ्यात्व के, अभाव रूप सम्यक गुन सरूप

।। सवैया ३१ ।।

उपसम छायक मे जाको न प्रचार कछू
वेदक मे चलमल दोप रूप वरतै ।।
देव गुर धरम के अगनि मे फल की विसेसता
रूप ग्यान सरधान सो रतै ।।

वृद्ध करजष्टि अलवेले सिरपाग कीजो
मिथलता करें मूलथकी न उपरतें ॥
सम्यक प्रकृतिनाम मिथ्यात कू चूरि ने
सवथ को नमावें समकित निज घर तें ॥

कविवर ने ग्रथ के अन्त मे लिखा है —

॥ छप्पै ॥

सुरसरि जमुना मध्य कोलवर नगर नामजद ॥
सुपित वसत वहुलोग धरैं निज धरम करम कद ॥
तहवहु जैनी वसै जिनालय तिननिर नोहत ॥
भानत महा मनोग्य देषतें सव मन मोहत ॥
तव दैव जोगतैं वास हम । आय कियो कछु काल ते ॥
वहु अन्योद के लाभ कर । सुपित रहे निज चाल तें ॥
प्रजा पाल अगरेज राजु वरतै सुपदाई ॥
वहु देसन के भूप पाय सेवैं चित लाई ॥
निजनिज काज समस्त प्रजासाधन सुपभोगे ॥
विघनन उपजे कोय प्रजापत तेज सजोगे ॥
ताको छाया माहि वसि छत सुहित साधन कियौ ॥
भवमज्जन वहु भवजननि को वरकर अवलवन दियो ॥

ग्रन्थ रचना-काल

॥ चौपाई ॥

नृप विक्रम सवत् सर सार । उन्निसे चौतीस सभार ॥
महामास सित पछ्छ महान । तिथ वसत पचमी प्रमान ॥
गुरु वासरे रेवती नषत । ग्रन्थ समापत कीनो छत ॥
फली आस वोई सुभ वेल । फल है सही अनुभ सव मेल ॥१॥
ग्रह आचार देसना भली । वरनत फली नयन की रली ॥
जो कारन विसेस इस माह । सो नीचे अव कहुँ सुनाहु ॥२॥

नैनन साधत अपनो काज । वायक फल तन मिलत समाज ॥
निज कृत पूरब दोष प्रभाव । लषि घिर तिष्टे तजि मनचाव ॥३॥
निज कुल जाति गोत की वात । कौन प्रकासैं हमें न नात ॥
ख्याति लाभ आप अति हेय । ग्यान विराग सदा आदेय ॥४॥

॥ दोहा ॥

यह निचोर इस ग्रन्थ को, समझि गहौ धीमत ॥
जप तप वृत श्रुत भावना, कारन रूप महत ॥५॥

इति श्री उत्पत्ति कारन भव सम्वन्ध निवास—श्री परमार्थ उद्यम प्रकास मध्ये ग्यारह प्रतिमा समाप्त. ।

(सवत् १९४३ शुभमिति चैत्रवती ७ प्रलिपत नेमीचन्द्र श्रावक पडेलवाल गोत्र बोहेर ।)

वासी अछनेरा लिपी कोल मध्ये सराय पिरनी ॥

(४) बीस विरहमान पूजा

पत्र सख्या १११, श्लोक सख्या २४१०, रवना काल विक्रम सवत १९३८। कविवर छत्रपति जी ने अपने व्रह्मगुलाल चरित की रचना के २९ वर्ष वाद इस ग्रत्थ को समाप्त किया था। ऐसा मालूम पडता है कि उन समय कविवर छत्र-पति जी की वृद्धावस्था थी। इनकी धर्म कर्म अधिकतर जिन पूजा मे विशेष अभिरुचि हो रही थी। जैन जनता मे विद्यमान २० तीर्थकरो की भक्ति भाव और पूजा प्रवृत्ति वढै, इसी उद्देश्य से कविवर ने इस सुन्दर पाठ की रचना की है।

कविवर छत्रपति ने इस ग्रथ की प्रशस्ति मे लिखा है .—

"अव उत्पत्ति विधि वरनऊ, रचौ पाठ जिस रीति ।
चाह हुती वहु दिनन तें, मिली न जुगति अचीत ॥
वहुत दिवस सोचत भये, वनो आय शुभ जोग ।
भयौ मदरसो जैन को, कोयल मध्य मनोग ॥
पढत अमर भाषा अरथ, विद्यारथी अनेक ।
तिनमे जुगल विशाल वुध, धारैं परम विवेक ॥

तिन सहाय ले हम कियो, यह पर कारज सिद्ध ।
नाम जोहरी मल्ल मुनि, गुलजारी मल निद्ध ।।
लिखन सहाई वाल वय, राम दयालु सुनाम ।
प्रभु पद भक्ति प्रभाव से, 'छत्र' कियो यह काम ।।"

इनसे अनुमान होता है कि कविवर जी बुढापा के कारण लिखने मे कुछ अशक्त से थे, किन्तु उनकी दृष्टि मे परोपकारार्थ इस ग्रथ का निर्माण होना अति आवश्यक था । अत पडित जी की इस रचना के लिखने का कार्य अलीगढ की जैन सस्कृत पाठशाला के छात्र श्री राम दयालु (वेरनी निवासी, वाद मे प० राम दयालु जी शास्त्री) ने किया था । प० रामदयालु शास्त्री दिल्ली मे ला० सुल्तानसिंह जी के यहाँ रहते रहे थे, आप इन्हे शास्त्र स्वाध्याय कराते थे । इनके कारण इनकी धर्म कर्म मे अच्छी प्रवृत्ति रही ।

इस ग्रन्थ के मगलाचरण मे ग्रथकार ने सर्वप्रथम अर्हत रूप विरहमान इन वीस तीर्थंकरो की वन्दना की है, वाद मे सिद्धादि को नमस्कार किया है । मगलाचरण निम्न है —

।। छप्पय ।।

नमो नाम वा थपति द्रव्य भावी जिन स्वामी ।
भूत भविष्यत वर्तमान कालातर नामी ।।
शुभ अतिशय चौंतीस प्रतिहारज वसु मण्डित ।
सहित अनत चतुष्क सहित लखि वदित पडित ।।
श्रीमदिरादि वर वीस जिन विघन ओघहर श्रेयकर ।
तिन पूजा छद उपावर्ते करो सुथिरता चाव उर ।।१।।
नहीं जिनके विधि वध नही सत्ता दिढ आऊ ।
नहि सज्ञा सम्बन्ध नहि उपयोग वहाऊ ।।
वसु दस दोष न पास नही आशा विषयन की ।
अप्रतिरूप अनूप तेज वल प्रभुता जिनकी ।।
इम गुण-गरिष्ट सब इष्ट प्रभु सरल सृष्टि पालक प्रवर ।
सो सोउ सहाई अब हमे करत छन्द रचना रुचिर ।।१।।

पच परमेष्ठियो, जिनवाणी आदि को नमस्कार कर विद्वान कवि ने इस पाठ के करने वालो के लिए मडल माँडने की विधि भी बताई है। बाद मे आपने जिन पूजा की महत्ता को निम्न रूप मे वर्णन किया है —

देव गुरु श्रुत भक्ति बिन, इस ससार मझार।
लख चौरासी जोनि मे, भ्रमो अनन्तो वार॥
कबहुँ न थिरता थल लहो, भये न उजले भाव।
जन्म मरण करतो रहो, लहो न सुख को दाव॥
भाग जोगते कठिन अति, मिली सहजनरदेह।
ताको प्रभु पूजन बिना, मति खोवो बुधि गेह॥
औसर चूके जे पुरुष, तिन सम मूढ न कोय।
आयौ कर जो अमृतरस, तज विष पीवै लोय॥
जिन पूजन सम सुगम नहि, धर्म गग बहु ओर।
यही धर्म सब अग मे, जिन पूजन शिरमौर॥
पूजन के परभाव ते, विनशे विघन अनेक।
मिले सहज सुख सम्पदा, रहै जगत मे टेक॥
रोग शोक भति मदता, अपकीर्ति अरु सोच।
टुरे दूर अपमानता, होय दोष दुख मोच॥
कोविद सकलकला कुशल, स्वपर सुहितकर बुद्धि।
प्रभुपूजन ते पाइये। निज आतम की शुद्धि॥

आशय यह है कि गृहस्थ के लिए जिन पूजा वह आद्य आवश्यक कर्तव्य है, जिसका करना मानव पर्याय को सार्थक बनाना है, जिन पूजा से अघमोचन तथा अन्य सामान्य सासारिक कार्यो मे सिद्धि तो होती है, पर यह अतत आत्म शुद्धि (मोक्ष) की प्राप्ति की भी साधिका होती है। कवि के कथना-नुसार मानव शरीर पाकर प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन जिन पूजा करनी चाहिए।

इस विरहमान पाठ के अनुसार बीस तीर्थकरो की पूजा करने के लिए पूजक को किस प्रकार तैयार होना चाहिए, इसके लिए ग्रथ रचयिता ने सुन्दरी छद मे यह कहा है —

उठि प्रभात सुमर नव कारजू ।
करि प्रभात क्रिया रुचि धारजू ॥
करि सनान विलेपन अगजू ।
पहरिवगन सफेद अभगजू ॥ १ ॥

पहरि शुचि कोपीने सुचि धोवती ।
ओढि दुपट्टा काया शोभती ॥
वहुरि आभूषण पहरे भले ।
शिर मुकट कानन कुडल सले ॥ २ ॥

कधमाहि त्रिगठी धार ये ।
कठ कठीहार समारिये ।
भुजन मे वुवन भुज कर कडे ।
अगुलि मुदरिन मे नगजडे ॥ ३ ॥

पाय पायल घुघरु वाजने ।
पहर अगुली छल्ले वाजने ॥
द्रव्य घर तें सुभग सजेयिके ।
पात्र उज्जल धरि श्रम खोय के ॥ ४ ॥

भेरि दुदुभि तुरही वाजते ।
गीत नत्य उत्साह समाजते ॥
साथ वहु सावर्मी जिन लिये ।
वृप प्रभाव वढावन चित किये ॥ ५ ॥

जाय जिन मदिर थिरचित कियें ।
दूर तें लखि नमि हरपे हियें ॥
पग प्रच्छाल सुभीतर वरत ही ।
कहैं जय जय रव मुख हसत ही ॥ ६ ॥

देखि जिन प्रतिविंव स्वरूप को ।
लघु विवर जानें भवकूप को ॥

नमे भुव सू अग लगाय के ।
फिर करे फेरी त्रय थाय के ।। ७ ।।
फुनि खडौ रह सन्मुख आयजू ।
करे वहु थुति भक्ति वढाय जू ।।
थुति समापित अत सुधी वही ।
करत पूजन उमगे मव नही ।। ८ ।।
जो कि प्रतिमा मुख पूरव लखे ।
खडो हूजो उत्तर दिश रुपै ।।
जो कि उत्तर दिश मुख हेरिये ।
तो कि निज मुख पूरव फैरिये ।। ९ ।।
द्रव्य पात्र सथापि उच्चासन ।
जजो जिन पद करि थिर आसन ।।
जजन पाठ, विना गहि मोन को ।
सफल करनी वरतत तोनको ।। १० ।।

कविवर का नहना है कि प्रभात वेला मे उठते ही ,पचनमस्कार मत्र पढिये, वाद मे शौचादि नित्य क्रियाओ से निवृत होकर, स्नान करके चदन लगाइये । फिर शुद्ध लगौटी और धोती पहन कर शरीर की शोभा वढाने वाले दुपट्टा को ओढिये । सिर पर मुकुट, कानन मे कुडल, कधे पर त्रिगठी, भुजाओ मे भुजवध, हाथो मे कडे, अगुलियो मे नगजडी अगूठिया, पैरो मे पाजेव तथा वजने वाले घुघरू और अगुलियो मे वजने वाले छल्लो को भी पहिनिये । पूजन के लिए अपने घर से ही वढिया सामिग्री लेकर वडे यत्न से वनावें और उज्ज्वल पात्र मे लेकर मदिर जी को चले । मार्ग मे मगल रूप वाजो के शब्द होते जाय । साथ-साथ मे अनेक साधर्मी जन धार्मिक भजन करते हुए जाय । इससे जैन धर्म की प्रभावना वढती है । श्री जिन मदिर जी मे स्थिर चित्त होकर जाना चाहिए, दूर से ही श्री जिन मदिर को देखकर हृदय मे हर्षित होकर इसे नमस्कार करना चाहिए । पैरो को धोकर श्री जिनालय मे प्रवेश करते समय "जय हो, जय हो" ऐसा शब्दोच्चारण करना चाहिए । जिनप्रतिमा

जी के दर्शन कर तीर्थंकर भगवान के स्वरूप तथा उनके गुणो का ध्यान करना चाहिए। फिर भगवान के सम्मुख खडे होकर बडी भक्ति के साथ भगवान की स्तुति होनी चाहिए। पूजक को बडे उमग-उल्लास सहित जिन पूजा करनी चाहिए। यदि श्री प्रतिमा जी का मुख पूर्व की ओर है तो पूजक को उत्तर दिशा की ओर, और यदि श्री प्रतिमा जी का मुख उत्तर दिशा की तरफ है, तो उसे पूर्व दिशा की तरफ खडा होना उपयुक्त है। पूजा की सामग्री वाले थाल को कुछ ऊँचे स्थान पर रख कर श्री जिनेन्द्र के चरण कमलो की पूजा स्थिर चित से करनी चाहिए।

कवि छत्रपति[1] ने विरहमान पाठ के निमित्त पूजन को उपर्युक्त रूप में वस्त्रो अलकारो आभूपणो से सज कर बडे गाजे-बाजे और उत्साह के साथ जो पाठ करने के लिए व्यवस्था की है, वह प्रवृत्ति आज भी चालू है। उनका ध्येय जिन धर्म प्रभावना, तथा साधर्मी बधुओ मे पूजा पाठ की प्रवृत्ति को बढावा देना था। कुछ सुधारक बधु इस वृहत रूप आयोजन को इस समय चाहे धर्म प्रभावना का निमित्त न मानें, फिर भी हमें विचारना है कि आज से १२५ वर्ष पूर्व देश और समाज की क्या स्थिति थी? जैनो के मेले, रथ यात्रा आदि बद थी। भोली साधारण जनता को भडकाया जाता था कि नगो की सवारी न निकले। इसके लिए कितने ही स्थानो पर अग्रेजी राज्य तक मे

---

१ श्री छत्रपति के समान कविवर "लाल" (शिकोहाबाद निवासी) ने भी इन्हीं उद्देश्यो से हिन्दी पूजा पाठो की रचना की है। हमारी दृष्टि में ये दोनो अपने लक्ष्यो मे सफल हुए। इसकी साक्षी इससे मिलती है कि कुछ स्थानो पर विशेषकर पद्मावती पुरवाल जाति के पुराने जिन मदिरो मे इस "विरह मान पाठ" का पूजन इसी रूप मे आज भी होता आ रहा है। नोबत, नगाडे आदि बाजो के साथ तथा पूजन कार्य मे अपने-अपने कारोबारो को छोड़कर स्त्री पुरुष बडे उत्साह व उमग से भाग लेते हैं और नई-नई चालो से उस पाठ को बड़ी देर में समाप्त करते है। इससे श्रोताओ व दर्शको को पूजन मे अनोखा आनन्द रस अनुभूत होता है।

उपद्रव हुए। दिल्ली, हाथरस, खुर्जा आदि स्थानो पर प्रथम जैन रथयात्रा कितनी कठिनाइयो से निकली, इसको जैन समाज के वृद्ध पुरुष अब तक जानते हैं। हमारी दृष्टि मे कविवर ने पाठ के निमित जिस चित्ताकर्षक रूपक की व्यवस्था दी थी, वह देश और समाज की उस समय की स्थिति के अनुकूल थी। इससे जैन समाज और जैन धर्म को लाभ ही पहुँचा है।

इस पाठ मे कविवर ने प्रथम ही बीस तीर्थकरो की समुच्चय पूजा और बाद मे प्रत्येक विद्यमान २० तीर्थकरो की पृथक्-पृथक् पूजा बढिया कविता मे की है।

उपर्युक्त 'पाठ' की हस्तलिखित प्रति दिल्ली के नये मदिर जी के भडार से हमे मिली, इसको विक्रम सवत् १९८० मे लिखवाया गया था।

ग्रन्थ की कुछ विशेषताएं

"ब्रह्मगुलाल चरित्र" एक प्रसिद्ध रोचक हिन्दी काव्य है। इसके रचयिता कविवर छत्रपति ने ग्रथनायक महापुरुष ब्रह्मगुलाल के चरित्र का वर्णन किया है। ग्रन्थनायक की जाति की उत्पत्ति, पितामह, माता-पिता आदि की प्रमुख जीवन घटनायें, श्री ब्रह्मगुलाल का जन्म, बालक्रीडाए, शिक्षा, विवाह, विविध-स्वाग धरकर अभिनय कला प्रदर्शन, राजकुमार वध, वैराग्य, जिनदीक्षा, स्वहित-भावना के साथ अन्यो को भी कल्याण की ओर प्रवृत्ति कराना, अन्त में समाधि-मरण के बाद स्वर्गारोहण तक की जीवन घटनाए ललित भाषा मे दी गई है। इनके साथ-साथ टापे कस्बा, प्रलयकारी आग, हल्ल की स्त्री के सौन्दर्य व नव-जात ब्रह्मगुलाल के अग का नखसिख, गुलाल के दुल्हा-रूप, बरात व जुलूस, पाणि ग्रहण सिह स्वाग व सिंही वृत्ति आदि रोमाचकारी घटनाओ का विशद वर्णन जुदे-जुदे रसो व अलकारो से सजाकर किया गया है।

राजकुमार का वध हो जाने के बाद स्वाग-प्रिय कलाकार के जीवन स्टेज पर एक नया पटाक्षेप पडता है। गुलाल का कोमल हृदय पश्चाताप से पीडित होता है। इस घोर हिंसा, पाप की परिशोधना के लिए उनकी आत्मा तडपती है। वे ससार से वैरागी बन घोर तप तपने का दृढ सकल्प करते हैं। तब गुलाल के जीवन स्टेज के नये परिवर्तित पट को कविवर छत्रपति सधे हाथो से स्वच्छ तूलिका द्वारा बढिया वैराग्य रग से रगते हैं। यह पर्दा दर्शको और पाठको के लिये बहुत ही आकर्षक बनता है। सब रसो मे शान्ति-रस या वैराग्य रस शुष्क सा माना गया है। पर विद्वान कवि ने जन-प्रिय छन्दो में रची अपनी कविता जीवन के महान कलाकार ब्रह्मगुलाल से मनमोहक भर्तरी चाल में गववा कर इसे सर्वोत्तम रस प्रमाणित किया है। बहुरूपिया भेषो के धारी, गुलाल कन-कचन कामिनी से नाता तोड, मोह ममता को छोड, राज दरबार पहुँचते हैं, तब उनके अन्तस्थल मे सुविवेक, चेहरे पर नया तेज वाणी में नया

बल और उपदेश मे अभूतपूर्व शक्ति आ जाती है। पाठको को उसका साक्षात-दर्शन राजा चन्द्रकीर्ति के दरबार मे, उद्यान मे, परिजनो व महिलाओ के समाधान और अन्त मे मित्र मथुरामल्ल के साथ हुये वाद विवाद मे होता है। हमारी राय मे एक अच्छे काव्य के लिये जितने उपयुक्त गुण होने चाहिये। प्राय वे सभी छत्रपत्ति के ब्रह्मगुलाल मे है। कवि छत्रपति ने इस ग्रन्थ के अन्त मे इसकी रचना का उद्देश्य लिखा है।

'दया धरम प्रभाव, नरघातक भी सुर भये।
करुणा आद्रित भाव, तिण पुरिषन की का कथा ।।"

इसका आशय यह है कि नर घातक मानव यदि प्रायश्चित के रूप अपने मे दया-भाव प्रधान कर जीवन साधना करता है, तो वह भी देव गति को प्राप्त कर लेता है, पर जिनके मन करुणारस से भीगे है, यदि वे अपने जीवन को साधना की ओर बढाते हैं तो उन्हे सिद्धि शीघ्र मिलेगी।

कवि का कितना ऊँचा ध्येय है। हमारा दृढ विश्वास है कि इस कृति मे कवि को अभीष्ट सफलता मिली है।

पात्रो का चरित्र चित्रण

इस काव्य के ग्रन्थ नायक तथा अन्य सभी पात्रो के चरित्र का चित्रण कलाकार कवि छत्रपति ने बहुत ही बढिया किया है। जन्म से लेकर अन्त मे समाधि मरण तक नायक की क्रियाओ व आचरणो पर ऐसा प्रकाश डाला गया है, जिनसे उनका महापुरुपत्व व्यक्त होता है। हल्ल की धर्मानुरक्ति, अनुपम धैर्य, अपने प्राण-प्रिय पुत्र गुलाल के आदर्श जीवन बनाने की ओर प्रवृत्ति को दिखाया है। राजा चन्द्रकीर्ति के प्रजा वात्सल्य, न्याय प्रियता, कलानुरजन और वचन-बद्धता को खूब बतलाया है। कलाकार गुलाल से स्पर्द्धा करने वाले प्रधान मन्त्री ने इनकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाने के उद्देश्य से दो भीषण षडयत्र रचे थे। पहिले षडयन्त्र मे मुख्य कार्यकर्ता, राजकुमार और महाराजा के साथ दूसरे मे अकले महाराजा को बनाता है और उन्हे मन्त्रणा देकर चुपचाप दूर खडा रहता है। भोली जनता को मालूम पडता है कि इसके रचने मे ताना

वाना राजकुमार और महाराजा का बनाया हुआ है पर इसकी सूझ बूझ और चुनाई राजनीति शतरंज के चतुर-खिलाडी प्रधान मन्त्री जी बडी दक्षता से करते हैं। "राजनीति वकायते' इस युक्ति के अनुसार प्राचीन काल, मध्य काल और अर्वाचीन काल मे राजनीति संचालक ऐसे खेल खेलते रहे है, पर ये किसी की पकड मे शायद ही कभी आते हैं। ब्रह्मगुलाल चरित्र मे प्रधान मन्त्री का चरित भी इसी प्रकार का है, कुछ भी हो कुशल कवि छत्रपति प्रधान मन्त्री के चरित्र चित्रण में सफल दिखाई देते हैं। इस काव्य के नायक श्री गुलाल के परमसखा श्री मथुरामल्ल का चरित्र भी उल्लेखनीय रहा है। श्री मथुरामल्ल गुलाल के जीवन साथी सखा थे। बाल्य काल मे दोनो ही "टार्प" की धूलि मे साथ-साथ खेले, विविध स्वांग भरने मे साथ रहे, हर आडे वक्त के हमाराही रहे। प्रत्येक कार्य मे मथुरामल्ल की मन्त्रणा चलती थी और उसी पर कार्य-क्रम की धुरी घूमती थी।" यहा तक कि ब्रह्मगुलाल के मुनि बनने पर ये भी घरबार छोडकर मित्र के हमराही हुये और यह साथ इस मानव-पर्याय मे समाधि मरण तक ही नही चलता, बल्कि कवि की कल्पना के उडान के अनु-सार दोनो ही स्वर्ग मे देव भी होते हैं। सच्चे सखा मे जो जो गरिष्ट गुण (सौहार्द तथा सच्चरित्रता) होने चाहिए, वे सभी मित्र मथुरामल्ल मे विद्वान कवि ने प्रदर्शित किए हैं। हमारी दृष्टि मे कलाकार ब्रह्मगुलाल की जीवन की घटना, इस काव्य मे जितनी महत्त्वपूर्ण है, उसीके मुकाबिले मे कुशल ग्रंथकार ने सभी प्रमुख पात्रो द्वारा सुचारु रूप से कार्य कराया है।

वर्णन शैली

कविवर छत्रपति की वर्णन शैली बढिया और अनोखी है। न तो वे अपने वर्णन को बढा-चढाकर, या अधिक परिमाण को भी नही चाहते हैं, अपितु मित और मधुर देते हैं, वह भी ऐसी ऊँची उक्तियो और उपमाओ का प्रयोग करते हैं कि पाठको के सामने उसका पूरा चित्र आ जाता है। प्राचीन संस्कृत कवियो की कोरी कल्पना की उडान को वे पसन्द नही करते, ऊँचे आकाश और पाताल में भी न जाकर अपने ही सामने की दुनिया से वे ऐसी उचित उपमा और

फवते दृष्टाँतो को लाते हैं, जो पाठक व श्रोता के दिल मे जम जाते हैं।"

"टापै" कस्बा का वर्णन देखिये —

"सूर देश के निकट निहार। टापा नाम वसै पुरसार।
वन उपवन करि सोभा विसेस, षटऋितु तहाँ करै, परवेस ॥
फूले फलै वनस्पति काय, सुरभ रही दसऊँ दिस छाय।
भमर समूह करें मधुर गुजार, रमे पंचर धरि मन मे प्यार ॥
कोयल करै मधुर आलाप, पथी बैठ गमावै ताप।
रमैं नायका नायक साथ, गहैं परस्पर हित सौ हाथ ॥
हरित त्रिना बहु सोभा धरै, गोमहिषी चरि आनद करै।
तन सपुष्ट स्तन पय धरै, ग्वाल बाल सबके मन हरै ॥
गायें ग्वालिनि गीत मनोग, थकित होय सुनि पथी लोग।
करै ग्वाल बहु भाँति किलोल, मधुरे सुरनि उचारे बोल ॥
धान षेत बहु फलन समेत, लिये नमनता अति छवि देत।
देषि देषि कृपिकर मन भाँति, बिगसै अधिक न अग समाहि ॥
भरी वापिका निरमल तोय, षिले कज लखि आनन्द होय।
मधुकर रमैं करैं धुनि इष्ट, सूघैं सुरभ भपे रसमिष्ट ॥
घनें कूप रस नीर निमान, लसै तडाग सहित सोपान।
सारस आदि जीव तिन माहिं, करै परस्पर केलि अघाहिं ॥
यो पुर बाहिर सोभ अपार, कहत न आवे पारावार।
परकोटा पुर के चहुँ ओर, थकित होइ लपि परदल जोर ॥
वहै षातिका गहर गभीर, पुरहि निकरि छायो तिम नीर।
चारो दिस दरवाजे चार, दिढ आगल जुत लगै किवार ॥
बीथि वीच दुहुधा गेह, जिन देखै मन वढै स्नेह।
ऊँचे अधिक बहुत खन छरै, सहत अटारी मन को हरै।"

'कविवर छत्रपति सर्वप्रथम "टापै वर्णन मे चारो ओर की प्राकृतिक शोभा निकुज मे पाठक को ले जाते हैं। इसके वन, उपवन व उद्यान विविध वृक्षो से सुशोभित हैं।"

वृक्ष फलो से लदे और खिले पुष्पो से हर्षित हैं। शीतल मद सुगंध पवन श्रात पाठक के सताप को दूर करती है, हरी हरी घास उसके पैरो को स्पर्श करती है, पुष्पो की भीनी भीनी सुगधि उसकी नासिका को, कोयलो के मधुर गायन उसके कानो को और सुन्दर प्रकृति के दृश्य उसके नेत्रो को प्रसन्न करते हैं। विविध रग के पुष्पो से अकित हरित परिधान को पृथ्वी ओढे है। पुष्प-पराग पीकर भौंरे मस्त-राग अलाप रहे हैं। वृक्षो पर चिडियायें चहक रही हैं। हृष्ट-पुष्ट गायें स्वच्छदता से घास चर रही हैं। ग्वालिनें नाच गाकर किल्लोलें कर रही हैं। हरे धानो के खेत मस्ती मे इठला रहे हैं। इधर सजल सुन्दर सरोवर है, इसमे खिले कमलो पर भ्रमर गुजार रहे हैं। इस तरह नगर के वाहिर की प्राकृतिक शोभा को दिखलाकर पाठक को "टापैं" में ले जाते हैं। टापैं का सुन्दर परकोटा सजल गम्भीर और गहरी खाई, चारो दशाओ के विशाल चार दरवाजे, हर वीथि के दोनो ओर सुन्दर मकान, इनकी ऊँची ऊची अटारियो आदि का वर्णन करते हैं।

कविवर द्वारा आग का वर्णन भी देखिये :—

"लागि आगिन द्वारतें जोर, घेरा करो सकल गृह जोर।
मानो प्रलै काल दववाय, जन्म लियो या ही गृह आय॥
उठी ज्वाल मनु गिलि है नवैं, काल जीव की उपमा फवैं।
अति भरराय चपला ताप मे, जाकी ज्वाल दूर तक भमैं॥
उठें फुलिंग अति विकरार, तिन सो सम भये गृह झार।
चली पवण अति तीक्षन धाय, ताकरि प्रवल भई अधिकाइ॥
धुमडी धुआ छाई नभ माहि, पूरि गई घर घर सक नाहि।
फैलो तम मानो निस भई, सूझन कुछण अध गति लई॥
इत उत जन डोलें भिररात, दारुण दाह पसीजो गात।
लगी झाल तन भुरता भये, स्वास रोवते अति दुष लये॥
जरी प्रतोली नाहीवान, सिदरी त्रनवर दरदर लान।
जरे गरभ गृह गोप सिवान, जरी अटारी जो आसमान॥

जरी गर्भिनी महिषी गाय, जरे लवारे ढोर व्रताय ।
बाला बाल वृद्ध अरु ज्वान, घने अगनि जलि त्यागे प्रान ॥
घरे पपेक पक्षी जरे, तरवर भस्म होय भूपरे ।
बहुत बात को करे बखान, भूमि भई जलि भस्म समान ॥"

भावार्थ—अचानक भयानक आग लगी, जिसने प्राय पुर के सभी घरो को लपेटे मे ले लिया। यह आग जल्दी से मानो प्रलय काल के समान थी। इसकी भयानक ऊची-ऊची ज्वालाये यमदेव की बीभत्सक जिह्वा के सदृश थी। चचल बिजली के समान उसका सताप और भरभर भयानक ध्वनि थी। इसकी प्रज्वलित ज्वालायें दूर तक फैल गई। इसके विकराल फुल्लगो (शोलो) से घर जल कर छार हो गये।

इसी समय तेज आधी चली, जिससे उस आग को और बल मिला। आग से निकला हुआ धुआ आकाश मडल पर छा गया, इससे घोर अधकार हो गया और दिन मे ही रात हो गई। आग के दारुण-दाह से लोगो के पसीने आये और वे इधर उधर घवडा कर भागे। अनेको के आग से जले शरीर वैगन के भुरते से हो गये। इस आग से घरो के प्रतोली, साहीवान, सिदरी, ईधन की कोठरी, गर्भघर, ऊची अटारी आदि भस्म हो गई। गर्भिनी गाय, भैसे, लवारे, पशु, जल गये। बडे बडे वृक्ष भी जल कर जमीन पर गिर गये। अधिक क्या कहा जाय "टापै" की भूमि भी जल कर मरघट के समान हो गई।

वसन्त वर्णन की बानगी भी देखिये —

"पूरण होतें समिर रितु, मधुरित आगम माहि ।
तरु बहु पतझर भये, आये नव उलाह ॥
मोरे आये अम्ब तरू, धरे पलास अगार ।
जो सज्जण सुखमाण ही, दुरजन धरें विकार ॥
वेलि पसरि तरुकध पैं, लिपटित भई बनाय ।
त्यो ही प्यारी पीयकत, सो लिपटिये धाय ॥
नारि उधारे खोन जुग, वेलि पसारे पाण ।
फूलन को सम्मुख भई, अतर भाव समान ॥

आम मजरी खादि पिक, चवे माधुरे बैन।
भृङ्गी मन मोदित भई, विरहिण लह्यो अचैन ॥'

वसत मे उपर्युक्त रग रेलिया चलती है। इसी ऋतु मे होली होती है। भारत के प्रत्येक पुर, कस्बा और छोटे-छोटे गावो तक मे गीत नृत्य वादित्र ध्वनि और तरह-तरह के स्वाग चलते हैं, जिनमे पर्याप्त मात्रा मे आमोद-प्रमोद रहता है —

"नर नारिण के तन विषै, बैठो काम निसक।
गहैं परस्पर हाथ को, विचरे होय अवक ॥
जे पति ने ही विमुख रप, ते तिय इन ऋतु माहि।
मिलने को सन्मुख भई, मणहि उमेद वटाहि ॥
पीहर मे थिति कर रही, जे नुनवोढा नारि।
पिय मिलाप की चाह करि, व्याकुल भई अपार ॥
नाज पेत फूलत फलत, वहु विधि शोभा देत।
भूपति पथिक किसाण को, वरतैं आणद हेत ॥
भवर कुसुम रस पाणते, गुजत भ्रमत निदान।
उन्मादित हे नारि नर, करत मधुर सुरगान ॥
हाव भाव विभ्रम लिये, हास विलास कटाक्ष।
करत भई निज नाह स्यों, प्रमदा समद सराक्ष ॥
देस देस पुर पुर विषै, गाम गाम जण धाम।
गीत नृत्य वादित्र धुणि, होय रही सब ठाम ॥
विविध वस्त्र आभैन सो, सजि सजि सब नरनार।
रमे परस्पर प्रीति सौ मणधरि रली अपार ॥"

राजा चन्द्रकीर्ति के आदेश से कलाकार गुलाल सिह स्वाग भरते हैं, कविवर छत्रपति ने उसका यह वर्णन किया है—

"वाघम्बर लै तेलरु तोय, किया सुकारज जोग समोय।
ताहि पहरि हरि आकृति करी। नख सिख लो सब विधि अनुसरी ॥

वाके दिढ तीक्षण नष जाय, परमत करे मास मे वास ।
जाको अगभाग अति थल, मानो गजसिर गिर छय मूल ।।
वदण भयानक चपटी नाक, गज गण भगे सुणत मुख हाक ।
तीक्षण दाढ जीभ विकराल, मानो तीक्षण जम करवाल ।।
सिरस सभाण अरुन जिम नेन, क्रूर चितोनि हरे सब चेण ।
जुगल स्रवण ग्रोछे पुनि पन्ने, नेननि निरषि पसूगण हडे ।।
छीन उदर कस कमरि सुजान, दीरघ पूछ सीस पै वास ।
उछलनि तथा घटकणि जास, हूबहू सब सिघ विलास ।।
देषि स्वरूप अचिरजे लोग, भागे वालक भय सजोग ।
ऐसो सिघ स्वाग धरि सोय, साहस सिपिन वत बहु होय ।।"

तेल पानी मिला कर अपने शरीर पर मला, फिर शेर की खाल लेकर पहन ली । शेर की आकृति के समान अपने सब शरीर की शकल बना ली । इसका बडा मजबूत और ऐसा तेज पजा था, जो मास के छू जाने पर तुरन्त ही उसमे समा जाता था । इसका आगे का भाग बहुत मोटा, चेहरा बडा भयानक, चपटी नाक, बडी तेज दाढ और विकराल जीभ थी । इसके नेत्र जलती हुई चिलम के समान लाल-लाल थे, इसकी क्रूरतापूर्ण चितवन मे दर्शक के सब औसान चले जाते थे । इसके दोनो कान छोटे, पर खडे हुए थे । इसका छोटा पेट, पतली कमर और बडी लम्बी पूछ सिर तक तनी हुई खडी थी । इसकी छलाग, बटकन और घात बिलकुल सिह जैसी थी । इसके भयानक स्वरूप को देखकर नर नारी डर कर भाग गये ।

इसी प्रकार कविवर छत्रपति हल्ल की नवोढा नारि के सौन्दर्य तथा खूसट हल्ल की अनुरक्ति का बहुत ही रोचक-वर्णन करते हैं —

"अब ए हल्ल नवोढा नारि, पाय धरें आनन्द अपार ।
भामिणि मुख पकज रस लेत, त्रिपति न होय रमे धरि हेत ।।
वक चितोन नैन सर हेत, गाफिल भये राग रसरेत ।
निम पति ते मानत मुखवेस, णिरखत जो चकोर सिर भेस ।।

सिर वेंणी नागिनि करि डर्से, भृकुटि लता माहि अति फसे।
मुख सुधानु मूघन ते आन, प्यार करे अत्यत सुजान ॥
वाहु फास करि फासित भये, जुदें होण को अक्षम ठये।
नाभि सरवरी रसजलमग्न, जैम रेनुका सग जम-दग्न ॥"

हल्ल की अपनी पत्नी के साथ प्रेम-क्रीडा और खूब खुलकर रति-क्रीडा को भी देखिये—

"काम केलि मे मगन अतीव, जो अलि पकज रमहि सदीव।
तण सपरन मुख चुम्बन आदि, वचन विनोद करें मन सादि ॥
अधरण पर निज मुख थिति धार। पीवत सुरस ए त्रिपति लगार।
विह्वल भये पतन भय धार। गहे जुगल कुच दिढ कर सौर ॥

ब्रह्मगुलाल ने दिगम्बर मुनि के स्वाग भरने का जब निश्चय कर लिया, रात भर बारह भावनाओ द्वारा अपने मन को त्याग और वैराग्य से सींचा। प्रात काल उनके मन की स्थिति कैसी बदली हुई हो जाती है उसकी झलक उनके सुन्दर चेहरे पर झलकती है। ज्ञान की नव ज्योत्स्ना से प्रकाशित गुलाल का चेहरा बहुत ही सुन्दर मालूम होता था। विद्वान् कवि छत्रपति जी कहते हैं कि ब्रह्मगुलाल के अनुपम नूर को देखने के लिए अपना किरणो को पृथ्वीतल पर बखेरता हुआ सूर्य उदय हुआ। उसी दिन प्रभात होने से पूर्व कुछ वर्षा भी हुई थी। वर्षा के जल को रात्रि वधूटी के आसुओ से उपमा देकर प्रात यह निशा अपने प्रीतम-तम के साथ विदा हो जाती है।

"दिवसागम आरभ विर्षे, परो गगन ते वार।
मानो करम वियोग ते, रैन नैन जल धार ॥
वहरो लखण असक्त है, करम जीत परमार।
तम प्रीतम को सग ले, कीनो निसि विवहार ॥
रवि किरनन फैलावतो, उदै भयो तम चूर।
मानो ब्रह्मगुलाल को देखण आयो नूर ॥"

इस काव्य का १७ वा अध्याय सबसे बढिया है। मुनि भेप मे ब्रह्मगुलाल राजसभा मे राजा चन्द्रकीर्ति को जो उपदेश देते हैं, वह इस ग्रथ का ही नही,

अपितु हिन्दी साहित्य का "मास्टर पीस" है। हमारी यह धारणा है कि हिन्दी मे इतना भावपूर्ण और सुन्दर वैराग्य वर्णन शायद ही कही मिलें। इस अध्याय के पन्द्रह छद (६ से २० तक) सर्वोत्तम हैं।

इनमे विद्वान् कलाकार ने जीव और कर्म के अनादि सम्वन्ध को लेकर इस जीव की वैभाविक परिणति और उसके दुष्परिणामो का कोरा और सच्चा खाका खीचा है, वह है तो एक रेखा चित्र, (लाइन फोटो), किन्तु उसके निर्माण मे कलाकार ने जिस भाव-भावना, भाषा, समुद्र सुमेरुपर्वत आदि प्राकृतिक उपमाओ और फवते तथा चुभते दृष्टाँतो की सामग्री ली है, उससे यह रेखाचित्र रत्न चित्र सा जँचने लगता है। इससे केवल पुत्र-वियोगी महाराजा चन्द्रकीर्ति के टूटे हुए दिल को राहत और सम्वोधन ही नही मिला, बल्कि हर पाठक व श्रोता को हर समय इससे वैराग्य-भाव की उद्‌बोधना मिलती रहेगी।

इनमे से कुछ छन्दो को देखिये—

"जा गति मे जो तन धरें। तहा अपरणपो मानि ॥
तिण साधक बाधकनिमें, राग द्वेष विधि ठानि ॥
विधि बस है भव भव भ्रमे ॥ ७ ॥
कोण कोण सो णहि भये। कोण कोण सनबध ॥
सव ही सब ही सौ भए। बहु तक नासत बध ॥
तिन की कछु सख्या नही ॥ ८ ॥
जनम जनम जननी भई। पियो तिणाहिं तन क्षीर ॥
जो एकत्र करो कही। कितौ उदधि मे नीर ॥
अधिक होय ऐसे ससे णहिं ॥ ९ ॥
भव भव के नख केस को। जो कीजे इक ठाइ ॥
अधिक होय गिरि मेरू सो। सोचत धीरज जाय ॥
फिर फिर तिस ही पथ पगौ ॥ १० ॥
जनम जनम लहि मरण को। रूदण कियो बहुमात ॥
असुवण जल सग्रह इसौ। कहा उदधि जल बात ॥
अधिक लखौ ग्यायक जना ॥ ११ ॥

यो ही भव भव के विषै। भये कितेक सनवध ॥
क्यो न विचारो ग्यान सो। वृथा जगत को धघ ॥
सव ही है है नसि गये ॥ १२ ॥
नसे सवन के कुल वडे। लघुता सत द्रग जोइ ॥
कोण विवेकी रति करैं। रोवें मूरख लोइ ॥
जगत अथिर है दुख भरो ॥ १३ ॥
मात तात सुत कामनी। सुसा सहोदर मित्त ॥
सवै विपरजै परिणमे। जग सनवध अणित्त ॥
कोण निहारो नेंन सो ॥ १४ ॥
जहा मात सुत को हणें। नारि हणें पति प्राण ॥
पुत्र पिता को छै करै। मित्र होय अरिमान ॥
यह जग चरित्र विचित्र है ॥ १५ ॥
कोयण काऊ को सगे। सव स्वारथ सणवध ॥
काको गहि भरि रोइये। काको सोक प्रवध ॥ १६ ॥
भिन्न-भिन्न सव जीव हैं। भिन्न भिन्न सव देह ॥
भिन्न भिन्न परनयन हैं। होय दुपी करि नेह ॥
यो भ्रम भूल अनादि की ॥ १७ ॥

इस ग्रन्थ के २५ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ मे अपने इष्टदेव को नमस्कार किया है। प्रथम अध्याय मे सर्वप्रथम चारघातिया कर्मो के विनाशी, परमोपकारी अरहत भगवान को नमस्कार किया है। फिर अवशेष के चौवीस अध्यायो मे मगलाचरण के रूप मे प्रत्येक तीर्थकर को क्रमश नमस्कार कर २४ तीर्थंकरो की वदना की है। कविवर छत्रपति आस्तिकवादी थे, उनकी भावना थी कि उनका हर पाठक व श्रोता विवेकी आस्तिकवादी हो। ग्रथ नायक की एक विशेष जीवन घटना को लेकर ग्रथ रचयिता ने इस काव्य की रचना की है, इसमे कथा का अश थोडा है, किन्तु वाद-विवाद, उपदेश और शिक्षा वहुत हैं। उन सव का विद्वान् कलाकार ने इस ढग से लिया है जो पाठको के कठो मे वरावर उतरता जाता है।

ब्रह्मगुलाल चरित की भाषा

कविवर छत्रपति ने ब्रह्मगुलाल चरित की रचना स० १६०९ में की थी। आपकी भाषा वह ब्रजभाषा है, जो अलीगढ, आगरा और एटा जिलो मे बोली जाती थी। ब्रह्मगुलाल चरित का जितना महत्त्व उसके साहित्यिक गुणो तथा अनोखी जीवन कथा वृत्तात से है, उतना ही सम्भवत उसकी भाषा के कारण है। आज से ११२ वर्ष पहिले ब्रजभाषा की बोलचाल क्या थी, उस समय की बोलचाल मे आने वाले शब्दो की स्थिति कैसी थी, उस समय किस प्रकार की कहावतें प्रचलित थी ? आदि विषयो की जानकारी के लिये यह ग्रन्थ बहु उपयोगी है। कविवर छत्रपति की उपलब्ध रचनाओ के देखने से हम इस निष्कर्प पर पहुँचते हैं कि कविवर का जन्म, लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा अवागढ (एटा यू० पी०) मे होने से इनकी भाषा मे उस ठेठ ब्रजभाषा का ठाठ मिलता है, जो प्राय गावो मे बोली जाती थी। यद्यपि आपकी रचनायें जन्मभूमि के गाव मे न होकर कोल शहर (वर्तमान अलीगढ) मे हुई थी, फिर भी ग्रामीण ब्रजभाषा के ललित शब्दो की लडी जगह जगह मिलती है।

इसके कुछ नमूने देखिये—

"परी खलबलीपुर के माहि" (४।७)

"धीरज गयो पलाहि" (४।७)

"धरें णही चित णेक करार" (४।९)

"लगै बुझावण ले ले वारि" (४।११)

"पूरि गई घर घर सक नाहि" (४।१८)

"मरो कुटुम्ब सब एकै ठौर" (४।१८)

"देत करम को पोर" (४।२६]

"और समर्थ न दीसै कोय" [५।३)

"जे मगई ते पीछे फिरी" (५।४)

"हम से कहो मरम की बात" (५।१५)

"चलहि गिरहि उठि चाले फेरि
जणनी अकहि आयहि हेरि" } (७।५)

"धर्मलीन कीनें नरघना,

"आयु णिकट निजजानी जवै ।
माडो वर सन्यासहि तवै ।।" } २५

"प्रासुख भूमि थए चित सुस्त २५

"सूपें श्रोनत' मास समस्त
ठठरी मात्र रहे तण अस्त" } २५

इसी प्रकार इस गथ मे प्रयोग हुई निम्न क्रियाओ को भी देखिये—

उपमा फवै (४।५), सिघाए (२।१२), ठयँजी, भयँजी (२१३) छकैं (१।१६), पैं आये (२।१३), निर्वाइये, कहिये (२।१४), थापैं (२।१६), थापना करी (२।१६), तपगहि (।२३), निधा पसारि (५।४), नामधराये (३।१४), कान करें (३।१६), परनाइ दीने (५।२५), घेरा करो (४।८), प्रति भरराय (४।६), गिलि हे सवै (२४।५), आपस भाहि (६।८) ।

ग्रन्थ मे कहावतें

इस ग्रन्थ मे जगह-जगह कुछ फवती कहावतें भी आई हैं, जो वोलचाल की भाषा को सुन्दर और हृदयग्राही वनाती हैं । यथा—

(1) 'ज्यो दीपकतें दीपक जोय (२।१२)

(ii) 'करम उदै सव पै वलवान ।
कहा राव कहा रक णिदान ।। } (४।१८)

(iii) होनहार सो कुछ न वसाय' (४।२१)

(iv) सवको काल भखै सक नाहि (१५।५)

(v) जो पयपान करावै कोई ।
जो ण करे सो मूरिप होई । } (१५।१८)

(vi) भरम दुखी छाये द्रगजास ।
तिणको अजण वटी सरास ।। } (१८।१८)

(vii) 'करना है सो करि चुको, औसर वीतो जाय' १८।२६)

(viii) 'मित्र सुपहि सुप दुख दुख भोग ।
सो वर प्रीति सराहण जोग ।। } (२२।६)

'अपजन्न वाण पुरिप जग माहि ।

वृथा जनम धारे सकनाहिं ।। २२।१८

(x) 'जिण के व्रतरूप तिरै जण तेही' (२३।८)

(xi) लिपी विधि रेप मिटै न मिटाई' (२३।२३)

(xii) 'जीव किये जे सुभासुभ सचित एक णही फिर एक सतावै'
(२३।२४)

(xiii) 'धर्म किये जु होय बुरौ तो बुरौ ऊ भये फिरि धर्महि ध्यावे'
(२३।२४)

सर्वनामादि की स्थिति

इस ग्रथ मे सर्वनाम अव्यय और क्रिया विशेषण और उनकी विभक्तियो की स्थिति भी वर्तमान स्थिति से कुछ भिन्न है । जैसे—

उसके (तसु १।१) उसकी (ताकी १।५) उन्होने (तिनके ४।२) उसमे (तार्महि १।६) उनमे (तिन माहिं १।१३) तुमको (तोहि ७।१८) जिसका (जास २।३, ६।२०) इस प्रकार (इमि २।२१) जैसा (जिमि २।७) जैसा तैसा (जैसो तैमो ६।२४) जिसकी (जाकी ११।१०) ।

इसके अतिरिक्त जौंन—तौन, जेम—तेम, जो जो सो सो आदि का भी प्रयोग होता है ।

वर्णो का रूप

हिन्दी के वर्तमान सभी स्वर इसमे हैं, किन्तु ऋ ॠ का प्रयोग नही है, इसके स्थान पर 'रि' को काम मे लाया गया है जैसे ऋतु के लिए रितु १०।१५ ऋपि के लिये रिषी २५।२

हिन्दुस्तानी लिपि

राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी ने हिन्दुस्तानी लिपि को चलाया है । जिसमे ए ऐ स्वर को अ आ पर लगाया जाता है । कविवर छत्रपति ने भी उसको अपनाया है । जैसे—'एसे' के लिये अैसे २।२१, ६।९, ६।१९, ९।२, ९।९ एसी के लिए 'अैसी' ३।१२ और एसो के लिये (अैसो) ३।१८ का प्रयोग किया है। कविवर छत्रपति जैन थे । जैन साहित्य का बहुभाग प्राकृतिक भापा मे है । इसमे

'न' के स्थान पर 'ण' का अधिक प्रयोग है, छत्रपति ने भी 'न' को ण मे न्व लिखा है, जैसे—

किसान (किसाण १५।१०) नेन (णेन २०।१०) जनवाम (जण वाम १६।१६) कहन (कहण १७।१०) वदन (वदण ११।११) सुनत (सुणत १०। ११।१०) चेन (चैण १०।१२) सज्जन (सज्जण १०।६।१०) दुर्जन (दुर्जण ८।१०) मन (मण २।१०) वचन (वचण ६।१२) निसदेह (णिसदेह २५।१३। २५) नृपन (नृपण १०।२) वचन (वचण १।६, १५।१) नेग (णेग १२।५ ५।१७) रैन (रैण ३।२२) नहि (णहि ४।४, ५।१, ५।१) नरेश (णरेश २।२० ३।२ ६।३) कोन (कोण ५।२५) निसान (णिसान ५।७) दिन (दिण ५।२५) जीवन (जीवण ६।२५) आनद (आणद ५।२१) निस (णिस ५।२२) भामिन (भामिण २।६) जननि (जणनि ५।७) आदि।

कही-कही 'ण' के स्थान पर 'न' प्रयोग भी किया गया है जैसे—लक्षण (लक्षन १।२) न्याय निपुण (न्याय निपुन १।२०) दक्षिण (दक्षिन) आदि।

'श' के लिये स को भी काम मे लाया गया है। जैसे—शासन (सासन ३।५) हमेशा (हमेसा ३।१७) शिव (सिव ३।२०, २५।३) शास्त्र (सास्त्र ६।१४) शिल्प शास्त्र (सिल्प सास्त्र ७।२३) अशेष (असेस १।३) प्रशस्त (प्रसस्त २।२६) शिरोमणि (सिरोमनि २।२१) देश (देस १।२१, २।२५) आदि।

भाषा विशेषज्ञों का कहना है कि नागरी लिपि मे 'ख' का प्रयोग र व के सशय को पैदा करता है। अत वे इसके लिये अब सुधार की सिफारिस करते है। छत्रपति ने अपने ग्रन्थो मे 'ख' का प्रयोग 'ष' से किया है, जैसे—खेत (षेत १२।७) दैखि (दैषि ७।४) खिलै (षिलै १३।११) लखि (लषि १३।१) भखै (भषै १३।१) खातिका (षातिका १६।१) भूख (भूष ४।२) दुख (दुष ४।२, २।१६) खुसी (षुसी १७।२, २३।५, १२।६) ईख (ईष १६।५) सुख (सुष १८।२, १७।३, २।४, १।२५) विख्यात (विष्यात २०।२) राखै (राषै १५।३) सीख (सीष १५।७) नख (नष १०।११) खडै (षडै १५।५१)

'य' के स्थान पर 'ज' का भी प्रयोग है। जैसे—सूर्य (सूरज २।१३) पर-

कार्य (परकाज ३।२४) अपयश (अपजस ५।१२) सयम (सजम १०।३) आदर (जादर) यथा (जथा ३।२५) यजै (जजै ११।१) युगल (जुगल ११।१२) यन (जन) यती (जती २३।११)।

अन्य भाषाओ के शब्द

कवि गुलाल ने जिस समय इस ग्रथ की रचना की थी, उस समय देश मे मुगल साम्राज्य समाप्त हो चुका था, पर उस समय की जनता की बोली मे फार्सी व उर्दू के शब्दो का चलन प्रचलित था। यह ही कारण है कि इस ग्रन्थ मे भी फार्सी व उर्दू के शब्द आ गये है। जैसे कि—सिफत (सिफति २५।१०) जानना (तारीफ २६।१०) कष्ट (तकलीफ २६।१०) नीचा देखना (निजाम ११।३) अपमान (ख्वार ११।४) मुआफ (माफ १०।६) कूच (पयान १५।११) अलग (जुदे २३।११) अपराध (खता १२।४) आदेश (अमन १३।१६) खूबी (कमाल १२।३) वीनती (अरदास) अर्ज (अरज) ध्यान (गौर २०।१२) शरीर (जान २१।६) नाजुक, रगीले, करारे आदि शब्द भी आये हैं।

कविवर के समकालीन कवि

कविवर ब्रह्मगुलाल जी जब अपने मानव-शरीर मे थे, उस समय हिन्दी के महान कवि हिन्दी रामायण के रचयिता श्री तुलसीदासजी का स्वर्गवास स० १६८० मे हुआ था। अजैनो के समान लब्ध-प्रतिष्ठ कुछ जैन कवि भी उस समय थे। उनके ही समकालीन (सवत १६८० मे) कविवर भगवतीदास जी थे। कविवर ब्रह्मगुलाल, ग्वालियर के भट्टारक श्री जगभूषण के शिष्य थे। तो उस समय हिसार पट्ट के भट्टारक श्री महेन्द्र कीर्ति जी के प्रमुख शिष्य कवि भगवतीदास थे। कविवर भगवतीदास जी अध्यात्मवादी जैन कवि थे। इनकी रचनाए जैन समाज मे काफी मिलती हैं। कविवर भगवतीदास जी दिल्ली, चन्दवार, सकिशा, कैथिया, सहजादिपुर (इलाहाबाद) आदि स्थानो मे भ्रमण करते हुए विचरे थे। कवि गुलाल की यदि समकालीन अध्यात्म साहित्यकार श्री भगवतीदास जी से भेंट हुई हो, तो कोई आश्चर्य नही।

वनारसीदास और ब्रह्मगुलाल

कविवर ब्रह्मगुलाल के समकालीन कविवर वनारसी दासजी थे। कवि-वर वनारसीदास जी का जन्म विक्रम सवत १६४३ मे तथा मृत्यु सवत १७०० के लगभग हुई है। कविवर वनारसीदास जी ने अपने जीवन मे अच्छी साहित्य रचना की है। कविवर ब्रह्मगुलाल जी ने विद्याध्ययन के वाद श्रृगार विषयक लामनी, झूला, शेर आदि बनाने किस्सा जकरी मुकरी पहेलियो के रचने मे विताया है और साथ ही साथ कुमारग मे भी रत रहे थे। इनके अतिरिक्त रासलीला स्वाग भरने और तरह-तरह के एक्टिग करने मे तल्लीन थे, इधर कविवर वनारसीदास जी ने भी १४ वर्ष की आयु मे १००० छन्दो की 'नव-रस' नाम की प्रथम रचना रची, इसमे केवल इश्कवाजी ही थी। साथ-साथ कुप्रवृत्तियो मे पडने के कारण इनके सिफलिस यानी गर्मी का रोग भी हो गया था, वाद मे इनमे धीरे-धीरे सुधार हुआ और कवि वनारसीदास जी ने इस नव-रस रचना को अनुचित समझ कर अपने ही हाथो से गोमती नदी मे जल समाधि कर दी। सिंह के स्वाग में कविवर ब्रह्मगुलाल के हाथो से राजकुमार का वध हो जाने पर गुलाल के जीवन मे अचानक अभूतपूर्व परिवर्तन होता है, और वह इस हिंसा-कलक की कालिमा को छुटाने तथा मानवजीवन को सफल करने के लिए कटकाकीर्ण मुनिमार्ग पर चलते हैं। परमार्थ—पथ के पथिक होने के वाद कविवर ब्रह्मगुलाल की जीवन-प्रवृत्ति आत्म हित, परोपकार व साहित्य सृजन की ओर वढती है, इधर कविवर वनारसीदासजी अपनी गृह-स्थी की पालना मे लीन हुए, जगह-जगह व्यापार के लिए भ्रमण करते हुए नाममाला, समय-सार नाटक, वनारसी विलासो आदि साहित्यिक ग्रथो को रचते हैं। गृहस्थ व्यापारी पडित और सुकवि होने के नाते वे कभी जौनपुर, तो कभी आगरा और कभी वनारस आदि शहरो मे पहुचते है, पडितो व कवियो नवाबो व और सम्राटो तक से भेट होने के कारण इनकी प्रसिद्धि व प्रतिष्ठा निखरती है, किन्तु कविवर ब्रह्मगुलाल "टापे" गाव मे पैदा होते हैं, वहीं शिक्षित होकर वसते हैं, व्यापार करते हैं। मुनि वनने के वाद भी उनका भ्रमण प्राय गावो मे ही होता है, इनकी सासारिक चाह दाह नही रही, अत इनका

सीमित क्षेत्र, सीमित उद्देश्य सीमित साधना, और सीमित कार्यो मे ही प्रवृत्ति रही। ऐसी स्थिति मे कविवर गुलाल की कल्पना की उडान कविता की कृति व साहित्यिक रचनाए शातिरस या अनुपम अध्यात्म-रस मे ही भीगी रही, पर फक्कड वनारसीदासजी ने अपनी रचनाओ मे सभी रसो को दिया है, और खूव खुलकर भी लिखा है। अर्द्धकथानक मे अपने दोषो के वर्णन करने मे कमाल किया है, हिन्दी कविता क्षेत्र मे कविवर की यह कृति अमर है।

दोनो ही कवियो को अपने वालकपन मे माता पिता का दुलार, युवावस्था मे पत्नी का प्रेम प्राप्त हुआ था। पर परिस्थिति-वस तथा शुभकर्मोदय से कविवर गुलाल ने युवावस्था मे ही ससार को असार समझ, कन-कचन और कामिनी से नाता तोड, अनूठे आत्मरस का आस्वादन किया, किन्तु कविवर वनारसी दास के तीन विवाह हुए, और उनके नौ वच्चे हुए, पर ये सब उनके जीवन काल मे ही समाप्त हो गए जैसा उन्होने कहा है

"नौ वालक हुए मुए, रहे नारि नर दोइ।
ज्यो तरवर पतझार ह्वे, रहे ठूठ से होय ॥"

इससे मालूम होता है कि कविवर वनारसीदासजी अपने जीवन मे कितने दुखी और असन्तुष्ट रहे, इसका ठीक अनुमान केवल भुक्तभोगी ही कर सकता है। पर ससार की असारता और दुखमय स्थिति की हार्दिक अनुभुति और कोरी-विरक्ति उनको उस वुढापे में जाकर हुई, जिसके विषय मे कविवर दौलतरामजी ने कहा है—

"अर्द्ध मृतकसम वूढापनो, कैसे रूप लखे आपनो ॥"

कुछ भी हो १७ वी शताब्दी के इन दोनो जैन हिन्दी कवियो ने हिन्दी भाषियो के लिए अपनी वडी साहित्यिक देन दी है। साहित्यिक रचनाओ की क्वालिटी और क्वाँटिटी दोनो में ही कविवर बनारसीदास जी गुलाल से वढ कर हैं, किन्तु त्याग, आत्महित, मानव-जीवन सफलता आदि मे उनसे वहुत पीछे हैं।

पद्मावती पुरवाल उत्पत्ति

कविवर ब्रह्मगुलालजी पद्मावती पुरवाल थे, तथा इस ग्रन्थ के रचयिता कविवर श्री छत्रपति ने भी इसी जाति मे जन्म ग्रहण किया था। जैन समाज की चौरासी जातियो मे पद्मावती पुरवाल भी एक जाति है। इस जाति की उत्पत्ति कब और कहाँ से हुई ? इस विषय मे कुछ विद्वानो ने खोज की है।

पद्मावती परिषद् के मन्त्री स्वर्गीय प० गौरीलाल जी सिद्धान्त शास्त्री ने सन् १९१५ में "पद्मावती पुरवाल जाति की जन गणना व मूल उत्पत्ति' नाम की बडी महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित की है। उसमे आपने लोगो की दंत-कथायें सुनकर तथा छानबीन कर पद्मावती पुरवाल जाति की उत्पत्ति के विषय मे निम्न चार कारणो को दिया है।

प्रथम कारण

अजमेर मे जिस स्थान पर इस समय पुष्कर सरोवर है, वहाँ पर पद्मावती नाम की प्राचीन प्रसिद्ध नगरी थी। यह नगरी गगन-चुम्बी-महलो, मदिरो तथा सभी प्रकार की सम्पत्तियो से सम्पूर्ण थी। राजा और प्रजा धार्मिक व सुखी थे।

एक बार एक तपस्वी इस नगरी के समीप वन मे विद्या सिद्ध करने लगा। उसका एक शिष्य उसकी परिचर्या करता था। वह नगरी मे जाकर भिक्षा मागता और अपना तथा गुरु तपस्वी का पेट भरता था। शिष्य स्वस्थ तथा हृष्ट-पुष्ट था।

नगर निवासियो ने उसे भिक्षा देना अयोग्य समझा, इस पर शिष्य ने जगल से लकडी काटकर अपने सिर पर बोझ लाद कर बेचनी आरम्भ की, इससे उसने अपनी उदर पूर्ति तथा तपस्वी के लिए भोजन की व्यवस्था की। ऐसा करने मे उसे बडा श्रम करना पडता था। इसी से उसके सिर में एक घाव भी हो गया था। तपस्वी को विद्या सिद्ध हो गई। शिष्य की भक्ति और सेवा देख कर उस पर स्नेह और ममता अधिक बढी, उसके सिर के घाव को देखकर और उसके कारण को जानकर उसका क्रोध इस नगरी पर बढा, उसने

कहा, "इस नगरी के निवासी इतने नीच और स्वार्थी हैं, जो तपस्वी के लिए भी भिक्षा नही दे सकते। उस तपस्वी ने अपने तपोबल और साधी हुई विद्या द्वारा पद्मावती नगरी के निवासियो को अनेक प्रकार के कष्ट दिये। इस नगरी मे अनेक उपद्रव होने लगे। इन उपद्रवो मे त्रस्त होकर इसके निवासी इस नगरी को छोडकर अन्य स्थानो को चले गए। बहुत से लोग दक्षिण को गये। बहुत से मालवा व मध्यप्रदेश मे और बाकी के आगरा की ओर चले गये, किन्तु पद्मावती नगरी के होने के कारण ये सब पद्मावती पुरवाल कहलाए।

दूसरा कारण

एक शहर मे राजमत्री के अति सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई। इसका नाम पदमावती था। युवावस्था प्राप्त होने पर उसका सौन्दर्य निखर-निखर कर बढता ही गया। लोग उसके रूप-लावण्य और सुन्दरता को देखकर समझते थे कि कलिकाल मे इस पृथ्वी पर यह रति ही आई है। उसके स्वरूप की प्रशसा राजा के कानो तक पहुँची। उसने इस कन्या से अपना विवाह करना चाहा। एतदर्थ मत्री से कहा। विभिन्न धर्म, विभिन्न जाति तथा आयु मे अधिक अन्तर होने से मत्री महोदय राजा के लिए अपनी कन्या नही देना चाहता था। पर राजा की इस कन्या पर आसक्ति बढती गई। उसने जब बहुत जोर से कहा, तब मत्री ने उत्तर दिया, "महाराज, मैं इस विषय मे अपने बन्धुओ तथा जाति के लोगो से पूछ लूँ उनकी यदि अनुमति मिल गई, तो पुत्री का पाणि-ग्रहण सहर्ष कर दूगा। "जब मत्री महोदय ने अपने जातीय जनो के सम्मुख इस विषय को रक्खा, तो उन्होने अनुचित समझ कर अस्वीकार कर दिया। राजा का हठ बढ गया। उसने मत्री से कहा, कन्या दो या युद्ध के लिए तैयार हो जाओ, या मेरे राज्य को छोड दो।"

यह सुनकर मत्री के जातीय जनो ने ऐसे अन्यायी राजा का राज्य छोड कर अन्यत्र जाने का निर्णय किया। ये सब राज्य छोड कर चल दिये। राजा ने इस कन्या को छीनने के उद्देश्य से अपनी सेना भेजी, मत्री के जातीय-जन भी साहसी व सूर थे, उन्होने सेना का मुकाबिला किया और उसे हरा दिया। फिर राजा ने सेना के साथ इन लोगो से युद्ध किया। युद्ध की भयानकता बढ गई।

पद्मावती ने देखा कि केवल मेरे निमित्त सहस्रो निरपराध जनो की हत्या होगी ।

"यह व्यर्थ की घोर हिंसा रुक जाय", इस उद्देश्य से उसने अग्नि मे जल कर निज शरीर को भस्म कर दिया । जब यह समाचार राजा को मालूम हुआ, तो उसे बहुत ही दु ख हुआ । उसने फिर युद्ध करना निरर्थक समझा और मत्री तथा इन प्रजाजनो को फिर अपने राज्य मे वापिस चलने के लिए कहा, किन्तु इन लोगो ने फिर वापस जाने से मना कर दिया और अपनी अलग नगरी बसाई ।

पद्मावती की धर्मभावना के स्मरणार्थ इस नगरी का नाम भी इन्होने पद्मावती नगरी रक्खा तथा अपने आपको पद्मावती पुरवाल कहने लगे । इन्होने अपनी जातीय पंचायत निर्माण की । इसका नाम पद्मावती परिषद् रक्खा । इसके प्रधान को अपना सिरमौर बनाया, एक किसी दूसरे प्रतिष्ठित मनुष्य को सिंघई बनाया और साथ के ब्राह्मणो को पाडे माना, अवशेष जो १४०० घर के लोग थे उनको परिषद का सभासद बनाया । सिरमौर अर्थात् शिरोमौलि, इसका अर्थ अपना प्रमुख या सभापति होता है, सिंघई का अर्थ प्रबन्ध करने वाला होता है । पाडे का अर्थ पुरोहित होता है । यह गृहस्थ के धर्म और सस्कार सम्बन्धी कामो को कराते हैं । सिरमौर, सिंघई, और पाडे की व्यवस्था पद्मावती पुरवाल बन्धुओ मे अब तक चालू है । कुछ कारणवश "पद्मावती" नगरी से भी, जो लोग अन्य स्थानो को भी चले गए, उन्होने अपने आपको पद्मावती पुरवाल कहा और वे इसी नाम से प्रसिद्ध हैं ।

तीसरा कारण

यू० पी० के बरेली जिला मे अलीगढ-बरेली रेलवे लाइन पर "करेंगी" स्टेशन से करीब साढे तीन मील की दूरी पर एक प्राचीन जैन अतिशय क्षेत्र, अहिच्छत्र है । अहि=सर्प ने क्षत्र रूप होकर भगवान पार्श्वनाथ की रक्षा कमठ के उपसर्ग करने पर की थी, इससे इस पावन भूमि का नाम अहिच्छत्र पडा । अहि-सर्प, क्षिति भूमि रूप होकर वहा का उपसर्ग दूर करने का महान कार्य

हुआ, इससे इसे अहिक्षिति नाम से भी पुकारते हैं। भगवान पार्श्वनाथ और कमठ के जीव का विरोध कुछ पुराने भवो से चला आ रहा था। जब भगवान पार्श्वनाथ केवल-ज्ञान प्राप्त के लिए घोर तप तपने मे मलीन थे, उस समय कमठ के जीव ने पाषाणो को फेंकर, बिजली डालकर घनघोर मूसलाधार वर्षा की, तो पाताल के स्वामी पद्मावती धरणेन्द्र का आसन कम्पित हुआ, उन्होने तीर्थंकर भगवान पर उपसर्ग आया हुआ जाना और वे वहा पहुचे, पद्मावती ने नीचे से आसन बन कर और धरणेन्द्र ने ऊपर से छत्र बन कर भगवान के उपसर्ग को निवारा। इसी समय भगवान पार्श्वनाथ को केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। उसी समय देव, मनुष्य और और तिर्यंच भगवान की वन्दनार्थ आये, जिस स्थान पर यह उपसर्ग हुआ था उसी को अहिच्छत्र कहते हैं[1]। तथा उस समय कुछ जिन भक्तो ने पद्मावती के नाम से यहा पर एक विशाल नगरी बसाई। उपसर्ग के स्थान को परम पावन और जगत निवारन रूप समझ कर इस नगरी के निवासी उसकी पुजा भक्ति करत हुए वहा रहे। किसी कारणवश पद्मावती पुरी तो नष्ट हो गई[2], किन्तु इस क्षेत्र की भक्ति उपासना और मान्यता पद्मावती वासियो मे कम न हुई। आज तक भी उत्तर भारत के (विशेष कर एटा, आगरा, मैनपुरी, अलीगढ, दिल्ली आदि के) पद्मावती पुरवाल यहा प्रति वर्ष एक बार अवश्य जाते हैं, पूजा अभिषेक आदि भक्ति कर पुण्योपर्जन करते हैं, तथा अपने बच्चो का मुडन भी अधिकतर

---

१ इस स्थान पर अब भी विशाल-काय अति प्राचीन जिन मदिर हैं, जिसमे भगवान पार्श्वनाथ की बडी मनोज्ञ प्रतिमा तथा उनके पावन चरण-चिन्ह विराजमान हैं।

२. अहिच्छत्र के समीप ही एक प्राचीन किला है, इसका विस्तार करीब १२ मील मे होगा। भारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने करीब २० वर्ष पूर्व इस इस किले के कुछ स्थानो की खुदाइ कराई, जिनमे प्राचीन करीब २५०० वर्ष से भी और पुरानी नगरी के कुछ अवशेष महलो, मकानो सिक्को मिट्टी के बर्तन, खिलौने आदि प्राचीन इतिहास की महत्व पूर्ण सामिग्री प्राप्त हुई थी।

वही पर कराते हैं। प्रतिवर्ष चैत्र में होने वाले यहा के वार्षिक मेले मे इनकी सख्या भी अधिक रहती हैं, पद्मावती पुरवाल वन्धु पदमावती को अपनी कुल-देवी मानते हैं। मूल उस पद्मावती पुरी मे वास करने मे तथा पद्मावती के अनन्य भक्त होने के कारण इनका नाम पद्मावती पुरवाल पडा।

चतुर्थ कारण

विवाहादि शुभ कार्यो के समय जो पद्मावती पुरवालो के भाट आकर विरुदावली वखानते हैं, उसमे वे कहते हैं कि पोदनापुर का दूसरा नाम पद्मावती पुर था। वाहुवली ने जव भरत चक्रवर्ती को विजय किया, तव मे उस नगर के रहने वाले वाहुवली के पक्ष वाले क्षत्रियो का नाम पद्मावती पुरवाल पडा। यह कथन केवल इन भाटो की विरुदावली मे ही है, अन्यत्र नही।

स्वर्गीय प० गौरीलाल जी के वताये उपर्युक्त ४ कारणो को हम अस्पष्ट मानते हैं। इस विषय मे की हुई नई खोज इस प्रकार हैं —

प्राचीन पद्मावती नगरी

भारत की ख्याति-प्राप्त कुछ प्राचीन वैभवपूर्ण नगरियो मे पद्मावती नगरी की गणना है। इसके विषय मे इतिहास मे यह दिया गया है—

"भविष्य पुराण के एक प्रसग से ज्ञात होता है कि मध्य देश मे पद्मावती नाम का भी एक जनपद था। इसका केन्द्र इतिहास प्रख्यात पद्मावती नगर (वर्तमान पवाया) होगा और उसमे आज के ग्वालियर, मुरैना जिलो के कुछ भाग तथा शिवपुरी जिले का अधिकाश भाग सम्मिलित रहा होगा।"

(मध्य भारत का इतिहास पृष्ट ३४)

पद्मावती नगरी पूर्व समय मे खूव समृद्ध थी। उसकी इस समृद्धि का उल्लेख खजुराहो के वि० स० १०५२ के शिलालेख मे पाया जाता है, जिसमे यह वतलाया गया है कि ये नगरी ऊँचे-ऊँचे गगन चुम्वी भवनो एव मकानो से सुशोभित थी, जिसके राजमार्गो मे वडे-वडे तेज तुरग दौडते थे और जिसकी चमकती हुई स्वच्छ एव शुभ्र दीवारें आकाश से वातें करती थी। जैसा कि उक्त लेख के निम्न पद्यो से प्रकट है —

"सोधु त्तग पतग लघन-पथ प्रोक्तुग माला कुला ।
शुभ्रा भ्रकप पाण्डुरोच्च शिखर प्राकार चित्रा (म्ब) रा ।।
प्रालेया चचल श्रृग सन्नि (नि) यशुभ प्रासादसद्मावती ।
भव्यापूर्वमभूदपूर्व रचना या नाम पद्मावती ।।
त्वगत्तुगतुरग मोदगमक्षु (खु) रक्षोदाद्रज प्रो (द्ध) त, ।
यस्या जीर्न (ण) कठोर वमु (स्त्र) मकरो कूर्मोदराभ नम ।।
मक्तानेक करालकुम्भि करट प्रोत्कृष्ट वृष्टया (दभु) व ।
त कर्दम मुद्रिया क्षिति तल ता ब्रू (ब्रु) त किं सस्तुम ।।
(इपीग्राफिका इण्डिया पृ० सख्या १४६ ।।)

इस समुल्लेख पर से पाठक महज ही मे पद्मावती नगरी की विशालता का अनुमान कर सकते हैं ।

नवनागो का राज्य

"इस नगरी को नाग राजाओ की राजधानी बनने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था और पद्मावती कातिपुरी तथा मथुरा मे ६ नाग राजाओ के राज्य करने का उल्लेख भी मिलता है । "नव नागा पद्मावत्या कान्तिपुर्या मथुरायाम"
(विश्णुपुराण अश ४ अ० २४)

इससे स्पष्ट है कि इन सब नागाओ ने पद्मावती, कान्तिपुरी तथा मथुरा मे राजधानिया बनाकर राज्य किया । इस उल्लेख मे नवनागो के राज्य का विकास क्रम भी प्राप्त होता है । पद्मावती मे उनके द्वारा सबसे पहले इस राज्य की स्थापना हुई । इसके पश्चात वे उत्तर मे कान्तिपुरी की ओर बढे और उसे अपनी राजधानी बनाकर उन्होने मथुरा के कुषाणो से सघर्ष किया इसमें सफल होने के पश्चात ही वे मथुरा मे राजधानी बना सके होगे ।

पद्मावती के नवनाग

"पद्मावती नगरी के नाग राजाओ के सिक्के भी कितने ही स्थानो में मिले हैं । जैसा कि इतिहास में दिये हुए नीचे उद्धारण से स्पष्ट हो जायगा । "नव-नागो के सिक्के अधिकाश ये विदिशा पद्मावती कान्तिपुरी (कुतुवार) और मथुरा में मिले है । ये सिक्के भी स्पष्टतया दो वर्ग के हैं (१) एक तो उन

नागो के हैं, जो ज्येष्ट नागवंश के थे, दूसरे वे, जो नागों के पश्चात् नवनाग अर्थात् नये नागो के रूप मे आये थे। यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि मथुरा, कान्तिपुरी (कुतवार) पद्मावती और विदिशा उस महापथ पर अवस्थित थे, जो उस काल मे देशी और विदेशी व्यापार का प्रधान मार्ग था। जो इन मार्गों के सिक्के यदि इस राज्य मार्ग पर स्थित तत्कालीन सभी व्यापारिक नगरियो मे मिले, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। फिर भी इन नये नागो के सिक्के विदिशा मे कम मिले हैं, वे पद्मावती कान्तिपुरी और मथुरा मे ही अधिक प्राप्त हुए हैं।"

(महाभारत का इतिहास पृष्ट १८७)

पद्मावती के प्राचीन सिक्के

पद्मावती मे अब तक प्राप्त प्राप्त सिक्को के विषय मे जो ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त हुआ है वह निम्न है। "पद्मावती मे अब तक नागो की लगभग लाखो ही मुद्राएँ प्राप्त हो चुकी होगी। प्रतिवर्ष वर्षा मे खेतो मे वे ऊपर, आ जाती हैं। गाँवो के ग्वाले उन्हें बीन लेते हैं और यह क्रम न जाने कितने वर्षों मे चल रहा है। व्यवस्थित उत्खनन अब तक पद्मावती मे कभी नहीं हुआ। मूल पद्मावती सिन्धु और पारा के सगम पर बनी हुई थी। अभी तक इस क्षेत्र के बाहर एक टीले को खोदा गया है, उसमे भी जो सामग्री प्राप्त हुई है, वह इतिहास पर अद्भुद प्रभाव डालती है। इसमें हमे कोई सन्देह नहीं है कि यदि व्यवस्थित उत्खनन किया जाय, तो पद्मावती के नाग वंश का विस्तृत इतिहास सामने आ सकता है। नागो के सोने और चाँदी के सिक्के यदि ग्वालो को मिलते भी होगे तो 'दफीने' कानून के डर से वे उन्हे बाहर बेचते भी नहीं होगे। ये सिक्के केवल व्यवस्थित उत्खनन से ही प्राप्त हो सकते हैं और सम्भवत यह है कि उपयोगी शिलालेख भी प्राप्त हो जाय। परन्तु इन सबके लिए अभी किसी सुअवसर के लिये ठहरना ही पड़ेगा।

मुरेना जिला के कुतवार नामक स्थान से १८६५६ नागो के सिक्को की ढेरी प्राप्त हुई थी और उतनी लगभग उतनी ही मुद्राए भासी मे प्राप्त हुई

थी। कुतवार को हमने पुराणो मे उल्लिखित "कान्तिपुरी" नामक नागो की राजधानी से अभिन्न माना है।"

(महाभारत का इतिहास प्रथम खण्ड, पृष्ठ ४६६, ४७०)

वर्तमान पद्मावती नगरी

ग्यारहरवी शताब्दी मे रचित "सरस्वती कठा-भरण" मे भी पद्मावती का कथन पाया जाता है, परन्तु खेद है कि आज यह नगरी वहाँ अपने उस रूप मे नही है किन्तु ग्वालियर राज्य मे उसके स्थान पर 'पवाया' नामक एक छोटा सा गाँव बसा हूआ है, जो कि देहली से बम्बई जाने वाली रेलवे लाइन पर 'देवरा' नामक स्टेशन से कुछ ही दूर पर स्थित है, (प्रस्तुत पवाया पद्मावती नगरी है)। यह पद्मावती नगरी ही पद्मावती जाति के विकास का कारण है। इस दृष्टि से वर्तमान 'पवाया' ग्राम पद्मावती पुरवालो के लिए विशेष महत्त्व की वस्तु है। भले ही वहाँ पर आज पद्मावती पुरवालो का निवास न हो, किन्तु उसके आसपास तो आज भी वहाँ पद्मावती पुरवालो का निवास पाया जाता है।

पद्मावती पुरवाल समाज

इस ग्रंथ के रचयिता श्री छत्रपति ने इस ग्रंथ मे प्राचीन पद्मावती पुरवाल समाज के विषय मे निम्न पंक्तिया लिखी है —

"अब श्री पद्मनगर मे जाय, बसैं सोम वंशी बहुलाय।
सिंह धार दो गोत मनोग, सुभ आचारी उपमा जोग ॥
तिण मे चौदह सत ग्रहसार, कछु इक कारण पाय उदार।
छत्री वृत्ति करी अपहार, वनिक वृत्ति आदरी सार ॥
करन लगे वानिज बहुभाय, नीति प्रीति सो नव उमगाय।
नव धन कन कंचन करि भरे, कलाविवेक सुगुन आगरे ॥
पूजें णित श्री जिनवर देव, करें दिगम्बर गुरु की सेव।
पूर्वापर विरोध करि हीन, श्री जिन सासन आयस लीन ॥
सप्त तत्व सरधा करि पूर, स्व पर भेद गहि भ्रमतम चूर।
सप्त विसन तें रहत सदीव, पंच उदबर तजैं सजीव ॥
मद्य मांस मधु तीनि मकार, जावत जीव किये अपहार।
अन्न चुनन जलगालनमांहि, चातुर उद्यम वान निरवाहि ॥
पर उपगारी परमदयाल, निस अहार वरजित गुनमाल।
झूठ अदत्त कुशील न गहें, परिगह सख्या गहि सुख लहैं ॥
दिसा देस की सख्या धरें, बिना प्रयोजन पाप न करें।
सामायिक प्रोषधविधि ठान, गहें भोग उपभोग प्रमान ॥
द्वारा पेषन विधि विस्तरैं, अतिथि असन दै निज अघ हरें।
करें मरन वर-साधि-समाधि, आराधना सार आराधि ॥
कै श्री पंच परम पदध्याय, धरम ध्यान जुत तजि निजकाय।
उपजें जाय सुरग सुरइन्द्र, तहा भूरि भुगतें आनन्द ॥"

भावार्थ—पद्मनगर मे पद्मावती पुरवालो के बहुत से जन थे, इनका

सोमवश था, सिंह और घार इनके दो गोत्र थे। ये सभी उत्तम आचरण वाले थे। इनकी ग्रह सख्या १४०० थी। दान त्याग आदि गुणो से ये उदार थे। निर्वलो की रक्षा करने तथा सूरवीर होने से इनकी पूर्व मे क्षत्रियवृत्ति थी, वाद को द्रव्य क्षेत्र काल भाव से उन्होने वाणिक-वृत्ति को अपनाया। विविध व्या-पारो को नीति, उमग तथा श्रम से करने के कारण ये धन धान्य और स्वर्ण भडारो से परिपूर्ण हो गये। साथ ही साथ अनेक कलाओ और सुगुणो को भी इन्होने अपनाया। नित्यप्रति जिन पूजा और गुरुसेवा के साथ साथ जिन आगमा-नुकूल जीवन यापन करते थे। सर्वज्ञ भाषित सप्त तत्वो के स्वरूप मे अटूट श्रद्धा तथा शरीर और आत्मा मे भेद-विज्ञान सहित जीवन-वृत्ति इनके दो उल्लेखनीय गुण थे। सप्त व्यसनो की छाया से अति दूर और अष्टमूल गुण के धारी थे। परोपकार, जीव, दया और रात्रि भोजन त्याग इनके तीन विशेष गुण थे। पच उदम्बर फलो और मद्य-मास व मधु-सेवन की तो बात क्या, इनको हाथ से छूने तक मे सकोच करते थे। पचाणुव्रत पालन मे इन्हे सुखानुभव था। अनाजो के शोधन और जल छालन क्रिया को वडे उद्यम से सम्पादन करते थे। ग्रहस्थ के पचाणुत, नीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत और अन्त मे समाधिमरण धारण कर सुगति को प्राप्त करते थे।

कविवर की दृष्टि मे पद्मावती पुरवाल-वधु धार्मिक भावनाओ से ओत प्रोत थे। "धन धर्मात् तत सुख" (धर्मसेवन से धन और धन से सासारिक सुख मिलता है) इस नीति के अनुसार वे धर्मसेवी होने के कारण सर्वथा सम्पन्न और सुखी थे।

वर्तमान समय में भी पद्मावती पुरवाल वधुओ की धर्मश्रद्धा अनुपम और अटूट है। जिन धर्म श्रद्धा मानो उनकी वह बहुमूल्य पैतृक निधि है। जिस पर उन्हे नाज और और मान है। वे इसके आगे धन-धर्ती ऐश्वर्य और सासारिक सुखो को भी तुच्छ समझते हैं। उन्हे दृढ विश्वास है कि सर्वज्ञ देव ने जिस जैन धर्म का पथ प्रदर्शन किया है, उससे ही आत्मकल्याण हो सकता है। ,वे धर्म श्रद्धा के सुमेरु पर स्थित है। इनकी वर्तमान धर्म प्रवृत्ति भी कुछ कम नही है। चाहे वे गात्रो में वजी करते हैं, घी झुखा कर या अनाज लादकर लाते हैं।

प्रात से दोपहर के वाद भी लौटकर आयेंगे, पर जव तक मदिर मे देवदर्शन, पूजन या अर्घ नही चढा लेंगे, खाने की तो वात क्या पानी भी नही पियेंगे। शहरो मे दुकानदारी यदि करते हैं, तो प्रात काल जिन पूजा करके ही अपने व्यापार मे लगेगे। रात्रि भोजन त्याग, छना जल सेवन और प्रात प्रतिदिन जिन दर्शन, ये तीन पद्मावती पुरवालो के जातीय कडे नियम हैं। ४-५ वर्ष का वच्चा चाहे कैसा ही भूखा हो, पर उसकी माता रात को अन्न खाने को नही देगी। जहा पैरो से चलने लगा, उसे नियमित रूप मे देवदर्शन को प्रात जाना ही होगा, जव तक दर्शन नही कर लेगा, उसे भोजन (नाश्ता) नही दिया जायेगा। खान-पान की शुद्धि, वाजार की वनी अशुद्ध वस्तु के खाने का त्याग, अभक्ष्यो का अभक्षण, कन्दो का त्याग आदि कुछ ऐसी वातें हैं जो इनमें अव भी अधिक रूप मे पाई जाती हैं।

पद्मावती जाति अधिकतर गावो मे वसी है, जहा पर वडे व्यापार न होकर छोटी-छोटी दुकानो द्वारा वे अपना निर्वाह कर सतोप से रहते हैं। इनमे आज भी सैकडो वृद्ध व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्होने जीवन पर्यन्त रात मे जल तक का त्याग किया हुआ है। मरना स्वीकार है, किन्तु डाक्टरी अशुद्ध और अप्रासुक दवा की एक वूंद भी मुह मे नही जाने देंगे। इन पक्तियो के लेखक की मात करीव ५ वर्ष पूर्व ८५ वर्ष की आयु मे मरी है। इन्होंने १४ वर्ष की आयु मे ही रात्रि जल त्यागा और डाक्टरी औषधि तक का त्याग किया हुआ था। इन नियमो को उन्होने यावज्जीवन वडी-वडी सकटावस्थाओ मे भी पाला। हर चतुर्दशी और अष्टमी को उपवास या एकासन करना, सूत्र जी भक्तामर का पाठ सुनें विना भोजन न करना उनकी कुछ आदत थी। वे इन त्याग और व्रतो का मानव-जीवन की सच्ची कमाई मानती थी।

इस समाज मे ऐसे व्यक्तियो की सख्या अभी भी पर्याप्त है।

जैनो की कुछ अन्य जातियो के समान इस जाति पर लक्ष्मी जी की कृपा नही है, निर्धनता रहने से आज इस समय वे दुनिया की दृष्टि मे वडे कहे जानेवाले कार्यों को नही कर सकते हैं, फिर भी धनवाहुल्य के होनेपर इस युग मे जो अनेक अवगुण, कदाचार और कुसस्कार पैदा हो जाते हैं उनसे वे अभी भी अछूते हैं।

पावन चरण-चिन्ह

इस ग्रंथ के नायक कलाकार कवि श्रेष्ठ मुनिवर ब्रह्मगुलाल जी की
ऐतिहासिक समाधि व चरण-चिन्ह श्री पन्नालाल दिगम्बर
जैन कालेज फिरोजाबाद के जैन मंदिर के सम्मुख है।

स्थान-परिचय

टापो—प्राचीन काल मे यह गाव मध्यदेश रपरी चन्द्रवार के समीप था। चन्द्रवार के अवशेष चिन्ह अभी तक उपलब्ध हैं। फिरोजाबाद (जिला आगरा) के समीप है। इस टापो के विषय मे स्वर्गीय कवि ब्रह्मगुलालजी ने अपनी प्रसिद्ध साहित्य-रचना "कृपण जगावन चरित्र" के अन्त मे लिखा है —

"मध्यदेश रपरी चन्द्रवार, ता समीप टापो सुखसार।
कीरति सिन्धु धरणी धर रहे, तेग त्याग को समस्यरि करे॥"
"कृपण जगावन चरित्र" २६४

इससे मालूम होता है कि टापो कीर्ति सिन्धु राजा के आधीन था। फिरोजाबाद से कुछ फर्लांगो की दूरी पर एक स्थान है, जहा पर एक मठिया सी है जिसमे मुनि ब्रह्मगुलालजी की चरण पादुका हैं। यह मठिया एक इमली के नीचे है। फिरोजाबाद के लोगो का कहना है कि जनश्रुति के अनुसार यहाँ पर मुनिवर ब्रह्मगुलाल जी ने घोर तप किया था। इस मठिया के समीप ही "टापो" कस्बा था। इस स्थान पर बहुत समय से प्रति तीसरे वर्ष करीब ६ दिन के लिये एक विशाल जैन मेला लगता है, जिसमे आस पास के ३०-४० हजार जैनी सम्मिलित होते हैं। अब इसी स्थान पर पन्नालाल दिगम्बर जैन कालेज नाम की प्रसिद्ध शिक्षण सस्था भी है, इसमे हजारो छात्र अध्ययन करते हैं।

जैन समाज मे न्याय दिवाकर विद्वद-शिरोमणि स्वर्गीय पडित पन्नालाल जी बडे प्रतिभाशाली पडित हो गये हैं। पाठको ने कविवर छत्रपति के जीवन वृतांत मे पढा है कि खुर्जा के रानी वाले सेठ जी ने ५ गावो के मुकद्दमे के जीतने के लिये श्री छत्रपति से अनुष्ठान कराया था, इस अनुष्ठान करवाने की प्रेरणा प० झगधरमल जी ने दी थी श्री प० झगधरमल जी के ही सुयोग्य पुत्र न्यायदिवाकर पडित पन्नलाल जी थे। सहारनपुर के सेठ जम्बूप्रसाद जी पडित जी के बडे भक्त थे। पडितजी उनके पास सहारनपुर मे बहुत समय तक रहे

थे। श्री न्याय-दिवाकर जी की जन्मभूमि (जारकी जिला आगरा) थी। करीब पैंतीस वर्ष पूर्व स्वर्गीय सेठ जम्बूप्रसादजी के सुपुत्र श्रीमान प्रद्युम्न-कुमार जी के हाथो से स्वर्गीय पडित जी की पावन-स्मृति मे पन्नालाल दिगम्बर जैन विद्यालय की स्थापना जारकी मे हुई थी। कुछ वर्षो बाद यह विद्यालय फीरोजाबाद आ गया और हाई स्कूल हुआ, बाद को कालेज रूप मे परिवर्तित हो गया है —

टापो और जारकी मे पुराना सम्बन्ध है। इन दोनो मे फासला भी करीब ८-१० मील का है। टापो मे मुनिवर ब्रह्मगुलाल जी का जन्म, शिक्षा, बाल्य लीलाए, गार्हस्थ्य जीवन और दीक्षा भी होती है। पर इनका रहना जारकी मे भी अच्छा होता है। क्योकि मुनिवर ब्रह्मगुलाल जी के परम सखा श्री मथुरा मल्ल जी (भाई भामडल जी के सुपुत्र) जारकी के थे। मुनिवर ब्रह्मगुलाल जी ने अपने "कृपण जगावन चरित्र" की रचना भी जारकी मे ही सवत १६७१ मे पूर्ण की थी, जैसा कि मुनिवर ब्रह्मगुलालजी ने अपने इस ग्रन्थ के अन्त में कहा है —

"ता उपदेश कथा कवि करी, कवित्त चौपाई साचे ढरी।
ब्रह्मगुलाल गुरुनि की छाइ, पुरी भई जारखी माहि ॥" २७९

इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल मे टापो जारकी मे गहरा सम्बन्ध रहा है। जारकी के जैन विद्यालय को 'टाँपो' की भूमि पर जैन कालेज के रूप मे देखकर दोनो स्थानो के प्राचीन ऐतिहासिक व सास्कृतिक सबन्धो की स्मृति ताजी हो जाती है। जारकी मे अब भी पद्मावती पुरवालो की अच्छी जनसख्या के साथ-साथ, दो जैन मन्दिर व अच्छा जैन शास्त्र भडार और अच्छी धर्म परिपाटी है।

ग्रन्थ की सन्दर्भ कथायें

(१) भर्तृहरि की कथा

राजा भर्तृहरि उज्जैन के राजा इन्द्रसेन के पौत्र और चन्द्रसेन के पुत्र थे। इतिहास-प्रसिद्ध महाराजा विक्रमादित्य के सौतेले भाई थे। इनका विवाह सिंहल द्वीप (हिमालय प्रांत) की राजकुमारी अति सुन्दरी शामदेवी से हुआ। पहले यही उज्जैन के राजा थे। राजा भर्तृहरि ने ४२ वर्ष तक (१०१८ से १०६० तक) राज्य किया है, किन्तु अपनी रानी की दुश्चरित्रता को देखकर ये वैरागी बन गये। इनको वैरागी बनने के दो कारण बतलाये जाते हैं एक ब्राह्मण ने घोर तप तपकर अमर-फल प्राप्त किया। इस ब्राह्मण ने इस सुन्दर फल को राजा भर्तृहरि को भेंट किया। यह फल राजा भर्तृहरि को बड़ा अच्छा लगा, उन्होने प्रसन्न करने के लिए अपनी प्यारी रानी को दे दिया और कहा कि इस फल का रसास्वादन करो इससे तुम्हारा यौवन अमर रहेगा। रानी ने इस फल को अपने प्राण-प्रिय जार को दिया। जार ने अपनी प्रेयसी सुन्दरी वेश्या को दे दिया। वेश्या ने सोचा, "मेरा जीवन पाप पूर्ण है। यदि मैं इस फल को स्वयं न खाकर इस नगर के राजा को भेंट कर दूं तो अति उत्तम है।" उसने ऐसा ही किया। राजा भर्तृहरि ने फल को देखकर विचारा कि यह किस प्रकार फिर उनके पास आया? तो उन्हे अपनी रानी की दुश्चरित्रता पर संसार से वैराग हो गया।

दूसरा कारण यह भी बताया जाता है कि एक बार राजा भर्तृहरि जंगल मे शिकार खेलने गये। इन्होने अपने बाण से एक हिरण का शिकार किया। यह हिरण गुरु गोरख नाथ के आश्रम का था। हिरण को मरा हुआ देखकर गोरखनाथ ने कहा—"तुमने इस निरपराध प्राणी का वध कर पाप किया है। तुमको इसके मारने का अधिकार नही था। तुम्हे इसे पुनः जीवित करना होगा।" राजा ने कहा कि जो मर गया, उसे फिर जीवित कोई नही कर सकता।

गोरखनाथ ने कहा कि यह जीवित हो जायेगा, किन्तु तुम्हे ससार-त्याग कर भगवद् भक्ति के मार्ग पर आना होगा। राजा ने इसे मान लिया। योगी गोरखनाथ ने उसे जिला दिया, इस पर राजा भर्तृहरि ने सन्यास ले लिया घोर तप तपकर ये महान् सिद्ध योगी हो गये हैं। योगी भर्तृहरि ने 'शृगार शतक', 'नीतिशतक' और 'वैराग्यशतक' नामक सौ-सौ श्लोको के तीन सस्कृत ग्रन्थ रचे हैं। ऐसा ही एक विज्ञानशतक और है। पहिले तीन ग्रथो फ्रेंच, लेटिन, जर्मन और अग्रेजी आदि भाषाओ में अनुवाद मे भी हो चुका है। व्याकरण के भी आप बडे पडित थे। इनके वाक्यप्रदीय और हरिकारिका सुप्रसिद्ध है। महाभाष्यदीपिका और महाभाष्य त्रिपदी व्याख्या नामक दो-दो ग्रन्थ आपके और बतलाये जाते हैं। कोई-कोई इन्हे योग बल से अमर मानते हैं।

(२) गोपीचन्द्र की कथा

गोपीचन्द्र बगाल के पाल-वश के राजा माणिक्यचन्द्र के पुत्र थे। मयनामती इनकी माता थी। मयनामती उज्जैन के राजा भृतिहर की सगी बहन थी। इससे गोपीचन्द्र जी राजा भृतिहर के भाजे थे। राजा माणिक्यचन्द्र के कोई पुत्र न था, उन्होने योगी गोरखनाथ की सेवा की, इससे इनके सुन्दर पुत्र गोपीचन्द्र का जन्म हुआ। गोपीचन्द्र के मस्तिस्क पर चन्द्रमा का चिन्ह और पैर मे पद्म था। युवावस्था प्राप्त होने पर इनकी १६०० स्त्रिया थी। योगी गोरखनाथ ने राजा की रानी से कहा 'देख, गोपीचन्द्र यदि इसी प्रकार भोग-विलास और सुखो मे लीन रहा, तो शीघ्र ही मर जायेगा, हा यह सन्सार छोड़कर भिक्षावृत्ति करता है और तप तपता है तो अमर रहेगा।" इस पर माता-पिता ने इन्हे सन्यासी बनने की अनुमति दे दी। गोपीचन्द्र की माता ने गोपीचन्द्र से कहा था कि तुम भिक्षावृत्ति के लिए सर्वत्र जा सकते हो, किन्तु सिंहलद्वीप मे अपनी बहन चन्द्रावती के पास मत जाना, क्योकि भिक्षुक भेष मे तुम्हे देखकर वह बहुत ही पीड़ित होगी। युवा सन्यासी सब प्रथम अपने रनवास मे भीख मागने जाते है और अपनी स्त्रियो से कहते है "माता भिक्षा दो" अपने युवा पति को भिक्षुक देखकर सभी रानिया दुखी होकर विलाप करने लगी, किन्तु

दृढ वैरागी गोपीचन्द्रजी के चित्त पर इसका कोई भी असर न हुआ। वे गुरु गोरख-नाथ की परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए। वहुत वर्षो तक भिक्षावृत्ति कर कठोर योग साधना करते रहे। बहुत वर्षो वाद इन्ही के चित्त मे आया कि अपनी सहोदरा चन्द्रावती के यहाँ जाकर उसकी चित्तवृति देखनी चाहिए। सन्यासी गोपीचन्द्र भिक्षुक वनकर रानी चन्द्रावती की ड्योढी पर भिक्षा माँगते हैं। रानी की वादियाँ सन्यासी को भीख लाती हैं, पर सन्यासी ने कहा—"मैं दासियो के हाथ की भीख नही लूंगा मैं तो रानी के हाथ ही भीख ग्रहण से कर सकता हूँ।" वादियो के पूछने पर सन्यासी ने अपना नाम गोपीचन्द्र बतलाया। इन वाँदियो मे से एक वाँदी वह भी थी जो विवाह अवसर पर दहेज मे चन्द्रावती के साथ आई थी। उसे कुछ सदेह हुआ कि ये महाराजा के राजपुत्र गोपीचन्द्र ही न हो। रानी से निवेदन किया कि एक तेज पूर्ण युवा सन्यासी भीख माँगने आया है वह अपना नाम गोपीचन्द्र बतलाता है, वह हमारे हाथ की भीख न लेकर रानी के हाथ की भीख चाहता है। मुझे तो कुछ ऐसा मालूम पडता है कि आपके भाई राजपुत्र गोपीचन्द्र हैं। इन शब्दो को सुनकर रानी को वहुत क्रोध आया उसने कहा "मेरा भाई राजपुत्र है, उसके मस्तक पर चन्द्रमा और पैर मे पद्म है, वह बडा प्रतापशाली पौर भाग्यशाली है वह क्यो भीख मागेगा ?" रानी ने बाहर आकर जब गोपीचन्द्र को भिक्षुक के भेप मे देखा, तो वह अचानक मूर्छित होकर गिर पर्डी और ऐसा मालुम हुआ कि इस वज्राघात से उसके प्राण-पखेरू उड गये। इस स्थिति को देख कर गोपीचन्द्र को पश्चाताप हुआ। वहुत समय तक सोचने के वाद सकट के समय गुरु गोरखनाथ का ध्यान किया। गोरखनाथ ने आकर रानी को जीवित कर दिया। फिर गुरू ने गोपीचन्द्र से कहा—"तुम क्यो मोह जाल मे फसने आये ?" फिर गोपीचन्द्र वहा से एकदम गायब हो गये। सुनते हैं कि इस घटना के वाद चन्द्रावती भी वैरागिनी वन गई और साधना करने में लीन हो गई। कुछ लोगो की जनश्रुति अब भी यह है कि गोपीचन्द्र अमर हैं वह अव भी जीवित हैं और कभी कभी सन्यासी भेप मे भिक्षा माँगने आते हैं।

(३) रेणुका जमदग्नि की कथा

आर्यावर्त मे रहने वाले ऋपियो मे श्रेष्ठ और सुसस्कृत भारत जाति के विश्वामित्र थे। ये ऋग्वेद की मुख्य ऋचाओ के कर्ता भी थे। विश्वामित्र के पिता गाधिन (गाधी) जन्हु कुल के थे। गाधी की पुत्री सरस्वती थी। उस समय भृगुओ के नेता ऋचीक थे, अथर्ववेद पर इनका पूर्ण अधिकार था। प्राय गुरुओ की पदवी भृगुओ को ही प्राप्त होती थी। गाधी ने अपनी पुत्री सरस्वती का विवाह ऋचीक से किया। ऋचीक और सरस्वती के जमदग्नि पुत्र हुए। जिस समय जमदग्नि हुए, उसी समय गाधी के विश्वामित्र भी हुए इन दोनो का पालन पोषण भी साथ साथ हुआ इस भांजे और मामा ने आर्यावर्त के ऊँचे सस्कार प्राप्त किए। ऋग्वेद मे एक ही ऋचा के सयुक्त मत्र-दृष्टा जमदग्नि और विश्वामित्र दोनो थे।

ऋचीक ऋपि के आत्मज जमदग्नि सात्विक वृत्ति के थे। पिता के देव लोक जाने पर करीब बुढापे मे जमदग्नि ने इक्ष्वाकुवश की अति सुन्दर राज-कन्या रेणुका के साथ विवाह किया। किन्तु ये ऋपि बडे बल-शाली और सांस्कृतिक जीवन बिताने वाले थे। रेणुका से पहले इनके चार पुत्र हुए, और फिर पाचवे पुत्र (सबसे छोटे) श्री परशुराम हुए। परशुराम जैसे ज्ञानी और तपस्वी थे वैसे ही प्रतापी सूर थे। वेद पुराणो मे इनको अवतार और भगवान माना गया है। इनके हाथ मे सदैव फरशा, धनुप बाण और तलवार रहती थी।

कविवर छत्रपति ने हल्ल और उसकी सुन्दर स्त्री का जमदग्नि और राज-कन्या रेणुका से उपमा दी है। आयु तथा वश शुद्धि की अपेक्षा से हल्ल और जमदग्नि मे सादृश्य मालूम पडता है। साथ ही साथ दोनो स्त्रियो के यौवन सौन्दर्य, भाव और भावना आदि मे भी समानता है। इसके अतिरिक्त एक विशेप बात यह भी ध्वनित होती है कि जमदग्नि और रेणुका के रज-वीर्य मे परशुराम सरीखे महान् अवतार हुए, वैसे ही हल्ल और उसकी भार्या की कोख से कलाकार साहित्य सेवी ब्रह्मगुलाल का जन्म होता है।

ब्रह्मगुलाल चरित

——:)००(——

॥ दोहा ॥

*करम घातिया प्रलय करि, उदय बोध रवि पाय ।
किये प्रकाशित गेय[1] सब, नमो नमो तसु पाइ[2] ॥१॥
स्याद्वाद लक्षन धरे, नमो सदा जिन बैन ।
जाके अवगाहन थकी, लहे सहज जिय चैन ॥२॥
विषय कषाय विकार तजि, साम्य सुधा करि पान ।
लीन रहे निज ध्यान मै, नमो सुगुरु पहिचानि ॥३॥
वस्तु स्वभाविक धर्मको, प्रणमि जोरि जुगपान ।
कछु इक वृह्मगुलाल को, कहूँ चरित्र बषान ॥४॥

॥ चौपाई ॥

मध्यलोक मधि भाग मझार । सोहत जबूद्वीप उदार ॥
ता मधि मेरु सुदर्शनसार । ताको दक्षिण दिशा विचारि ॥५॥
भरत माँहि सुभ आरज[3] खेत । मध्य देस तामहि[4] छविदेत ॥
सुरसरि[5] की दक्षिण दिस जोय । कालिदी[6] के उत्तर सुहोय ॥६॥

---

* 'घाति करम घन प्रलय करि' ऐसा पाठ सेठ के कूचा की प्रति मे है । इसका अर्थ है ज्ञानावरण, दर्शनावर्ण मोहनीय और वेदनीय इन चार घातियाँ रूपी मेघपटलो को विनाश कर ।

१. गेय=ज्ञेय, २ पाइ=पैर, चरण, ३ आरज खेत=आर्य क्षेत्र, ४. तामधि=ऐसा भीपाठ है, ५ सुरमरि=गगा, ६ कालिन्दी=काली नदी, ।

सूर[१] देश के निकट निहार। टापो नाम वसै पुरसार ॥
वन उपवन करि सोभ विसेस। षट्रितु तहां करे परवेस ॥७॥
फूलै फलै वनस्पति काय। सुरभि[२] रही दस ऊँदिस छाह ॥
भमर[३] समूह करै गुजार। रमे पेचर[४] धरि मन मे प्यार ॥८॥
कोयल करे मधुर आलाप। पथी[५] वैठि गमावै ताप ॥
रमे नायका नायक साथ। गहे परस्पर हित सो हाथ ॥९॥
हरित[६] त्रिना वहु सोभा[७] धरे। गोमहिषी चरि आनन्द करे ॥
तन सपप्ट[*] स्तन[८] पय धरै। ग्वाल[९] वाल सवके मन हरै ॥१०॥
गा मे ग्वालिनि गीत मनोग[१०]। चकित[११] होइ सुनि पथी लोग ॥
करे ग्वाल वहु भाति किलोल[१२]। मधुरे सुरनि उचारे वोल ॥११॥
वान पेन वहु फलन समेत। लिये नमनता[१३] अति छवि देत ॥
देपि देपि कृपिकर मन माहि। विगसै[१४] अधिक न अंग समाहि ॥१२॥
भरी वापिका[१५] निरमल तोय। पिले[१६] कज लपि आनद होय ॥
मधु कर रमे करे धुनि इष्ट। सूघे सुरभ भषे रस मिष्ट ॥१३॥
वनै कूप सर[१७] नोर निमान। लसै तडाग[१८] सहित सोपान[१९] ॥
सारस आदि जीव तिन माहिं। करे परस्पर केलि[२०] अघाहिं ॥१४॥
यो पुर वाहिर सोभ[२१] अपार। कहत न आवे पारावार ॥

---

१. जमुना के किनारे से मथुरा, आगरा के वीच, २. सुरभि=सौरभ सुगधि, ३ भमर=भ्रमर, ४. पेचर=खेचर, विद्यावर (आकाश में उडने वाले), ५. पथी=पथिक, राहगीर। ६ हरिततृण=हरियाली, ७. शोभा, *सुपुष्ट, ८ थन, ९. वडे छोटे, १० मनोज्ञ, ११ चकित=आश्चर्य में, १२ किल्लोल=आनन्द, १३ नम्रता, १४ विकसित=खुशी होना, १५ वावणी, १६ खिले, १७ सर=कच्चा तालाव, १८ तडाग=तालाव, १९ सोपान=सीढियो सहित, २० केलि=क्रीडा, २१. शोभ।

पर कोटा पुर के चहुँ ओर । थकित होइ लषि पर दल जोर ॥१५॥
वहै [1]पातिका गहर[2] गभीर । पुरहि निकरि छायी तिस नीर ॥
चारौ दिस दरवाजे चार । दिढ[3] आगल[4] जुत लगे किवार[5] ॥१६॥
वीथि[6] वीच दुहूँधा गेह[7] । जिन देखे मन बढे सनेह[8] ॥
ऊचे अधिक वहुत खन[9] धरै । सहत अटारी मन को हरै ॥१७॥
चित्रित चित्र द्वार तिन तनै । विविधि भाति की सोभा सनै ॥
वसै नारि-नर तिनके माहि । रूप सुलक्षिण वत बनाहि ॥१८॥
सब प्रवीन सब कला निधान । भाग वली सब सपत्ति वान ॥
स्त्री पुरुष सदा इक चित्त । धरम करम [10]विधि वरतै नित्त ॥१९॥
कलह अदेमक[11] भाव न लेस[12] । सुलह साथ वरतै मन वेस ॥
दुराचार को नाम न जहा । वर[13] आचार सहत सब तहाँ ॥२०॥
वनौ वजार सार[14] धनपूर । करे बनिज[15] बानिज[16] जन भूर ॥
देस देस के वाणिक आइ । [17]क्रय-विक्रय [18]करि करि थल जाइ ॥२१॥
मध्य देस की वस्तु अनेक । अन्य देस मे जाय सुटेक ॥
बहु देसन की उपजी बस्तु । बिके आइ इस थान प्रसस्त[19] ॥२२॥
देत लेत नहि सका धरै । बचन विलास थकी मन हरै ॥
और कहा वरनन अब करौ । बरनन करत सिथलता[20] धरौ ॥२३॥
न्याय निपुन नृप भुजै राज । जाके भुज बल घन पर[21]काज ॥

---

१ खातिका = खाई, २. गहरी, ३ दृढ, ४ अर्गल, ५ किवाड = द्वार, ६ वीथि = गली, ७ गेह = घर, ८ स्नेह, ९ खन = मजिलें, १० विधि = शास्त्र के अनुसार, ११ आदेशक, १२ लेश = थोडा सा, १३ श्रेष्ठ, १४. सार = उत्कृष्ट, १५ वाणिज्य, १६ वानिक = बनिक, १७ क्रय = खराद, १८ विक्रय = विकवाली, १९ प्रशस्त = खूब, २० शिथिलता = थकावट, २१. परकार्य = दूसरे की भलाई ।

जाके राज न चोर लवार[1] । नही फासी गर ठग वटमार[2] ।।२४।।
निज पर चक्रतनी भय नाहिं । सव विधि सुखी प्रजा निवसाहिं ।।
सव प्रकार नृप रक्षा करैं । काहू भाति न भय सचरैं ।।२५।।

।। दोहा ।।

इस प्रकार इस नगर मे, वसैं सुखित सव लोग ।।
निज निज पूरव कर्म्म फल, भुजैं भोग मनोग[3] ।।२६।।

इति श्री वैराग्योत्पत्ति कारण भवसवधनिवारन ब्रह्मगुलाल चरित्रे मध्य देश पुरसोभा वरनन रूपप्रथम प्रभाव

१ लवार=गप्पी, झूठा, २ वटमार=मार्ग में लूटने वाले, ३ मनोज्ञ=मनवांछित ।

॥ दोहा ॥

जिन[1] जुगादि के चरण जुग, प्रणमि सुवारबार ।
कछु तिन थापित बस की, उत्पति कहूँ विचार ॥ १ ॥
ही इस आरज षेत मे, भोग भूमि की रीति ।
पूरण होते सेस[2] मे, बरती कुल कर नोति ॥ २ ॥
अतम कुल कर नाभि नृप, मरुदेवी तिय[3] जास ।
पूरब भव इस्मरणजुत[4], है जग कियो प्रकास ॥ ३ ॥
तिनके राज समे भये, कल्पवृक्ष सब नाश ।
भूप[5] वेदना करि लह्यो सकल प्रजा दुषवास ॥ ४ ॥
तव सव मिलिकै नृपति सो, आनि करी अरदास[6] ।
कल्प वृक्ष के नास तैं, भूष दिखावत त्रास ॥ ५ ॥

॥ चौपाई ॥

दुषी देषि करुना रस भरे । सार उपाय वचण[7] उच्चरे ॥
इक्षु[8] सुरस काढण विधि कही । पीवो रस जीवन विधि यही ॥ ६ ॥
यह सुनि षुसी[9] होइ घर गये । नृप भाषित सब आनद लए ॥
आगे और सुनौ विरेतत[10] । आदि[11] पुरुष उतपति[12] जिमि भति॥७॥

---

१ जिन जुगादि = आदोश्वर भगवान, २. सेस = शेष, ३ तिय = त्रिया, ४ इस्मरणजुत = स्मरण—युत, ५ भूष वेदना = भूख वेदना, ६ अरदास = प्रार्थना, ७ वचण = बचन ८ इक्षुसुरस = ईख से रस निकालने की तरकीब । ९ षुसी = खुशी, १० विरतत = वृतात, ११ आदीश्वर = जैनियो के प्रथम तीर्थंकर, भगवान ऋषभदेव, १२ उतपति = उत्पत्ति ।

॥ दोहा ॥

चौरासी[1] लप पूर्व अर, वर्ष तीनि वसु मास ।
पक्ष दिवस वाकी जवै, त्रतिय काल मे रास ॥ ८ ॥

॥ छद चालि ॥

तामे पट्मास अगारा । कपे सुर[2] आसन[3] सारा ।
जानी हरि[4] अवधि[5] महा मे । जिन[6] उतपति चलन लहा मे ॥ ९ ॥
आयस[7] कुवेर[8] सिरकीना । तिन समझि भली विधि लीना ।
ले रतन[9] सुवर्ण अपारा । अवधापुर[10] आय समारा ॥ १० ॥
दिन दिन मे त्रय त्रय वारा । वरसाए वहुमणि धारा ।
इमि वीते जव पट् मासा । जिन जननी गर्भ निवासा ॥ ११ ॥
लपि सुपण[11] मात विहसाई । फल सुनत न अग समाई ।
हरि गर्भ महोत्सव[12] आये । करि[13] णेग सुथान[14] सिधाए ॥ १२ ॥
सुरदेविणि[15] सेवा माजी । जिन मात करी वहुराजी ॥
जव पूरण मास ठये जी । जिन सूरज[16] उदय भयेजी ॥ १३ ॥
हरि सुर समूह जुरि आए । जिन[17] ले गिरि[18] मेरु सिधाए ।
जणमोत्सव[19] की विधि सारी । करि गये सुथान मझारी ॥ १४ ॥

---

१ तीसरे काल में जव ८४ लाख पूर्व (एक बहुत वडी राशि) ३ वर्ष ८ माह और १५ दिन का काल वाकी रह गया । २ सुर=इन्द्र, ३ सिंहासन, ४. इन्द्र, ५ अवधिज्ञान, ६ तीर्थंकर भगवान, ७ आदेश, ८ इद्र का खजाची, ९. वढिया रगो के रत्न, १० अयोध्या, ११ स्वप्न (तीर्थंकर की माता को १६ शुभ स्वप्न होते हैं), १२ गर्भ कल्याणक, १३ नेग, १४ स्वर्गपुरी, १५ देवागनाओं, १६ तीर्थंकर रूपी सूर्य्य, १७ जिन भगवान (वालक के रूप में), १८ सुमेरु, १९ जन्मोत्सव ।

जिन दिन दिन बढत भये जू । फुनि जोवन[1] वत ठए जू ॥
करि व्याह राज पद पायो । पुरजरण[2] परिजन[3] मन भायौ ॥ १५ ॥
फुनि प्रजा ईष[4] रस पीये । नहि छके[5] धरे दुष[6] जीये ॥
मिलि नाभि नृपति पै आये । करि प्ररणषति[7] निज दुष गाए ॥ १६ ॥
सुनि लेय साथ जिन पासा । तिन आइ करी अरदासा ॥
इरण[8] क्षुधाहरन विधि कहिये । लखि दीन अनाथ निवहिये[9] ॥१७॥
प्रभ[10] अन्न[11] पाक विधि सारी । कहि प्रजा वेदना टारी ॥
फुनि हरि[12] सो एम उचारी । करि कर्म भूमि[13] विधि सारी ॥१८॥

॥ चौपाई ॥

तव हरि देस थापना[14] करी । नगर ग्राम ग्रह सोभा भरी ॥
छत्री बनिवर[15] सूद्र समेत । तीनि वर्ण थापे सुषहेत ॥ १९ ॥
अरजिरण थापे कासो देस । नाथ बस सिगार रणरेश[16] ॥
नाम अकपन जग विख्यात । करी स्वयवर विधि जिन ख्यात ॥२०॥
निज इष्वाकवस[17] निरमयो[18] । बस सिरोमनि सोभा भयो ॥
कुरु जागल[19] वर देस मझार । थापे सोम श्रेयास कुमार ॥२१॥
सोमवस भूपरण निरमये । दारण[20] तीर्थ के कारण भये ॥
बस वेलि तिन वधीन हो । ज्यो दीपक तै दीपक जोय[21] ॥२२

---

१ यौवन वना, २ पुरनिवासी, ३ कुटुबिजन, ४ ईख, ५ तृप्त ६ दुख, ७ प्रणाम करि, ८ इन्हे, ९ निर्वाहिये, १०. प्रभु=आदिनाथ भगवान, ११ भोजन पकाने की विधि, १२ ऋषमदेव, १३. कर्म भूमि विधि=अपने अपने कार्यों को कर उदर पूर्ति करने की विधि, १४ स्थापना, १५. वैश्य, १६ नरेश, १७ इक्ष्वांकु वश, १८ निर्माण, १९. कुरुक्षेत्र, हस्तनापुर का समीपी क्षेत्र २०. दान, २१ दीपक लोय ऐसा भी पाठ है ।

भले भले पुरिपोत्तम[1] भये । राज भोगि तप गहि सिव[2] गये ॥
काम देव चक्री तीर्थेस । णारायण[3] वलभद्र णरेश[4] ॥२३॥
महाराज राजा, अवराज[5] । भये भूरि सारक[6] परकाज[7] ॥
तेल वूद ज्यौ तोय[8] मझार । फैलि गयौ भूपर सब ठार ॥
देस देस पुर नगर मझार । वसे सोम वसी नर नारि ॥
वस प्रभाव कोण विध कहे । सुर[9] गुर कहत पार नहि लहे ॥२५॥

॥ दोहा ॥

ऐसे इस ससि[10] वस की, उतपति कही प्रसस्त[11] ॥
पूर्वोपार्जित कर्म्म फल । भोगत[12] लसे समस्त ॥२६॥

इति श्री वैराग्योत्पत्ति भव सवध निवारण श्री ब्रह्मगुलाल चरित्र-
मध्ये कर्मभूमि उत्पत्ति व सस्थान विधि वरनन रूप
द्वितीय प्रभाव ॥

---

१ पुरुपोत्तम, २ सिव-मोक्ष, ३ नारायण, ४. नरेश, ५ अविराज, ६. सारक-उत्तम कार्य सम्पादक, ७ परकार्य्य, ८ तोय-जल, ६ सुर गुरु-ब्रहस्पति, १०. शसि-वश, ११ प्रशस्त, १२ "भोगत नर्में" ऐसा भी पाठ दूमरी प्रति में है ।

॥ दोहा ॥

श्री अजितेस[1] जिनेस[2] के, पूजत चरण सुरेस ॥
मै अब तिनकौ नमन करि, बरनौ चरित असेस[3] ॥१॥

॥ चौपाई ॥

अब श्री पद्म नगर मे जोय, बसै सोम वसी बहु लोय ॥
सिंघ घार दो गोत[4] मनोग[5], सुभ आचारी उपमा जोग ॥२॥
तिण मे चौदहसत[7] ग्रहसार, कछु इक कारण पाय उदार ॥
छत्री[8] वृत्तिकरी अपहार, बानिक वृत्ति आदरी सार ॥३॥
करन लगे बानिज[9] बहु भाय, नीति प्रीति सो सब उमगाय ॥
सब धन कन[10] कचन करि भरे, कला[11] विवेक सुगुन आगरे ॥४॥
पूजे णित[12] श्री जिन वर देव, करे दिगवर गुर[13] की सेव ॥
पूर्वापर विरोध करि हीन, श्री जिन सासन आयस[14] लीन ॥५॥
सप्ततत्त्व सरधा[15] करिपूर, सब[16] पर भेद गहि[17] भ्रम तम चूर ॥
सप्त[18] विसन ते रहत सदीव, पच उदवर[19] तजे सजीव ॥६॥

---

१. श्री अजितनाथ (जैनियो के दूसरे तीर्थंकर), २ जिनेन्द्र भगवान, ३ अशेष-सपूर्ण, ४ गोत्र, ५ मनोज्ञ, ६. शुभ, ७ १४००, (८) क्षत्रिय वृत्ति, ९. वाणिज्य-व्यापार, १० कन-अनाज, ११ 'कलाविसेस' ऐसा भी पाठ दूसरी प्रति में है। १२ निन, १३ गुरु, १४ आज्ञा, १५ श्रद्धा, १६ आत्मा और पुद्गल के भेद, १७ "स्वपरभेदकरि" ऐसा भी भी दूसरी प्रति मे पाठ है, १८ व्यसन (जुआ, चोरी, मास, शराब, वेंश्यासेवन, परस्त्री रमण और शिकार खेलना—ये सात व्यसन हैं), १९ उदवर फल (बढ, पीपर, गूलर, ऊमर ये पाच सजीव फल हैं)।

मद्यमांस मधु तीनि मकार, जावत जीव किये अपहार[१] ॥
अन्नचुनन[२] जलगालन[३] मांहि, चातुर उद्यमवांन निरघाहि ॥७॥
पर उपगारी परम दयाल । निस अहार वरजित गुनमाल ॥
झूठ अदत्त कुशीलन गहे । परिगह संख्या गहि सुख लहे ॥८॥
दिसा[४] देस[५] की सख्या धरे, विना प्रयोजन पाइ[६] न करे ।
सामायक[७] प्रोषध[८] विधि ठान, गहे भोग[९] उपभोग प्रमान ॥९॥
द्वारा पेषन विधि[१०] विस्तरे, अतिथि[११] असन दे निज अघ हरें ॥
करें मरन वर साधि समाधि[१२] आराधना सार आराधि ॥१०॥
कैं श्री पंचपरम[१३] पद ध्याय, धरमध्याण जुत तजि निज काय ॥
उपजे जाय सुरग[१४] सुरइन्द्र, तहा भूरि भुगते आनन्द ॥११॥

॥ दोहा ॥

ऐसी विधि सोरैण[१५] दिन, वरतै होय निसल्ल[१६] ॥
पद्मावति पुरवार मे, प्रघट भये जग अल्ल ॥१२॥

---

१ अपहार-त्याग, २. अनाजो का शोधन, ३. पानी छानना, ४. दिग्व्रत (दिशाओं में आने जाने का नियम करना) ५ देशव्रत (समय की मर्यादापूर्वक कुछ देश तक आने जाने का नियम) ६. प्रयान-गमन, ७ सामायिक-शिक्षा व्रत (प्रात मध्याह्न और सध्या को आत्म ध्यान करना), ८ प्रोषध शिक्षा व्रत (चार प्रकार के आहारो का त्याग कर धर्मध्यान मे चित्त को लगाना) ९. भोगोपभोग परिमाण व्रत (परिग्रह परिमाण व्रत में भी कुछ काल के लिए भोग्य और उपभोग्य वस्तुओ में से थोड़ो का नियम लेना) १०. व्रत, ११. अतिथि संविभाग व्रत (मुनि, अर्जिका श्रावक, श्राविका को आहार देकर फिर आहार करना) १२. समाधि मरण १३. पच परमेष्ठी १४. स्वर्ग, १५ सुरेन्द्र, १३. रैन=रात, १६ नि शल्य=नि शक,

सप्तवार है वानिया, सब मे भये प्रसिद्ध ॥
इस अन्तर अव, और कछु, वरनन सुनो सनिद्ध ॥१३॥
आपस मे ही सो भये, कछु इक इक कारण पाय ॥
ग्रहाचार[1] अधिकार कर, पाडे नाम धराय ॥१४॥
विधि विवाह कारज विपे, दुहू[2] ठौर तिरण[3] मान ॥
राषे[4] सव जन प्रीति सो वचरण करे परमान[5] ॥१५॥
(यह चौपाई सेठ के कूचा के मदिर की प्रति मे है)

॥ चौपाई ॥

अव ए सव ही विधि वस होय । देस देस बिचरे सब लोय ॥
पद्मनगर को त्यागि निवास । मध्यदेश की कीनी आस ॥ १६ ॥
कोई कहूँ कोई कहुँ वसा । अन्न पान[6] कारन मन लसा ॥
पाडे निकलि तहा से आय । टापे माहि वसे सुष पाय ॥ १७ ॥
पुन्य प्रमान भोग मे भोग । भलौ बनौ तिरण[7] को सब जोग ॥
धरम करम मय ग्रहषट[8] कर्म । करे हमेसा मन धरि सर्म[9] ॥ १८ ॥
राजा करे भूरि सनमान[10] सचिव प्रधान करे सब कान ॥
पुरजन[11] परिजरण[12] मे अधिकार । आगे और सुनौ विस्तार ॥१९॥
तीनि[13] वरप वसु मास विचार । पक्ष दिवस बाकी निरधार ॥

---

१. ग्रहस्थ के आचार, २ दोनो घरो (वर तथा वधू पक्ष) ३ तिन, ४ राखे, ५ प्रमाण, ६ रोजगार के निमित, ७ तिन = उन, ८. ग्रहस्थ के छ कर्म (दान, पूजा, गुरुपासना, स्वाध्याव, सयम और दान), ९ शर्म = सुख, "सर्व" भी पाठ दूसरी प्रति मे है, १० सन्मान, ११. नगर निवासी, १२ कुटुम्बिजन, १३ चतुर्थ काल मे जव ३ वर्ष ८ माह और १५ दिन वाकी रह गये थे, तव भगवान महावीर स्वामी मोक्ष गए थे ।

चतुरथ काल माहि जब रहे। अतम[1] तीरथ पति सिव गये ॥ २० ॥
सवत[2] सर षटसत पन मीस। गये भये विक्रम नर ईस ॥
तिण सवत सर वरने एह। विद्यमान अवलौं मह तेह ॥ २१ ॥

॥ दोहा ॥

सोलैसे के ऊपरे, सत्रैसे के माहि ॥
पाडिन ही मे ऊपजे[3], दिरग हल्ल दो भाय ॥ २२ ॥
बालापन हीते चतुर, कला[4] कुसल मृदुवेण ॥
तिणकी रीति विलोकि के, लहे सकल जन चैन ॥ २३ ॥
क्रम सौ तरु[5] नायौ भयौ, जनक विवाहे सोय ॥
पाई सुन्दर कामिनी, मानो रली[6] वहोय ॥ २४ ॥
उपजे इनके अग तै, जे सुत सुता सुभाय ॥
जथा[7] रीति पालन कियो, पुनि दीने परनाइ[8] ॥ २५ ॥
सावधान गृह काज मे, धरै सुभग आचार ॥
काल विताये चैन सो, आगे सुनो विचार ॥ २६ ॥

इति श्री वैराग्योत्पत्ति कारण भव सम्बन्ध निवारण ब्रह्मगुलाल चरित्र मध्ये सोमवशे वानिक्वृत्ति गहन पद्मावति पुरवाल अल्ल तिन मे पांडेणि की उत्पत्ति टापे मे वास द्रग हल्ल उत्पत्ति वर्णन रूप तृतीय संधि सम्पूर्ण

---

१ अतिम तीर्थपति = भगवान महावीर, २ भगवान महावीर के बाद के बाद ६०५ वर्ष बाद राजा विक्रम (शालिवाहन) हुए, ३, ऊपजे, ४ कला-कुशल, ५ तरुणाई, ६ प्रसन्नता, ७ यथा, ८ विवाह।

॥ दोहा ॥

सभव जिन भव भय हरण, करण परम[1] कल्यान ।
चरन सरोरुह[2] ता सके, नमो जोरि जुगपान[3] ॥ १ ॥

॥ चौपाई ॥

अव ऐ दिरग हल्ल दो भाय ॥ परियण[4] सहित रहे सुष[5] पाय ॥
करे उचित कृति माने रलो । पुन्य बेलि पूरण फल फलो ॥२॥
एक दिवस कारज बस होय । हल्ल गए चलि पुर पर सोय ॥
यहा देव[6] विधि औरहि करी । सुप मे लाय[7] विपति बहुधरी ॥३॥
लगो अगनि द्वारते ओर । घेरा करो सकल गृह ओर[8] ॥
मानौ प्रलै[9] काल दव[10] धाय[11] । जन्म लियौ याही गृह आय ॥४॥
उठी ज्वाल मनु गिलि[12] है सबे । कालजीव की उपमा फवै[13] ॥
अति भरराय[14] चपला ताप मे । जाकी ज्वाला दूरि तक भमै ॥५॥
उठे फुलिग[15] अति विकरार[16] । तिनसो भसम भये ग्रह भार[17] ॥
चली पवण[18] अति तीक्षन धाय । ता करि प्रबल भई अधिकाइ ॥६॥
पुरजन देषि छोभ अति लह्यो । सब अवसान्[19] भूलि भय गह्यो ॥
परी खल वली पुर के माहि । बुधि[20] वल धीरज गयौ पलाहि ॥७॥

---

१. मोक्ष २ सरोज ३ युगपाणि = दोनो हाथो, ४ परिजन, ५ सुख, ६ दैव गति = ऐसा भी पाठ दूसरी प्रति मे है, ७ आय = ऐसा भी पाठ दूसरी प्रति मे है, ८ घोर = ऐसा भी पाठ दूसरी प्रति मे है, ९. प्रलय काल, १०. दावाग्नि, ११ भागकर, १२ गिलि है = जलायेगी, १३. ठीक तरह से लगना, १४. भर्र भर्र भयानक शब्द करती हुई, १५ स्फुलिंग, १६ विकराल = भी पाठ दूसरी प्रति मे है, १७ ग्रह जाल = भी पाठ दूसरी प्रति मे है, १८ पवन, १९. औसान, २० बुद्धिबल ।

कोई निज वालक ले भगे। कोई आरण[1] गेय रस पगे॥
भागनही मो सवको प्यार। धरे नही चित शोकि[2] करार[3] ॥८॥
खडौ जहाँ जो तहाँ मो सोय। भागि चले भय कम्पित होय॥
काहूकू रणहि मुरति[4] समार। करे सवै जन हाहा कार॥९॥
हाय कहा कैमी यह भई। विधना[5] कौन विपत्ति सिर दई॥
तिय[6] जन भागी विह्वल होय। धीरज शोक[7] धरे राहि कोय॥१०॥
धर्णे[8] पुरपि मर्ण[9] साहस धार। लगे वुझावण[10] ले ने वार[11]॥
काऊ भाँति वुझै राहि[12] कोय पुर दाहन को उमगी सोय॥११॥
घुमड़ि धुआ छाई नभ माँहि। पूरि गई घर घर सक[13] नाँहि॥
फैलो तम मानौ निस[14] भई। सूझत कुछरा[15] अधगति लई॥१२॥
इत उत जन डोले भिरराात[16]। दारुण दाह पसीजै गात॥
लगी झालतन[17] भुरता भये। स्वांस रौधते[18] अति दुष लये॥१३॥
जरी प्रतौली साहीवान[19]। मिदरी[20] त्रनधर[21] दरदर लान॥
जरे गरभग्रह[22] गोप सिवाण। जरो अटारी जो आसमान॥१४॥
जरी गर्भिनी महिषी[23] गाय। जरे लवारे ढोर[24] वनाय॥
वाला वाल वृद्ध अरु ज्वान। घनै[25] अगनि जलि त्यागे प्रान॥१५॥
घने पपेरु पक्षी जरे। तरवर भसम होय भूपरे॥
वहुत वात को करै वषान[26]। भूमि भई जलि भस्म समान॥१६॥

---

१ अन्य, २. नेंक=थोडा ३ साहस, ४. याद, ५ विधि, ६ स्त्री जन, ७. नेंक, ८ घैंन, ९. मन, १० वुझाने, ११ वारि=जल, १२ नहिं, १३ शक, १४. निश=रात, १५ कुछ नही, १६ घवडाए, १७ झुलसना, १८. रुकना, १९ मकान का ऊपरी ढका भाग, २० दोखनो में भीतरी जगह, २१. ईंधन घर, २२ जच्चा घर, २३ भैंस, २४ 'ठौर' भी पाठ दूसरी प्रति में है, २५. अनेको, २६ व्याख्या।

दिरग सहत सब ही परवार । जलि बलि भसम भयौ निरधार ॥
और जनन[1] की कोरा समार । कहै बढ़े चारित विस तार ॥१७॥

ग्रैसो करम उदै[2] भयो घोर । मरौ कुटब सब एकै ठौर ॥
करम उदै सब पै बलवान । कहा राव कहा रक रिगदान[3] ॥१८॥

सुररगररनारक[4] तिरयग सबै । करम उदै सब बरती फबै ॥
करम विपाक[5] टारि जन कोय । जगवासी बरतै नहि सोय ॥१९॥

क्योऊ क्योऊ उपसम[6] भई । तब पुरजन कछु थिरता[7] लई ॥
बैठे लोग करे सब सोग[8] । करी विधैता बहुत ग्रजोग[9] ॥२०॥

उठि ग्रह ग्राय सोधना[10] करी । देखि मृतक तन चित्त भय धरी ॥
होनहार सो कुछ न बसाय । यह विचार चित्त सब मरा लाय ॥२१॥

बैठि रहे ग्रपरो ग्रह जाय । रोना भोरगी[11] सुरगत सुभाय ॥
रैनि गए दिशा ग्रतम जाय । ग्राए चले हल्ल निज गाम ॥२२॥

पुरबाहिर लखि पुरजन कह्यौ । कुटुम तुम्हारो दव करि दह्यो ॥
बच्यो नही परियन मे कोय । ग्रौर कहा विधि कहे बहोइ ॥२३॥

सुरगत लगे वच वज्र समान । बोले पुनि उर साहस ठान ॥
जो हम है तो है सब लोग । कोरा हेत ग्रब करियै सोग ॥२४॥

ग्रह मारग तजि राजा द्वार । चले हिया महिं सोच ग्रपार ॥
राजा देखि कियौ सन मान । दई दिलासा बहु हित ठान ॥२५॥

---

१. ग्रौर लोगो की, २. उदय, ३. निदान, ४. सुर नरनारक तिर्यंच (देव मनुष्य नारकी ग्रौर पशु), ५. फल, ६ उपशम=शात, ७ स्थिरता, ८. शोक, ९ ग्रयोग्य, १०. सभाल, ११ रोना-धोना ।

॥ दोहा ॥

अब ए निवसत राज ग्रह, देत कर्म को पोर[1] ।
करि सूतक[2] आचारविधि, रहे राज को पौर[3] ॥२६॥

इति श्री वैराग्योत्पत्ति कारण भवसम्बन्ध-णिवारण-वृहागुलाल चरित्र-मध्ये हल्ल वाहिर गमन ग्रह पनिवार दहन ग्रह आगमन राज सन्मान राज द्वार निवास वरनन रूप चतुर्थ-संधि सम्पूर्ण ॥ ४ ॥

---

१ दोप, २ मरने के वाद तीजा तेरवी आदि की क्रियाए, ३, पौढि ।

॥ दोहा ॥

इन्दणारिंद मुनि[1] जिस, बदत पद अरविन्द ।
जिण[2] अभिनदन[3] पद पद्म, नमो हरण दुखदद[4] ॥१॥

॥ चौपाई ॥

अब भूपति मण[5] करै विचार । जाणो पूरवापर विवहार[6] ॥
हल्लतणी पर पाटी किसे । चले बिवाहे कौ[7] बयषसे[8] ॥२॥
मेरे किये होय तो होय । और समर्थ न दीसै[9] कोय ॥
यह विचार णिज[10] सचिव.बुलाय । मण तिथि मत्र कह्यौ समझाय।३।
तब मंत्री निज निघा[11] पसारि । हेरे पुर वानिक गृहद्वार ॥
कहूँ ण[12] दृष्टि सफलताधरी । जे मगई[13] तो पाछे फिरी ॥४॥
तब पुर नायक लो बुलवाय । मान देय पूछी समझाय ॥
कोया कही हमारे तीर । बसे साह इक गुण गभीर ॥५॥
तिणके[14] सुता सुभग गुणपूर । नव जोवन मुख बरतै नूर ॥
नाम गाम[15] सुनि आयस दियौ । आपुन निकट राय को लियौ ॥६॥
सचिव णिसान[16] देय चुप रह्यो । भूपति फिर विचार मन लयौ ॥
साह बुलाइ जहाँ जो कहे । गणि[17] दबाव पुरजन दुख लहे ॥७॥
ताते कीजे कोण[18] उपाय । इम चितवत इक पायो दाउ[19] ॥
जाति प्रधान पुरिप मिलि आप । करी सलाह त्याग मन पाप ॥८॥
सिद्ध मत्र कहि निज घर गये । राज काज करन उम गये ॥

---

१. इन्द्र, नरेन्द्र मुनि, २. जिन, ३ अभिनन्दन (जैनियो के चौथे तीर्थंकर), ४ दुख, ५ मन, ६ व्यवहार, ७ कौन, ८ खसै (बीते), ९. दीखै, १० निज, ११. निगाह, १२ न, १३ मागे, १४. तिन, १५. ठाम—ऐसा भी पाठ है, १६ निशान, १७. मानकर, १८ कौन सा, १९. उपाय।

कछु समीप वरती जन साथ । गये सवै ग्रह चलि दिन आथ ।।९।।
गृह चौरस[1] पर वैठे जाय । नमन कियौ लखि वरिणक[2] सुभाय ।।
आपस मे सभाषरण सार । करौ घडी दोयक रिणरघार[3] ।।१०।।
फिर उठि निज ग्रह मारग[4] लियौ । मरम[5] भेद रणहि[6] काहू दियौ ।।
साहुन साह चित मन धरी । कोरण[7] हेत जह्र[8] नृप थिति करी ।।११।।
रिणसा[9] गई हुआ परभाथ[10] । राजा वहुरि गये दिन आथ ।।
पूरव दिन वत विधि अनुसरी । फिर आये निजगृहथिति करी ।१२।
यो कैक[11] दिन आवत जात । वीते कहरिण[12] मन की वात ।।
पुरजरण देखि अचभौ लह्यो । जाणे[13] कहा भूप मरण[14] ठयौ ।१३।
कोई कछु कोई कछु कहै । मरम भेद नहि कोई लहै ।।
साहुनि साह वहुत भय घरी । चित अकुलाय वीनती करी ।।१४।।
हो रायरण[15] के राय दयाल[16] । सत्रुसाल[17] दीनन प्रतिपाल ।।
कोरण काज तुम आवत जात । हमसो कहौ मरम[18] की वात ।१५।
वोले राय सुनौ हो साह । ग्यायक[19] आदि अत निरवाह[20] ।।
देस काल विधि जानन दक्ष । सुभ आचरणवारण मरण सुक्ष[21]।१६।
जो हम वचन निवाहौ अवै । तौ हम कहनौ सोभा फवै[22] ।।
ताते निज घर माहि सलाह । करि भाखौ जो होय रिणवाह[23]।१७।
यह कहि भूप आप घर गयौ । साहुनि साह मतौ मिलिठयौ ।।
ना जानें नृप माँगे कहा । कोरण[24] सारधन हम घर लहा ।।१८।।

---

१ चौपाल-वैठक, २ वणिकवर गय—ऐसा भी पाठ दूसरी प्रति मे है, ३ निरधार, ४ मार्ग, ५ मर्म, ६ नही, ७ किस हेतु, ८ यहा, ९. निशा, १० प्रभात, ११. कई एक, १२. कह नही, १३ जाने, १४. मन, १५ राजाओ के राजा १६. दयालु, १७ शत्रु नाशक, १८ हृदय के गुप्त विचार। १९ ज्ञायक, २० निर्वाह, २१ स्वच्छमन, २२ अच्छा लगे, २३. निर्वाह, २४ कौन सा ।

कन्या बिना और हम घरै । सार वस्तु कछु नाही वरै ।।
सो नृप नीतिवान धरमग्य[1] । चाहे रणही[2] कुलकालिम[3]दग्य ।।१६।।
यह गठास[4] गहि खोई राति । विधिवल लह्यौ बहुरि परभात[5] ।।
नृपति आय पुनि पूछी एम । कहौ साह मरण चितई केम ।।२०।।
धरि उर साहस बोले साह । तुम भापित हम करे निवाह ।।
सुणि भूपति मरण, आरणदलयो[6] । फिर कै वचन साह प्रतिचयौ।।२१।।
हल्ल प्रतै निज कन्या देऊ । इस कुल वृद्धि होन जस[7] लेऊ ।।
यह सुनिकै सचित पुनि कहि । जो तुम कही करै हम वही ।।२२।।
यह सुणि षुसी[8] होय नरनाह । कीनी विधि विवाह उछाह[9] ।।
दोनो गेह मगलाचार । वढत भए आनन्द अपार ।।२३।।
शुभ दिन शुभ ग्रह लगन मझार । पान[10] ग्रहन विधि करी विचार ।।
दानमान सतोप उपाय । विदा होय निज थानक आय ।।२४।।
करि पञ्चात् रीति सूष भए । सब परियन जन आनन्द लये ।।
भूपति नो[11] गुन सुमिरण करे । हिरदे भगति देव गुर धरे ।।२५।।

।। दोहा ।।

या विधि से निज व्याह करि, निवसे हल्ल सुषित[12] ।।
पूर्वोपाजित कर्मने, बहुरि किये तियवत[13] ।।२६।।

इति श्री वैराग्योत्पत्ति कारण भव-सबंध-निवारन श्री बृह्मगुलाल चरित्र मध्ये हल्ल विवाह राजा उपाय विचारन बहुरि उपाय करन विधि विवाह वरनन रूप पचम सधि ।। ५ ।।

---

१ धर्मज्ञ, २ नही, ३ कुलकालिमदाग, ४ चिंतवन, ५ प्रभात, ६. आनन्द, ७ यश, ८ खुशी, ९ उत्सव, १० पाणिग्रहण=विवाह ११ णमोकार मत्र, १२ सुखी, १३. स्त्रीवत ।

॥ दोहा ॥

हरि[1] आयुध सम जिस वचरण, करे कुमत नग[2] चूर ।
पचम जिनवर[3] उर बसौ, करौ मोहतमदूर ॥ १ ॥

॥ चौपई ॥

अव ए हल्ल नवोढानार[4] । पाय धरे आनद अपार ।
भामिरिण[5] मुख पकज रस लेत । त्रिपति[6] न होय रमे घरि हेत ॥२॥
वकचितोनि[7] नेन[8] सर हते । गाफिल भये रागरस रते[9] ॥
निसपति[10] ते मानत मुख वेस[11]। रिणरखत[12] जो[13] चकोरथिर मेस।३
सिरवेरणी[14] नागिनि करि डसो । भृकुटी लता माहि अति फसे ॥
मुख सुवासु सूघन ते घ्रान । प्यार करें अत्यन्त सुजान ॥४॥
अधररण[15] पर निज मुख थिति धार । पीवत सुरस रण[16]
त्रिपति[17] लगार ॥
विह्वल[18] भये पतन भय धार । गहे जुगल कुच दिढ[19] करसार ॥५॥
वाहु फास करि फासित भये । जुदे होरण को[20] अक्षय ठए ॥
नाभि सरवरी रस जलमग्न[21] । जेम रेनुका सग जमदग्न[22] ॥६॥

---

१ इन्द्र, २ पर्वत, ३ पचम तीर्थंकर (श्री सुमतिनाथ), ४ जिसका विवाह अभी हुआ हो, ५ भामिनि,=प्यारी स्त्री, ६ तृप्ति, ७ वक्र चितवन, ८ नयन वाण, ९ राग रसमते—ऐसे भी पाठ 'ग' प्रति मे है, १० निशापति, ११ मुख भेम, १२. निरखत, १३ ज्यो, १४ सिर की चोटी, १५ अधरो (होठो), १६ नही, १७ तृप्ति, १८ विह्वल, १९ दृढ "दिठ करि प्यार" ऐसा पाठ ने कू की प्रति मे है (जिसका अर्थ प्रेम की निगाह), २० होन को, २१ रस ललमान भी पाठ दूसरी प्रति मे है, २२ खगलमदान—ऐसा पाठ दूसरी प्रति मे है ।

काम केलि मे मगन अतीव । जो अलि पकज रमहि सदीव ॥
तण[1] स्पर्स[2] मुख चुवन आदि । वचन विनोद करे मनसादि[3] ॥७॥
हानि[4] विलास क्रिया अनुसरे । आपुस माहि प्रीति बहु धरे ॥
कारज वन जाये अनि[5] ठाम । उर मे नही विसारै वाम[6] ॥८॥
अेसे रमत गये वहुमास । धरी गरभ उर भयौ हुलास ॥
जो जो गरभ वृद्धि कू गहे । तोतो परियण को सुख लहे ॥९॥
पूरण मास जनो सुतसार । जो प्राची दिस दिन करतार ॥
अरुन वरण अति सुन्दर काय । दीपति[7] वत प्रभा लह लाय ॥१०॥
देखि मात अति आनद लयौ । हृदय सरोज विकसित ठयौ ॥
वाल[8] अर्क सम मुख परकास । गरभ जनम दुख तम कृत नास॥११॥
जनक[9] जनम सुनि अति सुख भरो । जाचकजननिदान[10] अनुसरो ॥
कियो जनम उत्सव अधिकाय । गीत नृत्य वाजित्र[11] वजाय ॥१२॥
विविधि भाति पहराई मानि[12] । वस्त्र आभरण थकी निदान ॥
यो वहु जन्मोत्सव तिन ठन्यौ । जनम सुफल करि अपनो गुनो ॥१३॥
गनित[13] सास्त्र विधि ज्ञान विसाल । नाम दियौ सुत ब्रह्मगुलाल ॥
मात पयोधर पयकरि पान । वढत वाल तण[14] चद समान॥१४॥
जो[15] जो तण वधवारी[16] लहै । तो[17] तो अति मनोग्यता[18] गहै ॥
सोहे सिर घुघयारे[19] केस । सक्षिम स्याम सचिक्कन[20] भेस ॥१५॥

---

१ तन-शरीर, २ स्पर्श, ३ प्रसन्न, ४ हसना, ५ अन्यस्थान, ६ वामा= स्त्री, ७ दीप्तिवत, ८ वालसूर्य्य, ९ 'जनम जनम' ऐसा भी पाठ दूसरी प्रति मे है, १० इच्छापूर्ति, ११. वादित्र=वाजे, १२ मान्यो को, १३ ज्योतिष शास्त्र के लगनानुसार, १४ तन, १५. ज्यो ज्यो, १६ बढवार १७ त्यो १८. मनोज्ञता=सुन्दरता, १९ घुघुराले, २०. चिकने और कोमल, ।

अर्द्धचद्र सम दिपे लिलार[१] । उन्नत अरीस्त्रोर्ण[२] सुठार ॥
मानो कामिनि दृग सरतनो । विधिना प्रथम णिसाना[३] ठनो ॥१६॥
भौह लता मनुतियमण[४] अली । सेवरग हेत बणी अति भली ॥
[५]सुकनासामुष स्वास सुवास । लेत विराजी[६] सुभग सुराम ॥१७॥
सजल[७] सलोमत्रिवर्ण स्वरूप । लसै कमल दन्न नेन अनूप ॥
वाम[८] दृष्टि लक्षिमी आवास । रचे विधाता बुद्धि प्रकास ॥१८॥
जाके अधर विदूरी[९] समा । मनो सरस्वती आसणपमा[१०] ॥
दसण[११] पॉति मनु दाडिम[१२] बीज । ससि मरीच[१३] सम उपमालीज ॥१९॥
मधुर वचण पीयूष[१४] समान । खिरे जास मुषते रस[१५] थान ॥
जास कपोल[१६] समा सस लोभ । दीपतवत सुढार[१७] अरोम ॥२०॥
श्रवण जुगुल अर चिवुक[१८] मनोग । देषत ताहि तेज सब सोग ॥
सष ग्रीव[१९] दिढ कध उतग । दीरघ भुज कर कोमल अग ॥२१॥
अति उदार वच्छस्थल[२०] जास । थूल[२१] स तण क्रस उदर सरास[२२] ॥
गहरी नाभि दक्षिना[२३] वर्त । त्रियसलोद[२४] जुत जण मन हर्त्त ॥२२॥

---

१ ललाट, २. वहुत विस्तरित, ३ निशाना, ४ स्त्रीमन अली—मानो स्त्रियो के मन रूपी भौरे ही वैठे हो, ५ शुक, ६ "सुराजी" ऐसा भी पाठ "ग" प्रति मे है, ७ "सजल सरोवर वर्न स्वरूप" ऐसा पाठ 'ग' प्रति मे है, ८ वाई, ९ विद्रुम (पद्म राग) 'ग' प्रति मे "किंइढरी" पाठ है, (किंइढरी एक लाल फल होता है), १० आसनोपमा (आसन के समान), ११ दात, १२ दाडिम—अनार, १३ मारीचि—किरण, १४ अमृत, १५ रस स्थान, १६ 'ग' प्रति में "समी सम" ऐसा भी पाठ है, १७ उभरा हुआ, १८ ठोडी, १९ गर्दन, २०. वक्षस्थल, २१ स्थूल, स्तन, २२ रोम राजि सहित, २३ "रक्षनावर्त" ऐसा भी पाठ से० कूं० की प्रति में है, २४ 'त्रयसलोट' ऐसा भी पाठ मे० कूं० की प्रति में है,

छीन कमरि साथ ले सुढार[1] । कोमल केलि[2] थभ उणहार[3]।।
सुन्दर तिली टकूना जास । कूरम[4] सम पगपीठ सरास ।।२३।।
अरुन[5] पग थली रेखाणि भरी । सख[6] चक्र नखजुत आँगरी[7] ।।
कोमल दीपति वत उजास । सोहत मनु लक्षिमी आवास ।।२४।।
यो नष[8] सिप लो तन मनहार[9] । लक्षिन[10] व्यजन[11] सहित उदार ।।
जहा चाहि पै जैसो रूप । तेसो तहा लसै रस कूप ।।२५।।

॥ दोहा ॥

सोभा[12] याके अग की, कह लग कहू उचार[13] ।
थोरे[14] ही मे समझि लौ, कहत बढै विस्तार ।।२६।।

इति श्री वैराग्योत्पत्ति कारण भव सम्बन्ध णिवारण बृह्मगुलाल चारित्र मध्ये दपति काम भोग पुत्र, जन्म-उत्सव सरीर सोभा वरणन रूप छटी सधि सम्पूर्ण ॥ ६ ॥

---

१. नितम्ब, २ केला, ३. उनहार, ४ कछुआ, ५ अरुण (लाल) ६. सामुद्रिक शुभचिह्न, ७ आगुरी, ८ नख—शिख (पैर के नाखून से लेकर सिर की चोटी तक) ६ मनोहर, १० लक्षण—व्यजन (सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार शरीर के शुभ चिन्ह), ११ "व्यजन तन सुउदार" 'ग' प्रति में ऐसा भी पाठ है, १२ शोभा, १३. उच्चारण=कथन, १४ थोडे ।

॥ दोहा ॥

प्रणमो पद जिण[1] पद्म के, दायक जन सिव[2] सद्म ।
अन्तरग वहिरग जिस, कमला सेवत सद्म[3] ॥१॥

॥ चौपाई ॥

अव ऐ वृह्मगुलाल कुमार । मात पयोधर पय आहार ॥
करि णित[4] वधै[5] दूज ससि समा । दृगणि लोकि विलोक दुख गमा ॥२॥

उलकनि[6] मुल कनि विगसनि जास । करे जननि आणद प्रकास ॥
वच चट्[7] न चातुरी समेत । बोलत अमी[8] समा सुष हेत ॥३॥

मात गोदते भूपरि आय । घुटुअन धावत हाथ वधाय ॥
कर सो भूकूटन[9] विगसाय । गोद लेत मचलत अधिकार ॥४॥

अगुरी पकरि चलाये पाय । सखिलित[10] पाउ धरे खम[11] खाय ॥
चलहि गिरहि उठि चाले फेरि । जणनी अकहिं[12] आपहि हेर[13] ॥५॥

मुकर[14] विषे लषि प्रति[15] आकार । पकरण हेत करे व्यापार ॥
मारे थापल वूरे ताहि । वारवार मण[16] रीस[17] वढाइ ॥६॥

---

१ जिन पद्म (छठवें तीर्थंकर श्री पद्म प्रभ), २ शिव सद्म (मोक्ष रूपी महल), ३. "सेवा कदम" ऐसा पाठ स० कूं० की प्रति मे है । ४ नित, ५ वढै, ६ हास्यादि "हुनकनि" ऐसा भी पाठ स० कूं० की प्रति में है । ७ वाचाल, ८ अमृत, ९ पृथ्वी खोदना, १० स्खलित=लडखडाना, ११ गिरना, १२ गोद, १३ देख, १४ मुकुर=दर्पण, १५ प्रत्याकार=प्रतिविम्व=परछाई, "मुख आकार" ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति में है, १६ मन, १७ रोप=क्रोध ।

बाल ख्याल यम[1] बहुत प्रकार । करत परे पण[2] वरष मझार ॥
मात पिता तब चिंतई सेह । इणहि पढाहि करै गुणगेह[3] ॥७॥
बालपणे विद्या अभ्यास । किये होय बहु बुद्धि[4] प्रकास ॥
बुद्धि थकी हित अहित विधान । जाणि गहे कल्याणक वान[5] ॥ ८॥
बुद्धिवान कू चाहै सबै । बचण णिवाहै[6] सेवा ठवे ॥
बुद्धिवान सब जन सिरताज । होय सवारे निज परकाज ॥९॥
जे न पढामे बालक समे, मात पिता रिपु सम पमे ॥
ताते जनहिं बढावण[7] जोग । लाभ अलाभ करम सजोग ॥१०॥
विद्या कल्प वृक्ष की डार । कामधेनु चिंता मण सार ॥
चित्रावेलि रसायण जथ्थ[8] । वछित अरथ देण निधि[9] तथ्थ[10] ॥११॥
गुण भूषण अर अनहृत लक्ष । सकल देस मे मानि प्रतक्ष[11] ॥
जोग[12] समे आराधन करी । फलै भूरि गुण सुख सो भरी ॥१२॥
यह विचार श्रुत[13] पाठक पास । ले करि जाय करी अरदास ॥
भो विद्वाण पढावौ याहि । हम परि कृपाधार अधिकाहि ॥१३॥
पाठक आरे[14] करि सिसुहात[15]। श्रुत-पूजन[16] करवाये उदात ॥
लिखी अक पण[17]पकति[18]आदि । ऊकार आदिक सुख सादि ॥१४॥
सथा[19] देय सीष[20] इम दई । वत्स भली विधि गुणयो सई ॥
विद्या मूल विनय मन भेद । जतण[21]सहित बरतौ विण[22]षेद[23]।१५।

१ इम, २. पाचवें वर्ष, ३. गुणो के निवास, ४ अक्ल, ५ आदत, ६ निवाहे, ७ "पठावन" ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है, ८ यथा, ९ निधि-कोष, १० तथा, 'अरथ देत ममरथा' ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है, ११ प्रत्यक्ष १२ जोग-वैराग्य, १३ अध्यापक, १४. आगे, १५ शिशु हाथ, १६. शास्त्र पूजन, १७ पाच, १८ पक्ति, १९ पाठ, २० सीख-शिक्षा, २१ यत्न, २२ विन, २३ खेद-चित ।

गुणन[1] महतजन आवत वेय[2]। षडा[3] होय सण मुख गति लेय॥
हाथ जोडि जुग करौ प्रनाम। कहौ वचण अनुकूल ललाम[4] ॥१६॥
पुणि वैयाव्रत[5] विविध प्रकार। तण[6] धण मण वचजुत
करि सार॥
भोजण नीद अलप अनुसरो। सुगुण गहण[7] मे उद्यम धरौ ॥१७॥
पुनि अन्याय चालि अपहार। है निरलोभ करौ व्यापार॥
अैसो किये अलपही काल। विद्या तोहि फुरै[8] अखराल ॥१८॥
अविनय रुप रहै जो बाल। तिणहि होय न विद्यागुण पाल॥
जो कछु फुरहि विपजै[9] होय। परवत[10] द्विज बसु नृप[11]
जो जाय॥१६॥
यो सुणि[12] सब आरे[13] करि लई। पठण हेत मणसा[14] उमगई॥
लिषे अक आकार विसेष। इक द्वयत्रिय बच कलित[15] असेष ॥२०॥
अर उच्चारण रीति समस्त। ह्रस्व दीर्घ पुणि पुलित प्रसस्त॥
सुर व्यजण समास पद रूप। कारक सधि विमुक्ति अनूप ॥२१॥
सीखे छद भेद गण भेद। गेय[16] नाम सुर भेदणि वेद॥
गणत भेद नाना परकार। रसक प्रिया वाणिक प्रिया सार ॥२२॥
फुणि[17] लक्षिन[18] व्यजन[19] श्रुत माहि। निपुन भये सगुनादि मझाहि
सिल्प[20] सास्त्र सालोतरलीन[21]। रोग चिकित्सा मे परवीन ॥२३॥

---

१ गुणो मे महापुरुष, २ देखि, ३ खडा, ४ सुन्दर, ५ वैया-व्रत-सेवा, ६ तन मन धन, ७ प्राप्ति, ८ आवै, ९ विपर्यय-उल्टी, १० पर्वत- नारद, ११. राजा वसु, १२ सुनि, १३ ठीक, १४ मसा (भाव), १५ मीठे वचन कहना, १६ ज्ञेय, १७ पुनि, १८ लक्षणा, १९ व्यजना, २०. शिल्प शास्त्र, २१ सालोत्तर।

इत्यादिक विद्या पढि सोय। न्याय-रूप वरतै मद खोय ॥
सब जग माहि सराहत भये। मातपिता बहु आनद लये ॥२४॥

॥ दोहा ॥

कृत[1] कारत अनुमत थकी, मणवच काय सयोग ॥
जिण[2] उपजायो पूर्व सुभ[3], तिनहि फुरहि[4] सव भोग ॥२५॥
बृह्मगुलाल कुमारणे, पूर्व उपायो पुन्य ॥
याते बहुविद्या फुरी, कह्यौ जगत ने धन्य ॥२६॥

इति श्री वैराग्योत्पत्ति कारण भव सवर निवारण श्री बृह्मगुलाल चरित्र मध्ये बाल क्रीडा विद्यालाभ वरनन सप्तम सधि ॥ ७ ॥

---

१. कृत—करना, कारित-करवाना, अनुमत—दूसरे के किये हुए कार्य की प्रशसा करना, २ जिन्होने, ३ शुभकर्म, ४ प्राप्त होते है।

॥ दोहा ॥

श्री सुपास[1] भव पास को, छेदे समय मझार ॥
सो सुपार्श्व हम उर विषे, वास करो सव वार[2] ॥१॥

॥ चौपाई ॥

वृह्मगुलाल सहत परवार । मात पिता भ्रातादिकलार[3] ॥
काल विताये सुख के माहि । रमै सुहृदजरा सग सकनाहि[4] ॥२॥
पूर्व उपार्जित कर्म बसाहि । बुद्धि प्रवरतै नाना भाय ॥
ता अनुसार काल की चाह । होय लगे यह जन[5] तिस राह ॥३॥

॥ सोरठा ॥

सोए वृह्मगुलाल । उदयागति[6] विधि वस भये ॥
तजि सत सग रसाल[7] । सठ सुहामते[8] पथ लगे ॥४॥

॥ चौपाई ॥

कौतिक रूप ख्याल जगजेह । तिस प्रवर्ति मे करी सनेह ॥
चेटक नाटक विधि मरा घरी । जनमरा विस्मय कृति अनुसरी ॥५॥
अगिनि[9] थभ जलथभरा[10] ख्याल[11] । सुवस करण विष पूरित
व्याल[12] ॥
वृक्षउगावरा[13] दाहन[14] रीत । दारुरणचावन[15] विधि सो प्रीति॥६॥

---

१ सुपार्श्वनाथ (जैनियो के सातवें तीर्थंकर), २ सदैव, ३ लार-साथ, ४ निशक, ५ यह जतन सराह—ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति में है, ६ कर्मोदय वस, ७ उत्तम, ८ दुष्टो को अच्छा लगने वाला, "सठ सुहागते" ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है, ९ अग्नि स्तभ, १० जलस्तभ, ११ विचार, १२ सर्प, १३ उगाना, १४ जलाना, १५ दारु-पुतलियो ।

खीरणीर[1] गोमयरसनोग । करण हेत जे मत्र प्रयोग ॥
तिन महि रमहि णिरतर आप । घनतण मण वच थापिउ[2] थाप ॥७॥

सुणे[3] लाभणौ सैर[4] अनेक । तो ही आप चवै[5] गहिटेक ॥
लगी भूलना[6] को बहुभाय । रचि रचि करें प्रकाम अघाय ॥८॥

कहे कवित वीर रस तणो[7] । तथा हास्य सिगारहि सने ॥
किस्ता[8] जकरी मुकरी आदि । भापे[9] सुने पहेरी[10] आदि ॥९॥

ऐसे रमहि कुमारगभाहि । हित अनहित की चिता नाहि ॥
या पर भाड[11] पनाइक और । ग्रहण कियौ वहु दुप की गौर ॥१०॥

मान बडाई[12] के रस पगौ । कुपथी जननि मान दे ठग्यो ॥
लामे स्वाग विविध परकार । देखि-देखि विगसे नरनार ॥११॥

सषा[13] सहित कव ही हरि रूप । धरि निखिलामे स्वाग[14] अनूप ॥
मोर मुकट मुरली कर धार । धेनु चरावे होय गुआर[15] ॥१२॥

कबहि रास[16] मडल विधि करे । गोपिन सग वहु लीला धरे ॥
दधि लूटण[17] मापण[18], अपहार[19] । चोर[20] चोरि फुणि माडे रार[21] ॥१३॥

---

१. क्षीर-दूध, २ लगाना, ३. सुने, ४. सैर-शेर, ५ गाता ज्वे ऐसा पाठ से० कू० की प्रति मे है, ६ 'लडी झूलना' ऐसा भी पाठ से० कू० की प्रति मे है, ७ वाले, ८ कहानी, ९ कह १० पहेली, ११ नक्कालो की स्त्रिया, १२ बढाई, १३ सखा-दोस्त, १४ स्याल अनूप' ऐसा पाठ से० कू० की प्रति मे है, १५ ग्वाल, १६ रास मडल-रासधारी लोग, १७ दही लूटना, १८ माखन-मक्खन, १९ चोरी, २०. वस्त्रो का छिपाना, २१ रार-लडाई ।

कवही राघव लीलाभाव । दिखलावे धरि मन वहु चाव ॥
सीय हरण रावण वध अन्त । वहुरि राज अभिषेक प्रजत[१] ॥१४॥
कबहुक विक्रम राजविलास । करि दिखलावै कौतिकरास[२] ॥
कवहूं भरथरी[३] तप आरभ । प्रघट करत जन घरत अचभ ॥१५॥
त्यौ ही गोपीचद्र की रीति । विह्वल[४] करै विषैरस[५] प्रीति ॥
हर गौरी[६] अरधग[७] सरुप । णिरषत[८] होय मूढ भ्रम रूप ॥१६॥
कवही हय[९] कबही गय[१०] भेस[११] । कबही महिष[१२] वृषभ[१३] ह्वै वैस ॥
कवही सारस कबही मोर । कुरच[१४] होय वहु माडे सोर ॥१७॥
कवही होय सुहागिणि नारि । अङ्ग अङ्ग भूषन भूषित सार ॥
हाव भाव लषि लाजै वाम[१५] । पुरिषण हिये[१६] वियापे[१७] काम ॥१८
ऐसे स्वाग अणेक प्रकार । करे णित नये जनमन हार ॥
अपर जने माने आनद । परियण[१८] सुजन फसे दुख द्वन्द ॥१९॥
बारवार समभाये याहि[१९] । उक्ति[२०] जुक्ति[२१] बहु भाति उपाहि[२२]॥
पै णाहि[२३] याके मण इक रहै । जौ[२४] जल वूद जलजदल[२५] वहै॥२०॥
वहुतक जन मिलि बहुधा कही । तव कछु इक उपसमता[२६] लही ॥
पणि[२७] तोहार[२८] दिनन के माहि । स्वाग धरै विण माने नाहि॥२१॥

---

१. पर्यत, २ विस्मयोत्पादक, ३ राजा भरतरी, ४ विह्वल, ५ विपयरस, ६ पार्वती महादेव, ७. अर्द्धांग, ८ निरखत, ९ हय-घोडा, १० गाय, ११ सूरत, १२ भैसा, १३. वैल, १४. एक प्रकार का पक्षी, १५ स्त्री, १६ हृदयो, १७ व्यापैं, १८ परिजन-कुटुव, १९ इसे, २०. उक्ति-कहावत, २१ युक्ति-तर्क, २२ उपायो, २३ नहिं, २४. ज्यो, २५ कमल का पत्ता, २६ थोडे काल के लिए रुकना, २७ फिर भी, २८. त्योहार ।

॥ दोहा ॥

परणी वान[1] छूटै नही, कोटिक करौ उपाय ॥
लाज काज भय जोग सो, जो कहू उपसम थाय ॥२२॥
तौ[2] कारण सजोग सो, प्रगट होय तत्कार[3] ॥
जों[4] दव[5] भसम[6] थकी दवी, उघरत चलत बयार[7] ॥२३॥
तो[8] इण बृह्मगुलाल की मिटी बासना[9] नाहि ॥
पनि बहु जन वरजन[10] थकी, बसै ग्रेह के माहि ॥२४॥
जैसा कछु कारण जुडै,[11] तैसो कारज[12] होइ ॥
कारण बिना न काज जो, सिद्ध कहूँ अवलोय[13] ॥२५॥
उपादान कारण प्रथम, दुतिय णिमित गुणेय ।
उपादान निज[14] सक्ति[15] है, बाहिज[16] निमित भणेय[17] ॥२६॥
उपादाण विण[18] निमित सो, मिटी ण[19] मन की चाह ॥
ग्रह कारज करते रहे, मण[20] मे स्वाग उमाहि[21] ॥२७॥

इति श्री वैराग्योत्पत्ति-कारण भव संबंध निवारन श्री बृह्मगुलाल चरित्र-मध्ये अनेक स्वांग धारण प्रवृत्ति वरणन रूप अष्टम सधि ॥८॥

---

१. वुरी आदत, २. तब, ३ तत्काल, ४. ज्यो, ५ दव-आग, ६ राख, ७. व्यारि, ८ त्यो, ९ बासना-स्वाग करने की इच्छा, १०. वर्जना-मना, ११. एकत्रित, १२. कार्य, १३ अवलोक १४ निज-आत्मा, १५ शक्ति, १६. वाह्य, १७ कहा गया, १८ विन, १९ न, २०. मन, २१. उमग ।

॥ दोहा ॥

वचरण किरनते मोहतम, चाहदाह छय कीन ।
जनकमोद[1] विगसित[2] किये, नमो चद्र[3] जिन चीन[4] ॥१॥

॥ चौपाई ॥

बृह्मगुलाल रहत निज घान । करत यथोचित गेह[5] विधान ॥
करे गुनी जन को सनमारण[6] । दुपियरण[7] देषि देहि वहु दान ॥२॥
कवहू जिनग्रालें[8] जिरणवेरण[9] । सुनि सरदहे[10] हिताहित ग्रेरण[11] ॥
कवहूँ विपै भोग रस माहिं । मगन होय उदयागत[12] पाहि ॥३॥
ग्रसै निवसत कहु इक दिना । गए कवारे[13] परने[14] विना ॥
घर के जननि[15] सोच यह भयो । व्रह्मगुलाल ग्रपरनो रयो ॥४॥
इस ग्रतर पूरव विधि[16] जोग । सहजै[17] ग्राय मिलौ सज्जोग[18] ॥
भई सगाई पुनि विधि व्याह । होरण लगे मगल उतसाह[19] ॥५॥
घुरन लगी नौबति गृह द्वार । जुवती[20] गाये गीत ग्रपार ॥
चारन[21] विरध[22] वषानत[23] भए । दान मारण करि तोषित[24]
गए ॥६॥

---

१ जनकुमुद=मनुष्यो के हृदय रूपी कमलो, २ विकसत, ३. चन्द्र= चन्द्रप्रभ (जैनियो के ८वें तीर्थंकर), ४ चिन्ह, ५ ग्रह, ६ सन्मान, ७ दुखियो को, ८ जिनालय, ९ जिनवचन=जैन शास्त्र, १० श्रद्धा करे, ११ कारण, १२. कर्मों के उदय के ग्रनुसार, १२ क्वारापन, १४ विवाह, १५ जनो को, १६ भाग्य, १७ ग्रासानी से, १८ सगोग, १९ उत्साह, २० युवती, २१. चारन=भाट, २२. विरध=विरदावली=वश की प्रशसा, २३ व्याख्यान करना, २४ सतुष्ट ।

नर्चे वरागना[1] मन को हरे। हाव भाव विभ्रम[2] को धरे ॥
बाजे बाजे[3] विविधि प्रकार। ढोल मृदग[4] मदन सहनार ॥७॥
लाये नकल अनूठी[5] भाड। बहुरुपिया रूप बहु माडि ॥
नटवर[6] नटे अग को मोडि। जाचक[7] जस[8] जपै[9] कर जोडि ॥८॥
यों उतसाह होय बहुभाय। आनद रह्यौ नगर मे छाय ॥
श्री जिनवर की पूजा ठई। दरवि[10] भाव विधि सो रिणरमई[11] ॥९॥
अर्घ[12] उतारि आरती करी। भाग[13] भगति सो श्रुति[14] उच्चरो॥
जज[15] जिण[16] सासन[17] गुर[18] के पाय। आणद सहित निजालय आय ॥१०॥
जाति भ्रात पुरजन परिवार। करि जोनार[19] जिमाए सार ॥
फिर कीनी मनुहार[20] विसाल। श्री फल[21] वीरा[22] दिएरसाल॥११॥
षुसी[23] होय रिणज निज घर गये। जीमनवार सराहत भये ॥
रचौ बीद मगल इहमान। भये भूरि तूर्य त्रिक ध्यान ॥१२॥
पुर परियण[24] देखत सुख भरे। इकटक नैन[25] जोरि करि षरे[26] ॥
उज्ज्वल जल सपराये[27] कुमार। पहराए पट[28] भूखण[29] सार ॥१३॥

---

१ वारागना = वेश्या, २ विभ्रम = आश्चर्य कारक, ३ बजने लगे, ४ मृदग = तवला, ५ वहुत वढिया, ६ अच्छे-अच्छे नट, ७ याचक = मागने वाले, ८. यश, ९. कहते, १० द्रव्य (जल चदन, अक्षत, पुष्प नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घ ये ८ द्रव्य हैं), ११ रची, १२ अर्घ उतारना, १३ भाव भक्ति = ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति में है, १४. स्तुति, १५ पूजाकर, १६ देव, १७ शास्त्र, १८. गुरु, १९. ज्योनार = जीमनवार, २० मनुहार = हृदयो को प्रसन्न करने वाली वार्ता, २१ नारियल, २२ पान आदिक, २३ खुशी, २४ नगर निवासी व कुटुम्बी २५. नयनो, २६. खैड, २७ स्नान कराया, २८ वस्त्र, २९ भूषण = गहने ।

सीस कसूमी मलमल पाग । लखि सिर पेच जगै अनुराग ॥
पुनि सेहैरा तिलक छवि देत । मरुपयठि[1] अजन दृगदुति[2] हेत ॥१४॥

काननि[3] मुक्ता[4] फल गल माल । जुगुनू की छवि करत निहाल॥
भुज भुज बधन कडे करलसै । अगुरिण अगुरिण मुदरी[5] वसै ॥१५॥

अग अग भूषण अति सार । अर जामा पटुका[6] मण[7] हार ॥
पहरे सोहत पेम कुमार । मानौ मैनतनौ[8] अवतार ॥१६॥

यो वरकौ बहुविधि सिगार । चली बरायत सोभ अपार ॥
हय[9] गय[10] रथ पायक सुख पाल । चढ़ि चढि चलै साह जुत
वाल ॥१७॥

चली मझोली[11] सुतर[12] सवार । वाजत छुद्र घटिका सार ॥
वाजे वजत चले वहु भाँति । आगे लाल निसान सुहात ॥१८॥

वोलत चले नकीव[13] अगार । दौडत वहु आसा वरदार[14] ॥
या विधि सो वहु सोभ समेत । पहुचे समसे सुखी णिकेत ॥१६॥

जोग[15] सथान कियौ विसराम[16] । पौषे सगजण[17] सब विधि ताम ॥
समधी करी घनौ सनमाण[18]। किए णेग[19] तिस दिवस प्रमाण ॥२०॥

---

१ रोरी से चेहरे पर लाल लकीरें करना, २ दृग=नेत्रो । ३ कानो, ४ मोतियो, ५ मुद्रिका=अगूठी, ६ कमर से वाधने का सुन्दर वस्त्र, ७ मनहार, ८ मैनका का शरीर, ९ घोडे, १० गज, ११ छोटी वैलगाडियाँ, १२ ऊँट का सा वडा एक जानवर, १३ नकीव, १४ आस वरदार, १५ योग्य स्थान, १६ विश्राम, १७ सवजन, १८ सन्मान, १९ नेगचार ।

भोर भये ज्येई[१] जोनार। तूर्यत्रिक ध्वनि सह सवार ॥
फैरि व्याह की विधि रिणरमई[२]। कामिरिण मिलि मगल धुनि
चई ॥२१॥
दुहुधा[३] जन मिलि मडप माहि। बैठे रिणज निज मन विहसाहि ॥
पडित होय तरणी विधि करी। सुभ सामिग्री आहुति[४] बरी ॥२२॥
इष्ट नमरणमय[५] मगल पाठ। कियो प्रथम दायक सुख ठाठ ॥
बहुरि बिवाह मत्र पढि सार। पारणग्रहन विधिकरी विचार ॥२३॥
वरको वररणी[६] सोवो[७] घनो। दीनन को बहुदान सुठनो ॥
समधी तथा बराती जेह। जथा जोग सब माने तेह ॥२४॥
हाथ जोरि बहु विरणती[८] करी। विनय भगति सो थुति[९] उच्चरी॥
दान मान जुत कीने विदा। आए निज घर हरषित[१०] ह्लदा ॥२५॥
पुरजरण[११] देषि[१२] मोद करि भरे। वीद बीदनी[१३] ग्रह[१४] अनुसरे[१५] ॥
परियरण[१६] आसा पूररण भई। उच्छव[१७] सहत बधाई ठई ॥२६॥

॥ दोहा ॥

जिन जप तप व्रत दॉरण[१८] सो, उपजायौ सुभ[१९] कर्म।
तिरणको विना प्रयास[२०] हो, मिले सहज सब[२१] सर्म ॥२९॥

इति श्री वैराग्योत्पति-काररण-भवसम्बन्धनिवाररण ब्रह्मगुलाल चरित्र मध्ये ग्रहप्रर्वत्ति तथा विवाह विधि वरनन रूप नवम सधि ॥९॥

---

१. जीमी, २ रची, ३ दोनो (बर और वधू) पक्षो के, ४ आहुति= होम की अग्नि मे घी आदि का डालना, ५. नमन=नमस्कार, ६ वधू, ७ शोभा, ८ विनती, ९. स्तुति, १० हर्षित, ११ नगरनिवासीजन, १२ देखि, १३ वीद=वर, बीदनी=वहू, १४ घर, १५ प्रवेश, १६ कुटुम्ब के लोग, १७. उत्सव, १८ दान, १९ शुभ, २० प्रयत्न, २१. शर्म=सुख।

॥ दोहा ॥

सुविधि[1] सुविधि ज्ञायक नमो, त्रिविधि त्रियोग[2] सम्हारि ।
सेस[3] चरित वरनन मुझे । होउ सहाय अवार ॥ १ ॥

॥ चौपाई ॥

वृह्मगुलाल परनि[4] परवार[5] । मारगत मरग[6] मे रली[7] अपार ॥
व्याह अपरकरि विधि विवहार । आपस मे वरतै धरि प्यार ॥२॥
श्री जिन पूजा गुर[8] की सेव । जिरग श्रुत[9] अवगाहन गहि टेक[10] ॥
ग्रह षटकर्म्म[11] तनो आचार । सजम[12] सहिति रिणवाहे सार ॥३॥
अरग सनादि[13] तप सक्ति समारग । करत यथा विधि रीति प्रमारग ॥
पात्र[14] तथा समकरुना[15] दान । देत प्रवर्तै सोम[16] सुथान[17] ॥४॥
यो रिणवसत क्छुयक दिन गये । गोना रोना[18] करि सुष लषे ॥
इस अवसर इक बनो उपाऊ। सुनो भविकजरग[19] मरग धरि चाउ ॥५॥

---

१. सुविधि—श्री पुष्पपदत (जैनियो के नव में तीर्थकर), २ मन-वचन-काय, ३ शेष, ४ परनि-विवाहकर, ५ परवार-कुटुबीजन, ६. मन मे, ७ रली-प्रसन्नता, ८. गुरु, ९ जैन शास्त्रो का स्वाध्याय, १० नियम, ११ ग्रहस्थो के ६ आवश्यक कर्म (जिन पूजा, गुरु उपासना, शास्त्रो का स्वाध्याय, सयम, तप और दान), १२. सयम (५ इद्रियो और मन को कावू में रखना) १३ अनसन, अवमौदार्य, वृत्त-परिसख्या, रस परित्याग विविक्त शैयासन और कायक्लेश ये ६ वाह्य तप है, १४ सुपात्र (दान देने के लिए उत्तमपात्र), १५ सम-करुणा, १६ शोभा "सुखसौं" ऐसा पाठ से० कू० की प्रति में है, १७ सुस्थान, १८ रोना (गोना के वाद फिर लडकी का श्वसुर ग्रह जाने की विदा को कहते हैं), १९ भव्यजन ।

॥ दोहा ॥

पूरण होते ससिर[१] रितु, मधुरित[२] आगम माहि ॥
तरु[३] बहु पतझर[४] भये, आए नवे उलाह[५] ॥ ६ ॥

जो[६] नृप हासिल कठिण करि, झीणे[७] होय किसान ॥
लघु हासिल ग्राहक[८] नृपति, आगम[९] मे सुख मानि ॥ ७ ॥

मौरे[१०] आये अम्ब[११] तरु, धरे पलास[१२] अगार[१३] ॥
जो सज्जण[१४] सुख मांण हो, दुरजण [१५]धरे विकार[१६]॥ ८ ॥

बेलि[१७] पसरित तरु[१८] कधपै, लिपटति[१९] भई बनाय ॥
त्यो ही प्यारी पीयकत[२०], सो लिपटी ये धाय[२१] ॥ ९ ॥

नारि उघारे रणेन[२२] जुग, बेलि पसारे पाण[२३] ॥
फूलन को सनमुख[२४] भई, अतर[२५] भाव समान ॥१०॥

---

१. शिशिर ऋतु, २ मघुर ऋतु, (बसत ऋतु), ३ पेड, ४ पत्तो से रहित, ५ उल्लास ६ ज्यो-जैसा, ७ झीर्णे-दु खी, ८ गाहक-ग्रहण करने वाला, ९ "आपस मे सुख मानि" ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है, १० मोरे-बौर, ११ आम के पेड, १२ ढाक, १३ अगार-लाल रग का फूल, "आगार" ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है, १४ सज्जन, १५ दुर्जन, १६ विकार-बुरे भाव, १७ बल्लरी, १८ तरुस्कध, १९ लिपटित, २० प्रियकत, २१. भागकर, २२ नयन युग, २३. पाणि-हाथ, २४ सन्मुख, २५ भीतरी भाव ।

आम मजरी[1] खादि[2] पिक[3], चेव माधुरे वेन[5] ॥
भृगी[6] मन मोदित भई, विरहिरा[7] लह्यो अचेन[8] ॥११॥

नर नारिरा के तन विपे पैठो काम[9] रिासक[10] ॥
गहे परस्पर हाथ को, विचरे होय अवक[11] ॥१२॥

जे पति मे ही विमुख[12] रुप, ते तिय[13] इस रितु[14] माहि ॥
मिलने को सनमुख[15] भई, मराहि[16] उमेद[17] वढाहि ॥१३॥

पीहर[18] मे थिति[19] करि रही, जे सु नवोढा[20] नारि ॥
पिय[21] मिलाप को चाहकरि, व्याकुल भई अपार ॥१४॥

नाज पेत[22] फूलत फलत, वहु विधि सोभा देत ॥
भूपति पथिक[23] किसारा को, वरतै[24] आराद[25] हेत ॥१५॥

भवर[26] कुसुम रस[27] पाराते[28], गुजत भ्रमत[29] निदान[30] ॥
उनमादित[31] ह्वै नारनर, करत मधुर सुर[32] गान ॥१६॥

---

१ बौर, २ स्वादि ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है, ३ कोयल, ४ बोलती है, ५ वचन, ६ भ्रमरी, ७ विरहिणी, ८ अचैन-मिलने को विह्वल, ९ कामदेव, १० रसिक, ११ अवक-निश्चल, १२ विमुख रूप-नाराज, १३ तिय-स्त्री, १४ ऋतु, १५ सन्मुख-तैयार, १६ मनहि, १७ उम्मेद, १८ पिता के घर, १९ रहना, २० नवोढा-नव विवाहिता, २१ प्रिय-पति, २२ खेत, २३ राहगीर, २४ बरतना, २५ आनद, २६ भ्रमर, २७ पुष्पपराग, २८ पानतें, २९ 'भ्रमर' ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है, ३० निश्चय, ३१ उन्मादित-कामदेव पीड़ित, ३२ स्वरगान।

हाव भाव विभ्रम लिऐ, हास विलास कटाक्ष ।।
करति भई निज नाह[1] स्यो, प्रमदा[2] समद[3] सराक्ष ।।१७।।

जे सुमाननो[4] नायका, धारि रही उर माण[5] ।।
ते या रितु[6] मे पीव[7] सो, मिली जोरि जुग पान[8] ।।१८।।

देस देस पुर पुर विपे, गाम गाम जणधाम[9] ।।
गीत नृत्य वादित्र[10] धुणि[11], होय रही सब ठाम ।।१६।।

विविध वस्त्र, आभर्न[12] सो, सजि सजि सब नर नारि ।।
रमे परस्पर प्रीति सो, मण धरि रली[13] अपार ।।२०।।

सब तिय सुहाग[14] वधावती, बरतै यह रितु सार ।।
महिमा याकी कहण को, हम ण[15] समर्थ लगार ।।२१।।

येरे पूर्व सखाण के, ब्रह्मगुलाल कुमार ।।
विविध स्वाग भरते भए, या रितु दिनन[16] मझार ।।२२।।

मानो विधना[17] आप ही, ब्रह्मगुलाल सुहोइ ।।
विविध स्वाग बदलन थकी, जगहि भ्रमावे सोय ।।२३।।

---

१ नाथ, २ प्रमदा, मदमस्त स्त्री, ३ समद सराक्ष-मद भरे नयनो के वाण, ४ समानिनी-बहुत मान करने वाली, ५ मान, ६ ऋतु, ७ पिय-पति, ८ युगपाणि-दोनो हाथ, ९ जन स्थान, १०. वादित्र-वाजे का साज, ११ ध्वनि, १२ आभरण=गहने, १३. रली-प्रसन्नता, १४ सुहाग-सधवा स्त्रियो के निश्चित श्रगार, १५ न, १६ दिनो मे, १७. विधाता ।

जौन[१] स्वाग[२] आस्त्र[३] करै, तौन[४] स्वाग तिस रूप ॥
दिखलाये तद्रूप[५] करि, लखि भूले जन भूप ॥२४॥

निज चतुराई सिफति[६] करि, मात[७] करै सब लोग ॥
बहु जन विस्मय वत ह्वै, भूलि जाहि सब लोग ॥२५॥

जहा तहा इस चरित की, होय रही तारीफ[८] ॥
जौं[९] लग पूरब पुन्य कौ, उदै[१०] ण[११] ह्वै तकलीफ[१२] ॥२६॥

इति श्री वैराग्योत्पत्ति कारण भव-सबंध निवारन श्री बृह्मगुलाल-
चरित्र-मध्ये बसत ऋतु आगमन महिमा बहुरि ब्रह्मगुलाल
स्वाँग-भरन-बरनन रूप दसम सधि ॥ १० ॥

१ जिनका, २ स्वांग रूप बनाना, ३ आश्रय, ४ तौन-तिसका, ५ तद्-रूप-उसी रूप, ६ सिफत, ७ मात-आश्चर्य, ८ तारीफ-प्रशंसा, ९ जब लगि, १० उदय, ११ न, १२ कष्ट।

॥ दोहा ॥

सीतल[1] जिनके पद जजो[2], मिटौ मोह[3] का छोह[4] ॥
जणम[5] मरण दुख व्रत न कौ, छिप्तावौ[6] आरोह ॥१॥

॥ चौपाई ॥

व्रह्मगुलाल चरित अवलोइ[7] । कियो विचार प्रधान[8] बहोय ॥
राजादिकन सराह्यो[9] थको । उद्धत[10] भयो मान पद छको ॥२॥

होय षिजालति[11] इसकी जेम । सार उपाय कीजिये तेम ॥
यह वाणिक श्रावक वृतधार । करै णही मृगया[12] अधिकार ॥३॥

सिघ[13] स्वागते हिरन सिकार[14] । करत अकरत[15] होय बहु खार[16] ॥
यह विचारि सिखयो नृप पूत । पेरक[17] भयो वचण के सूत ॥४॥

छते[18] भूप के कही कुमार । ब्रह्मगुलाल सुनो हम यार ॥
स्वाग सिध को लावो खरौ । हऊ[19] बऊ णिज कारज भरो ॥५॥

सुणत[20] कही मे ल्यायो सोय । जो क्रत[21] दोप माफ[22] हम होय ॥
पूर्वापर विचार णहि करौ । सहसा वचण जाल मे परौ ॥६॥

---

१ शीतल = भगवान शीतल नाथ (जैनियो के १०वे तीर्थंकर), २ यजो, ३. मोहनीय कर्म, ४ क्षोभ, ५. जन्ममरण के दुखो को, ६ नाश करो, ७ अवलोकि, ८ प्रधान = मन्त्री, ९ प्रशसित १० उद्धत = ढीट, ११ खिजालत = नीचा देखना, १२. मृगया = शिकार, १३ सिह, १४. शिकार, १५ नही करना, १६ ख्वार = बेइज्जती, १७. प्रेरक, १८. सामने, १९. हऊ वऊ = जैसा चाहिए तेसा, २० सुनत, २१ किया गया अपराध, २२ मुआफ = क्षमा ।

सुनि भूपति आरे[१] करि लही । होनहार वस सुधि[२] बुधि गई ॥
वचन[३] बध आपस मे भये । निज निज काज[४] करण उमगये[५] ॥७॥
ब्रह्मगुलाल गये णिज[६] थान[७] । धारत मण मे सोच अमान ॥
मित्रन सौ मिलि सिंघ सरूप । निरमायौ[८] मानो भ्रम[९] कूप ॥८॥
बाघवर[१०] ले तेलरू तोय[११] । कियो सुकारज जोग समोय ॥
ताहि पहरि हरि[१२] आकृति करी । नख सिख[१३] लो सव विधि[१४] अनुसरी[१५] ॥९॥
वाके[१६] दिढ[१७] तीक्षण नप[१८] जास । परसन करे मास मे वास ॥
जाको अग्रभाग[१९] अनि थूल[२०] । मानो गज सिर गिर छय मूल ॥१०॥
बदण[२१] भयाणक चपटी नाक । गज गण भगे मुणत[२२] मुख हाक[२३]॥
तीक्षण दाड जीभ विकराल[२४] । मानो तीक्षण जम[२५] करवाल[२६] ॥११॥
चिरम[२७] समाण अरुन[२८] जिस नेन[२९] । कूर[३०] चितोनि[३१] हरे सब चेण ॥
जुगल[३२] श्रवण[३३] ओछे[३४] पुनि पडे[३५] । नेननि निरषि[३६] पसू गण हडे[३७] ॥१२॥

---

१ ध्यान से, २ होसहवास, ३ वचनो मे वध गए, ४ कार्य करना, ५ उत्साहित, ६ निज, ७ स्थान, ८ वनाया, ९ भ्रम कूप = संशय का कुआ, १० सिंघ की खाल, ११ तोय = पानी, १२ शेर की सूरत, १३ नख-शिख = समस्त शरीर की वनावट, १४ सब तरह से, १५ शेर जैसी की, १६ उसके, १७ दृढ, १८ नख, १९ आगे का हिस्सा, २० स्थूल = मोटा, २१ वदन, २२ सुनत, २३ हाँक = धाड, २४ भयानक, २५ यम = काल, २६ तल्वार, 'करमाल' ऐसा पाठ 'ग' प्रति में है, २७ चिलम, २८ अरुण = लाल, २९ नयन = नेत्र, ३० कूर, ३१ चितवन, ३२ युगल, ३३ कान, ३४ छोटे, ३५ खडे, ३६ निरखि, ६७ भयभीत ।

छीन[१] उदर[२] कस[३] कमरि सुजास, दीरघ[४] पूछ सीस[५] पै वास ।।
उछलनि[६] तथा धडकरिण[७] जास । हऊ वऊ सब सिघ विलास[८] ।।१३।।

देखि स्वरूप अचिरजे[९] लोग । भागे बालक भय सजोग[१०] ।।
असो सिघ स्वाग धरि सोय । साहस सिपित[११] वत बहु होय ।।१४।।

डेढ पहर रिणम[१२] गई सुजान । राज द्वार प्रति कियो पयान[१३] ।।
नगर लोग धाए करि सोर[१४] । जाय छुए नृप[१५] सेवा सब ठोर ।।१५।

।। दोहा ।।

राजलोक ते सभा सब, ठई एक दम होय ।।
ज्यो विन पवन समुद्र जल, वोलि सकै नहि कोय ।।१६।।

भूपति बाधव वर्गजुत, सचिव[१६] प्रधान पयत्त ।।
तथा राव[१७] उमराव सब, बैठे सभा विचित्र ।।१७।।

चारण[१८] ऊँचे सुरनि ते, बरणत[१९] सुजस[२०] विसेस[२१] ।।
नटे जहा नट[२२] नायिका[२३], बदलि बदलि बहु भेस[२४] ।।१८।।

---

१ पतला, २ पेट, ३ पतली, ४ दीर्घ = बडी, ५ सिर, ६ छलाग मारना, ७ धाड मारना, ८ विलास, ९ आश्चर्य मे हो गये १० सयोग = कारण ११ शिफ्त = आश्चर्य, १२. निशि = राप, १३ प्रस्थान, १४ शोर, १५ 'जाइ ठए सुसमा नृप ठौर' ऐसा भी पाठ "ग" प्रति मे है, (अ) राजलोक = राज-द्वार, "राज खोय" ऐसा पाठ "ग" प्रति मे है, १६. प्रधान मन्त्री, १७. विशेष पद विभूपित, १८ राजाओ के यहाँ स्तुति करने वाले, १९ वरनन, २० सुयश, २१. विशेष, २२ मुख्य पात्र, २३ स्त्री प्रधान पात्र, २४ भेष, ।

॥ चौपाई ॥

सिंघ[१] स्वाग आवन की घरी। वहा प्रधान कूट[२] कृति करी ॥
राजा सो मिलि इक मृगवाल[३]। सभा माहि आन्यो ततकाल ॥१९॥
ब्रह्मगुलाल सिंघ के भेस। जाय सभा कीनो परवेस[४] ॥
देखत चक्रत[५] भए सब जना। विस्मयवत[६] भयौ नृप घना[७] ॥२०॥
सनमुख[८] पडौ हिरण अवलोय। मनहि खिजालति[९] घरी बहोय[१०] ॥
सोचत बुरी करी महाराज। हतत[११] तजत होय अकाज[१२] ॥२१॥

॥ दोहा ॥

इस अवसर[१३] परधाण ने, पैरो[१४] राजकुमार ॥
कहत भयौ इस सिंघ प्रति, ऊँचे सुरनि[१५] उचार ॥२२॥
सिंह[१६] णही तू स्याल है, मारत नाहि सिकार ॥
वृथा जणम जननी दियो, जीतव[१७] कों धरकार ॥२३॥
सुणत[१८] क्रोध करि तन जलौ, सहि ण[१९] सकौ तिस बैन[२०]॥
उछरि कुमर के सीस पै दई थाप दुख दैण ॥२४॥
प्राशुक[२१] भयौ कुमार तन। रोल[२२] भई तहा भूरि ॥
णिकरि[२३] सिंह वाहिर भयो। मित्र[२४] वर्ग करि पूर ॥२५॥

---

१ सिंह, २ छल, कार्य ३ हिरण का बच्चा, ४ प्रवेश, ५ भौचक्के, ६ आश्चर्यवान, ७ बहुत अधिक, ८ सनमुख=सामने, ९ अपमान १० बहुत, ११ मारने और छोड़ने, १२ अकार्य्य, १३ प्रधान मन्त्री, १४ प्रेरणा दी, १५ ऊँची आवज, १६ नहीं, १७ जन्म, "जीवन को धरकार" ऐसा पाठ भी "ग" प्रति मे है, १८ सुनत, १९ न, २० वचन, २१ घायल, २२ हल्ला, २३ निकलकर, २४ साथी दोस्तो सहित ।

धिगधिग होय करवाय[1] को, या के वस ह्वै जीव ॥
अनुचित उचित रा[2] वे[6] वही, सचे[4] पाप अतीव[5] ॥२६॥

इति श्री वैराग्योत्पत्ति कारण भव सम्बन्ध निवारण श्री ब्रह्मगुलाल-चरित्र-मध्ये अदेशकपन राजपुत्र प्रेरनात सिंघ-स्वांग लामन राजपुत्र वधवरणनरूप ग्यारमी संधि संपूर्ण ॥ ११ ॥

१. कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ), २ नहीं, ३. देखना, ४ संचय, ५. अतीव = बहुत ज्यादा ।

॥ दोहा ॥

सिरीयास[1] जिन पद कमल, मै ध्याऊ करि धेय[2] ॥
जासु[3] सुलप[4] से काल मे, पाऊ वछित[5] सेय[6] ॥१॥

॥ चौपाई ॥

ब्रह्मगुलाल हिया[7] मे हि सोच। आयौ अति दारुण[8] सुख[9] मोच ॥
नृप अपजस[10] पचरण भय जोग। तथा पाप[11] की भय अमनोग[12]॥२॥
हूजे तण[13] मन विकल[14] विसेस[15]। दीरघ[16] स्वास लेय मुख[17] नेस ॥
खाण[18] पाण की रुचि सव गई। अधोवदन[19] मूकमरण[20] ठई ॥३॥
दिण[21] धधा[22] निस[23] निद्रा नास। रुचै णाही[24] मण[25] भोग विलास ॥
कसी[26] काय व्यापी तण[27] पीर। पछितावै ण[28] धरे क्षिन धीर।४।
सोचे कहा कियो हम एह। इह परभव[29] अपजस दुष गेह[30] ॥
बुधि[31] जण मोहि णिवारौ[32] घनो[33]। मै ण[34] रह्यो दुरमति[35] रस सनौ[36] ॥५॥

---

१ श्रेयास नाथ (जैनियो के ११वें तीर्थंकर), २. ध्येय = उद्देश्य, ३ जासूं, ४ स्वल्प = वहुत थोडे समय मे, ५ वाछित, ६. फल, ७ हृदय में, ८. कठिन, ९ सुखनाश, १० अपयश, ११ पातकी (हत्या का दोषी), १२ अमनोज्ञ, १३. तन, १४ दुखी, १४ विशेष, १६ दीर्घ श्वास = हाय हाय सहित लम्वी साँसे लेना, १७. सुस्त चेहरा, १८ खाने पीने, १९. नीचे को चेहरा किये, २० क्षुधा चली गई, २१ दिन, २२ रोजगार, २३. निशा = रात, २४. नही, २५ मन, २६ दुवली, २७ तन पीर, २८. न, २९ इस लोक तथा परलोक, ३० दुखमयी, ३१ वुद्धिजन, ३२ निवारौ = रोका, ३३. वहुत ज्यादा, ३४. न, ३५ दुर्मतिरस = वुरे कामो में मन लगाने वाला, ३६ वुरी तरह से लिप्त हुआ।

ऐ मुमित्र ह्वै सत्रु भये। पाप करम पेरक[१] पर[२] नये ।।
सार[३] उपाय कहा अब करौ। जाकरि अतरदाह[४] सुहरो ।।६।।

॥ दोहा ॥

इस भय चिता ज्वाल तै, दाहित[५] याहि निहार ।।
सग सखा इस भाति सौ, बोले बचन उचार ।।७।।

॥ सोरठा ॥

एहो ब्रह्मगुलाल। कहा सोच सायर परे ।।
यह झूठा भ्रम जाल। त्यागि स्वस्थ[६] निज चित करौ ।।८।।
राज हुकम[७] अनुकूल। हम तुम मिलि कारज[८] करौ ।।
या मे होय न सूल[९]। बचन निवाहक[१०] भूप ह्वै ।।९।।
न्याय तजे जो राय[११]। सोच करै कहा होयगो ।।
सुष[१२] दुष[१३] ह्वै जो भाय। साहसीक[१४] है सो सहौ ।।१०।।
बोले ब्रह्मगुलाल। राजतनौ[१५] कछु भय णही ।।
जाये प्रान धन माल। परि[१६] परभव[१७] विगरो डरो ।।११।।

---

१ प्रेरक, २ हो गए, ३ श्रेष्ठ, ४ अतर्दाह=हृदय के अन्दर जलने वाली दाह, ५ जलाया हुआ "दग्धित" ऐसा पाठ "ग" प्रति मे है, ६ सावधान, ७ आज्ञा, ८. कार्य, ९. कष्ट—दण्ड, १० वचन निवाहने वाला ११ राजा, १२ सुख, १३ दुख, १४ हिम्मत वाला, १५ राजा की ओर से, १६ किन्तु, १७, परलोक को गति, "परियन भव विगरो डरो" ऐसा पाठ "ग" प्रति मे है, इसका अर्थ कुटुम्बीजनो तथा मेरा जीवन विगड गया=ऐसा भाव है।

यह हिंसा अघमूल[१] । अघतैं दुरगति[२] होति है ॥
सो हम कीनी भूल । यह लषि[३] चित धीर रा धरे ॥१२॥

यह सुनि सखा विचार । कही कही अजगति[४] तुमो ॥
यो न चल्यौ विवहार[५] । होय अधरमी[६] सब जना[७] ॥१३॥

जो न समे[८] जाको जिसो[९], होय जोरा[१०] आचार[११] ॥
ताको करते तास कौ, लगै रा[१२] कोरा[१३] लगार[१४] ॥१४॥

क्षत्री ररा[१५] सनमुष[१६] चढे, मारे सत्रु[१७] निसक[१८] ॥
जो राहि[१९] मारें अरिरा[२०] को, आवै तुरत कलक[२१] ॥१५॥

ररा सनमुख हति अरिराको, मारि पाये[२२] सुरवास[२३] ॥
लोक[२४] विदित यह बात है, तुम क्यो होउ उदास ॥१६॥

जे अन्याय प्रवृति[२५] करि, करे जीव का घात[२६] ॥
ते दुरगति[२७] दुष[२८] सहत हैं, बाधि मारि बहु भाति ॥१७॥

---

१ पाप का प्रधान कारण, २ खोटी गति=नरक आदि, ३ लखि=सोच कर, ४ जगत् में नही होने योग्य, ५ व्यवहार, ६ अधर्मी=पापी, ७ मनुष्य, ८ समय, ९ जैसा, १०. जौन सा भी, ११ कर्त्तव्य, १२ न, १३ कोई भी, १४ पाप, १५ रन=युद्ध, १६ सन्मुख, १७. शत्रु, १८ निशक=विना किसी सोच विचार के, १९ नही, २०. अरिन=शत्रुओं को, २१ दोष, २२ पावे, २३ स्वर्गगति, २४ जगत में प्रसिद्ध, २५. प्रवृत्ति=कार्य करना, २६ नाश, २७ दुर्गति=खोटी गति (नरक और तिर्यंच गति), २८ दुख ।

नारी दीण[1] अधीन[2] पसु, आयुध[3] विण असहाय ॥
सापराध हू हननते, हिंसा होत बनाइ[4] ॥१८॥

जे समर्थ सत्रू प्रवल, तिणे[5] हते[6] णहि[7] पाप ॥
हते[8] को हनने विषे, बैठि रहे क्या आप[10] ॥१६॥

सापराध के हनन मे, दोष न कह्यौ लगार ॥
तुम निज मन निश्चल करौ, त्यागि सकल भ्रम भार ॥२॥

॥ चौपाई ॥

इमि मुनि कही कुमार । लोको क्ति[11] तुम भाषी यार ॥
सत्य रुपणा[12] हेयो कदा । णिरावाध[13] सुखदायक सदा[14] ॥२१॥

जो मै कहू सुनो चित देइ । बुद्धि विभव करि हिये[15] गुणेय[16] ॥
निद्राविकथा तथा कषाय । नेह मोह बस भयास भाय ॥२२॥

करे प्रान[17] विपरोपन जीव, धारे हिंसा दोष सदीव ॥
या हिंसा करि नरक निवास, पाप सहे बहु दुष अर त्रास ॥२३॥

---

१ दीन-गरीब, २ परबस पशु, ३ बिना हथियार, ४ "हिंसा होइ वृणाइ" ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है, ५. तिन्हे उनको, ६. हतें-मारने, ७ नहि, ८ हतो-हिसक-घातक, ६. मारने, १० भगवान, ११ लोकोक्ति-लोगो मे कहावत (हते को हनिए, पाप दोष नही गिनिए" यह आम कहावत है) १२ सत्य रुपना-वास्तविकता को लेकर कथन, १३ निरावाध-वाधा रहित, १४. हमेशा १५ हृदय मे, १६. ग्रहण करे। १७ प्राणो-स्पर्शन, रसना, धारण, चक्षु, कर्ण, मन, वचन, काय, श्वासोच्छास और आयु ये दस प्राण हैं) का कष्ट देने पर अलग करना।

जे सुविचक्षण[1] इन करि हीन । वरतै सावधान विधि[2] लीन ॥
होत प्राण[3] विपरोप न जहा । हिंसा दोष लगै नहिं तहाँ ॥२४॥
मति अति क्रोध माण[4] वस थाय । किये माण विपरोपन धाय[5] ॥
ताकौ फल अति दारुन[6] मोहि[7] । दुरगति परिदुख सहना होहि॥२५॥
लोकोक्ति[8] अरु गेय स्वरूप[9] । कहूँ वर्ण[10] कहू होय विरुप[11] ॥
ताते आण[12] कहनि[13] करि गोन[14] । पढो जिनागम[15] पकरौ मौन ॥२६॥

इति श्री वैरागोत्पत्ति कारन्भवसबध निवारण श्री वृह्मगुलालचरित्र मध्ये श्री वृह्मगुलाल सोच मित्रणिज जुक्ति करि समझावण कुमार प्रतिउतर वरण रुप बारहमी सधि सपूर्ण ॥१२॥

---

१ अच्छी तरह से होशियार, २ शास्त्रीय क्रियाओ मे लीन रहता हो, ३ प्राणो का नाश, ४ मान-घमड, ५ बडी शीघ्रता से, ६ बहुत कडा, ७. मुझे, ८ लोकोक्ति, ९ ज्ञेय स्वरूप-किसी का वास्तविक रूप, १० ठीक, ११. अन्य रूप, १२ अन्यो का, १३ कथानिको, १४ गौण-अमुख्य, १५ जिनागम, जिनेन्द्रदेव के कहे शास्त्र, १५ मौन-चुप रहना, (श्रद्धा करना)

॥ दोहा ॥

बासव[१] जाके वास को, बाछंत है दिण[२] रेणि[३] ॥
वास[४] पूज्य जिनके चरन, नमो सदा सुख देण ॥१ ॥

अब भूपति णिज[५] पुत्र कौ, हतौ सिंघ[६] करि देखि ॥
दूरि भऐ अवमाण[७] सब, व्याकुल भयौ विशेख[८] ॥२॥

॥ चौपाई ॥

मूर्छा[९] पाय[१०] धरणि[११] पै परौ। रहत चैतना तण[१२] अनु सरयौ ॥
सुणे न सूघे लखै न कोय। उधरे[१४] णैन[१५] भयाणक[१६] जोय ॥३॥

डरे समाजन विह्वल भए। सब अवसान खता[१७] ह्वै गये ॥
पीटे[१८] मुड पुकारे जोर। फैलि रह्यो दस दिस मे शोर ॥४॥

कियौ घणोन[१९] सीत[२०] उपचार। चदण जल पवनादि प्रचार ॥
ताकरि राय चेतना लही। उदयागति[२१] कछु जायन कही ॥५॥

सोचै राय कहा यह भयौ। मौ जीवन को सरवस[२२] गयौ ॥
पुत्र विहीना घर किस काम। पुत्र बिना नहि सोहै वाम[२३] ॥६॥

---

१ इन्द्र, २ दिन, ३. रात, ४ वासपूज्य जिन (जैनियो के १२वें तीर्थंकर), ५ निज, ६ सिंह, ७ हिम्मत, ८ विशेष, ९. बेहोशी, १० खाय, ११. पृथ्वी, १२ तन, १३ सुने, १४ खुले हुए, १५ नयन, १६. भयानक, १७ समाप्त, १८ सिर धुनने लगे, १९ वहुत अधिक, २० शीतलता पैदा करने का कार्य, २१. कर्मों के उदय आने की स्थिति, २२ सर्वस्व, २३ स्त्री।

पुत्र विना धन भोगै कौन[1] । राज सम्पदा वसुधा[2] जोन ॥
पुत्र विना को सेवा करै । सीस[3]निवावत मरण[4] कौ हरै ॥७॥
सूनौ भयौ आज घर वार । दाहै विना पुत्र परिवार ॥
मै पूरव "ऐसे" कहा पाप । उपजाओ दायक[5] सताप[6] ॥८॥
तातै पुत्र विछोहा[7] भयौ । वचन[8] प्रतीत दुस्सह[9] दुख लयौ ॥
ब्रह्मगुलाल महानिरदई[10] । मारत कुमर न करुना लई ॥९॥
मै इन वडिन[11] साथ उपकार । कियौ कहे कहा होय अवार ॥
मो इण सव विसारिकरि[12] दियौ । जावत जीवन दुखी मोहि कियौ ॥१०॥
जो मै अव या सग घटि[13] करौ । अजस[14] भार अघ[15] सिर पर धरौ ॥
जो कछु होनी[16] ही सो भई । अव क्यो व्याधि[17] उपामे नई ॥११॥
यो भूपाल समझि करि रह्यौ । काऊ[18]सूण[19] कछू तिण[20] कह्यौ ॥
परि[21] उर[22] अतरदाह[23] विसेस[24] । सुथिरे[25] होय परनाम[26] न लेस ॥१२॥
देखि विकल अति मत्री कहै । अवसर पाय वचण[27] को वहै ॥
भो राजेन्द्र सोच[28] करि कहा । कारज[29] होय होय दुप[30] महा ॥१३॥

---

१ कौन, २ पृथ्वी, ३ मस्तक, ४ मन, ५ देने वाला, ६ अति कष्ट, ७ मरण, ८. वचनो से न कहा जाने वाला, ९ असहनीय, १० निर्दयी, ११ पिता आदि के सग, १२ याद नही करके, १३ बुराई, १४ अयश, भार, १५ पाप, १६ होनहार भवितव्यता, १७ झगडा, १८ किसी ने भी, १९ न २०. उन्होने, २१ परन्तु, २२ हृदय, २३ भीतर-भीतर जलना, २४ विशेष, २५. सुस्थिर, २६. परिणाम, २७ वचन, २८ चिंता, २९ कार्य, ३० दुख।

॥ दोहा ॥

जो[१] न भाति जा[२] देस मे, जोग[३] समे जो काज[४] ॥
होणहार[५] सो ह्वै सही, चुके कि[६] किये इलाज ॥१४॥

दुरणिवार[७] भवतव्यता[८], मेटि सके[९] णहि कोइ ॥
अकस्मात मुह[१०] आगली[११], आणि[१२] षडी[१३] ह्वै सोय ॥१५॥

वडे बडे समर्थ जन, तिन ऊपर इह होय ॥
अपना अमल[१४] चलावती, हरि[१५] निस वरतै सोइ ॥१६॥

अतहपुर[१६] सब सोग[१७] करि, व्याकुलता अधिकाय ॥
तिण[१८] को धीरज[१९] देइ करि, सतोषौ अब राइ ।१७॥

सोग[२०] किये जो बाहुडे[२१], सोग भलौ सब ठाम[२२] ॥
किये सोग णहि बाहुडे, तो करनौ किस काम ॥१८॥

जनमत[२३] सग लायौ नही, मरत न सग ले जाय ॥
सदा अकेलो दुईन[२४] मे, बरतै चेतण[२५] राय ॥१९॥

इम मत्री वचन ते, राय होइ प्रति[२६] वोध ॥
परियण[२७] सब बोधित किये, कहि थाथक[२८] अविरोध ॥२०॥

---

१. जिस, २. जिस, ३. जितने, ४ कार्य, ५ होनहार-होनी, ६ क्या, ७. दुर्निवार, ८ होनहोर, ९ नहिं, १०. मुख, ११ आगे, १२. आनकर, १३. खडी, १४. अधिकार, १५. दिन-रात, "अहनिस" ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति में है, १६ रनवास, १७ शोक, १८ तिन्हे, १९ धैर्य, २० शोक, २१. कल्याण, २२ स्थान, २३ जन्म, २४ दोनो (जन्म तथा मरण) समयो मे, २५ जीव २६. ठीक-ठीक ज्ञान होना, २७ परिवार के जन, २८ शिक्षा-सीख ।

सावधान लखि भूप मन, वोलौ सचिव विचार ॥
महाकृतघ्नी[1] अधमतर[2], वृह्मगुलाल कुमार ॥२१॥

॥ चौपाई ॥

राखन जोगण[3] पुर के माहि, मारग[4] जोग ठीक सक[5] नाहिं ॥
एक उपाय याद मो भयौ, कहो कहण[6] कौ अवसर भयौ ॥२२॥

॥ छन्द ॥

मुणि[7] स्वाग तनो आदेस । दीजै प्रमादहर[8] वेस[9] ॥
जो आयस[10] सीस चढावै । मुणि स्वाग धारि करि आवै ॥२३॥
तो देण[11] कहौ वरदान । जाचत[12] ह्वै दड सयान[13] ॥
जाचण पै मन नहिं लावै । कहूँ स्वाग वदल घर जावै ॥२४॥
तो भी दे दंड[14] सथाना । तुम को णहिं[15] रचक[16] हाना[17] ॥
जो आयस भूपर डारै । मुनिवर कौ स्वागण[18] धारै ॥२५॥
तौ निग्रह[19] जोग सहीजू । मै साची वात कही जू ॥
कै पुर तजि दूरा[20] जैहे[21] । कै कुमरतनी[22] गति लैहै ॥२६॥

---

१ किये हुए उपकार को नही मानने वाला, २. नीचतर, ३. योग्य, ४. योग्य उपाय, मारण जोग" ऐसा पाठ भी 'ग' प्रति में है, किन्तु "मारग जोग" यह पाठ अधिक ठीक, तथा रचियता का आशय इससे मालूम पडता है। ५ सदेह, ६ कहने, ७. मुनि, ८ सव प्रकार के प्रमादो को दूर करने वाला, ९ वेप, १०. आज्ञा, ११ देने, १२ याचत, १३ योग्य, १४. सजा, १५. नहिं, १६ थोडी सी भी, १७ हानि, १८ न, १९ दड, २० दूरस्थान, २१ जायेगा, २२. मृत्यु।

॥ दोहा ॥

इमि मत्री के वचन सुनि, भूप करै परमान[1] ॥
त्रतिय[2] पुरुष जानै नही, अतरभाव[3] मलान[4] ॥२७॥

इति श्री वैराग्वोत्पत्ति-कारन-भव-सम्बन्ध निवारन श्री ब्रह्मगुलाल-चरित्र-मध्ये राजा-सोग-मन्त्री-वचन तै उपसम, बहुरि मन्त्री राजा सो मुनि स्वाग प्रेरक वचन राजा प्रमान निरूपन तेरम सन्धि सम्पूर्ण ॥१३॥

१ स्वीकार, २. तृतीय, ३. हृदय के भाव, ४ अशुभ ।

॥ दोहा ॥

विमल[1] वचन जिन विमल[2] कै, विमल[3] बोध दातार ॥
सरधा[4] करि जो होत है, ग्यायक[5] ग्येयाकार[6] ॥१॥

॥ चौपाई ॥

भूप बुलायौ वृह्मगुलाल । आवत आप नवायौ भाल[7] ॥
देखत ताहि अदेगक[8] भयौ । मधुर[9] भाव सहत वच[10] चयौ॥[11]२॥

भो कुमार तुम कीनी बुरी । याते हम शुधि[12] बुधि सब दुरी[13] ॥
अतरदाह[14] दहै हम दैह । काऊ विधि न उपसमे[15] तैह ॥३॥

सो तुम मुणि को स्वाग करेऊ । हमहि सार सबोधरण[16] देऊ ॥
विणसै[17] जो अतर गत दाह । अर कछु इक दिण[18] होय णिवाह ॥४॥

सुणि[20] कुमार अणबोलौ[21] रह्यौ । नृप असाधित[22] आयस कह्यौ ॥
पुनि अपराध थकी[23] भयधारि । आरे[24] करी कुमर तिहिं वार ॥५॥

आप सगृहजुत सखा मिलाय । नृप आयस कहि आप कहाय ॥
जो मुझ चाही घरहि णिवास[25] । तौ पुरघन[26] ग्रह छोडौ आस ॥६॥

---

१ निर्दोप उपदेश, २ भगवान विमलनाथ (जैनियो के १३वें तीर्थकर) ३. आमत्मज्ञान, ४ श्रद्धा, ५ ज्ञायक, ६ ज्ञेयाकार, ७ मस्तक, ८ आज्ञा ९. मीठे भाव से, १० वचन, ११ कहो, १२ होश-हवास, १३ चली सी गई, १४. भीतरी आग, १५ शान्त होना, १६ कल्याण की ओर प्रेरणा १७ विनसै, १८ दिन, १९ निर्वाह, २० सुनि, २१ आने वाला, २२ जिसकी अब तक साधना नही की गई, "नृपति प्रसायन आयस कह्यौ" ऐसा पाठ भी 'ग' प्रति मे है, २३ अपराध के वोझ से ढका हुआ, २४ मानली, २५ निवास, २६. नगर सम्पत्ति और मकान ।

चलौ अपरपुर[१] करै रिगवास[२]। जहा न होय भूप की त्रास ॥
जहा[३] रहै द्वै विधि को भोग। कै वरणवास[४] कै ग्राग[५] वियोग ॥७॥

यह सुरिग[६] गृह[७] जरग विह्वल भये। सव ग्रवसारग[८] भूलि करि गये ॥
चाहि रहे या मुख की ग्रोर। ग्रतरग पायो दुप घोर ॥८॥

देपि दसा इरग[९] की दुपभरी। वोले मरता सुहृदता[१०] धरी ॥
होउ अधीर न धीरज धरौ। पूर्वा पर[११] विचार मनि करौ ॥९॥

जौ तुम रिग कसि[१२] वसौ पुर ग्रारग[१३]। छोडौ गृह धन धान्य दुकान।
इसौ चरम काकिनी[१४] समारग[१५]। कौरग[१६] थान[१७] जहा होइ
रग[१८] हानि ॥१०॥

भूप हटी सो करहि रिगदान[१९]। पलटि सकै कौ ताको वान[२०] ॥
स्वाग धरग मे कोरग विगार, भूप कह्यो करि रिगवसौ[२१] यार ॥११॥

॥ दोहा ॥

विष ग्रकुरा नपरगतै[२२], सहज विदारौ[२३] जाय ॥
ता पर फरसी[२४] वाहनी[२५], कौन सयान[२६] प भाय ॥१२॥
जौ नहि करि हौ नृप कह्यो, भजि[२७] जैहौ पुर छोरि ॥
तो तुम सकल कुटुव सिर। परि है ग्रापद जोर ॥१३॥

इसे बचन सुनि मल्ल के, बोले बृह्मगुलाल ॥
भोलापरण की बात तुम, भाषी यार कमाल ॥१४॥

॥ चौपाई ॥

जाकू चाहे सुर्ग सुरेस[१] । जाकू चाहे सोम दिरणेस ॥
जाकू चाहत त्रिभुवन इद्र । रिणस[२] वासर ध्यावत ग्रहमिद्र[३] ॥१५॥
जगत पूज्य मुरिण[४] वरपद[५] सार । सब विधि[६] बध विदारणहार[७] ॥
ता पद धारि भृष्टि क्यो होय । भृष्ट भए सम अधम[८] रण[९] कोय ॥१६॥
जो मुरिण भेष धारि चिगि[१०] जाय । सोजरण[११] भववन भृमरण कराय ॥
भेष भ्रष्ट ह्वै[१२] रणरकै गऐ । कोट्या[१३] मुरिण जिरण[१४] श्रुत वरनऐ ॥१७॥

जो तुम कहौ करो मे सोय । मेरी ढीलरण रचक कोय ॥
धरौ भेष बदलौ राहि[१५] कोय । जो कछु होरणी होय सुहोय ॥१८॥
यह सुनि मल्ल आदि ग्रह जना । कहन लगे सब ह्वै इक पना ॥
करौ भूपभाषी अवजाह । आगे होइ सुदेषी[१६] जाय ॥१९॥

॥ दोहरा ॥

इम सुनि कुमर प्रिया प्रते, कहत भऐ सुख भौरण[१७] ॥
तुम अपरणे मन की कहौ, पकरि रही क्या मौरण[१८] ॥२०॥

---

१ इन्द्र, २ निशवासर=रात दिन, ३ सौलहवें स्वर्गों से ऊपर के देव, जो स्वय इन्द्र हैं, ४ मुनिवर, ५ सर्वश्रेष्ट पद, ६ कर्मवध, ७ नाश करने वाला, ८ नीच, ९ न, १० छोडना, ११ सो जन, १२ नरकै, १३ करोडो मुनि, १४ जिनश्रुत-जैन शास्त्र, १५ नहि, १६ सुदेखी, १७ वचन, १८ मौन-चुप्पी ।

इम सुरिण सब जन कहि उठे, पहले ही करि सौर[१] ॥
जो हम कहे सु वुह कहै । वह कहा कहि है और ॥२१॥

॥ चौपई ॥

और तियरण[२] की सिषई[३] सोय । बोली नार गहगही[४] होइ ॥
जो ए कहे कहौ मै सोइ । और अधिक बुधि नाही मोइ ॥२२॥
इरण[५] सब मरण[६] हुतौ विचार । नृप आयस करि चुकै अवार[७] ॥
तौ फिरि लेय कुमर समझाइ । हौत माफक[८] बुधि बल थाय ॥२३॥
जे रणर[९] चतुर विवेकहि धरै । आरण[१०] पूछि तिरण[११] कारज[१२] करै ॥
चूकै होरण[१३] हार बस होय । कहै औरते औरहि सोय ॥२४॥
करि यही मतै ठीक सब लोय । निज निज सेज रहे सब सोय ॥
वृह्मगुलाल आपरणी सेज । पौढि[१४] रहे वृष[१५] सो करि हेज[१६] ॥२५॥

॥ दोहा ॥

नैननि ने रिणद्रा[१७] तजी, मरण[१८] ने तजौ विकार[१९] ॥
बस्तु स्वरूप[२०] विचार मे, खोई रेरण[२१] कुमार ॥२६॥

इति श्री वैराग्योत्पतिकाररण भव-सम्बन्ध-रिणवारन श्री व्रह्मगुलाल चरित्र-मध्य राजा बृह्मगुलाल प्रति मुनि भेष आदेस कुमर अगीकार पीछे कुटम्बीजन मंत्र वरनन रूप चौदहवीं सधि. ॥१४॥

---

१ चिल्ला कर, २. स्त्रियो, ३ सिखाई गई, ४ डरी सी, ५ इन, ६. मन, ७ शीघ्र, ८ अनुसार, ९ नर, १० अन्यो को, ११ उस, १२ कार्य १३. होन-हार, १४ लेटे, १५ धर्म सो, १६ मन लगाये, १७. नीद, १८ मन, १९ विकृत भाव, २० आतमा के स्वरुप के चिंतन में, २१ रात ।

॥ दोहा ॥

भो, अणत[१] भगवत तुम, मम मण[२] करौ णिवास ॥
दोप आवरण[३] ग्यान के, हरि करि करौ प्रकास ॥१॥
जा[४] णिसि[५] मे कामी पुरिष[६], कामिणि[७] सग अणग[८] ॥
करे केलि[९] बहु भाति सो, छके राग सरवग[१०] ॥२॥

॥ चौपई ॥

ता णिसि मे यह बृह्मगुलाल। जग सो होइ उदास कमाल[११] ॥
दिढ[१२] वैराग्य उपावण[१३] हेत[१४]। अनुपछा[१५] चितवन[१६] चित देत ॥३॥

॥ अनित्य भावना ॥

इस जग मे सनवध[१७] अनेक। घन जन वहन आदि सब ठेक[१८] ॥
जलध[१९] पटल चपला[२०] समतेह। लषत[२१] विलात[२२] नही सदेह ॥४॥

॥ अशरण भावना ॥

सरण नही कोई जग माहि। सबकौ काल भखै[२३] सक[२४] नाहिं ॥
विवहारे[२५] परमेष्टी [२६] पाच। आप आपको सरना साच ॥५॥

---

१ अनन्त नाथ (जैनियो के १४ वे तीर्थंकर), २ मन, ३. ज्ञानावरण, ४ जिस, ५ निशा, ६ पुरुष, ७ कामिनी, ८ काम सेवन, ९ सुखक्रीडा, १० सर्वांग, 'राग रस रग' ऐसा भी पाठ से० क० की प्रति मे है, ११ अनुपम, १२ दृढ, १३ उत्पादन, १४ निमित, १५ अनुप्रेक्षा-भावनाए (अनित्य अशरण आदि १२ भावनाए), १६ चिंतवन, १७ सम्वन्ध, १८ ठीक ऐसे जैसे, १९ मेघ, २० विजली, २१ देखते देखते, २२ विलीन, २३ भक्षण करै, २४. शक, २५ व्यवहार मे, २६ परमेष्टी (अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु)।

चारौ[1] गति दुष[2] रुप अतीव। कहू न सुख पावै यह जीव॥
ममता[3] भरम[4] भुलानौ[5] होइ। सुख स्वरूप सरधै नहि कोइ॥६॥

॥ एकत्व भावना॥

सदा अकेलो चेतनि[6] राय। सुख दुख भोगै आप सुभाय[7]॥
सग गया आयौ नहि कोय। कोन कोन की सीरी[8] होय॥७॥

॥ अन्यत्व भावन॥

देह जीव निवसत इकठाय। भए न कबहूँ एक सुभाय॥
खीर-नीर[9] जो भिन्न अतीव। लिऐ सुगुन[10] परजाय[11] सदीव॥८॥

॥ अशुचि भावना॥

देह अपामरण[12] मल[13] करि भरी। चाम[14] लपेटी लागत षरी[15]॥
या सम और णही[16] घिन[17] थान[18]। तजौ सनेह[19] अहो बुधिवान॥९॥

॥ अस्त्रव भावना॥

मिथ्या[20] अविरत[21] जोग[22] कपाय[23]। इण[24] मे परत[25] आप चिदराय[26]॥
विधि[27] सगृह करि उदे प्रभाव। निज[28] गुन सुष का होइ अभाव।१०।

---

१ चारौ गति (नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव), २ दुख, ३ ममत्व रूप, ४. भ्रम, ५ भूला हुआ, ६ चेतना का राजा, ७ स्वभाव, ८. सुख दुख में साझीदार, ९ क्षीरनीर=दूध-जल, १० गुण, ११ पर्याय, १२. अपावन, १३. मल (शरीर के ९ दर्वाजो से निकलने वाला पेशाव, टट्टी आदि मल), १४ चमडा, १५ अच्छी, १६ नही, १७. घ्रणा, १८ स्थान, १९ राग, २० मिथ्यात्व, २१ अविरत (हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह), २२ योग (मन, वचन और काय), २३ कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ), २४ इनमे, २५ लीन होना, २६ चैतन्य राज=जीव, २७ कर्म (ज्ञानावरण आदि ८ कर्म), २८ आत्मा के केवल ज्ञान, केवल, दर्शन आदि गुण।

॥ सवर भावना ॥

गुपति[१] समिति[२] वृष चरन[३] सरूप। जपत[४] परीसह[५] भावत रूप ॥
होय रोक विधि[६] आगम[७] सर्व। भौगै परमानद निगर्व ॥११॥

॥ निर्जरा भावना ॥

तप[८] विसेष ते करम[९] विसेष। उदे[१०] आय करि होइ निसेष[११] ॥
वोधि[१२] अराात चतुष्फल खाहि। सकल अवाधित थिर ठहराय।१२।

॥ लोक भावना ॥

षट द्रव्यात्मक लोक प्रदेश। अक्रत अमिल असहाइ हमेस ॥
वात वलय बैठत सब थान। यामे भ्रमे जीव विरा ग्यान ॥१३॥

॥ वोधि दुर्लभ भावना ॥

नरभव उत्तिम कुल अवतार। सतसगति वृष सच सुखकार ॥
तत्व प्रतीति सुपर पहिचान। दुरलभ विषयातीत सुग्यान ॥१४॥

॥ धर्म भावना ॥

मिथ्या विषय कषाय विहीन। जो परनमरा होय स्वाधीन ॥
सोई परम धरम सुख रूप। और प्रकार कहे वे कूप ॥१५॥

---

१ गुप्ति (मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कामगुप्ति) रोगो का निग्रह करना, २ जीवो की हिंसा से वचने के लिए यत्नपूर्वक प्रवृत्ति करना, ३ धर्मचरन, ४. जीतना, ५ भूख-प्यास आदि को परिपह शात भावो से सहना, ६ उपाय, ७ शास्त्रो, ८. विशेषताओ के तपने से, ९ विशेष कर्मो, १० उदय मे आना, ११ कर्मो का नाश होना।

याते[1] विमुख[2] भया यह जीव । गति गति माहि भ्रमे सदीव ॥
जनम मरण दुष[3] सहत बनाय । अबकी वौत[4] वन्यो यह आय ॥१६॥
अब याकौ साधन[5] नही करो । तौ अथाह[6] भवसार परो ॥
देषौ विधि[7] सहाइ को बात । तप करि करौ कर्म को घात ॥१७॥
जो गह जन अवरोधक[8] खरै[9] । तै अब साधक ह्वै अनुसरै[10] ॥
जो पयपान[11] करावै कोइ । जो ण[12] करै सो मूरिष[13] होइ ॥१८॥
धरम[14] लाभ को समय सुमोहि[15] । ढील करण सो कारज कोय[16]॥
अवसर पाय चुकै जे जना । ते पीछे पछितामे घना[17] ॥१९॥
सनमृख[18] होत मोहि सुख जोन[19] । भयो कहन को समरथ कौन ॥
ना जाने वृष भोगन[20] समे । कैसो हक अनुपम[21] सुख पमे ॥२०॥

॥ दोहा ॥

इसे विचार विसैस[22] ते, भयौ सुदिढ[23] परनाम[24] ॥
जोवत वाट[25] विहान की, विसरि[26] गेह[27] के काम ॥२१॥
दिवसागम[28] आरभ विषें, परौ गगन[29] ते वार[30] ॥
मानो करम वियोगते, रेन[31] नेन[32] जलधार[33] ॥२२॥

---

१ इससे (धर्म से), २. विपरीत, ३ दुःख, ४ उचित=उपाय, ५ धारन, ६ गहराई जिसकी अपरिमित, ७. भाग्य, ८ रोकने वाले, ९. ठीक, १० कार्य करना, ११. दुग्धपान, १२. न, १३ मूर्ख, १४. धर्मलाभ, १५ मेरे लिए, १६. कैसे होय, १७. अत्यधिक, १८ सन्मुख=समीप आने, १९ जितना, २०. धर्म लाभ लेने, २१ बे मिसाल, २२ विशेष, २३ सुदृढ, २४ परिणाम, २५ प्रतीक्षा, २६. भूले, २७ ग्रह=घर, २८ दिन के निकलने, २९ आकाश, ३०. जल, ३१. रात्रि, ३२ नयन, ३३. आँसू बहाना ।

बहुरो[1] लखरण असक्त है, करम जीत परमार ॥
तम[2] प्रीतम को सग ले, कीनो निसि[3] विवहार ॥२३॥
रवि[4] किरनन फैलावती, उदे भयौ तम चूर ॥
मानो बृह्मगुलाल को, देखरण[5] आयो नूर[6] ॥२४॥
निसा अतर विउदे[7] लषि[8], उठे कुमार तुरन्त ॥
भोग विमुख[9] वैराग्य रूख[10], जुगल[11] अवस्था वत ॥२५॥

इति श्री वैराग्योत्पत्ति कारण भव सम्बन्ध निवारण श्री ब्रह्मगुलाल-चरित्र-मध्ये अनुप्रेक्षा चिंतवन तपग्रहण निश्चय वरणन रूप पद्रहवीं सधि ॥ १५ ॥

---

१ अन्यो को, २ अन्धकार, ३ निशि=रात, ४ सूर्य, ५ देखने ६ सौन्दर्य, ७ विलीन, ८ लखि, ९ भोगो से विरक्त, १० उन्मुख, ११ युगल ।

॥ दोहा ॥

धरम[1] धरम[2] दायक नमौ, घायक[3] विघन[4] समूह ॥
हरौ हमारे ग्याण[5] का, दोष आवरण व्यूह[6] ॥१॥

॥ चौपई ॥

प्रात क्रिया करि बृह्मगुलाल । श्री जिण-गेह[7] गये ततकाल ॥
देखे श्री जिन[8]-विम्ब मनोग[9] । शाति छवी ध्यानासन जोग ॥२॥
त्रया[10] वर्तकरि प्रणमण कीन । बहुरि प्रदक्षिण[11] दीनी तीन ।
करत भए थुति[12] मण वचकाय। भक्ति भाव सो हरष[13] बढाय॥३॥
भो जिणद[14] तुम जग आधार, करम[15] कलक पक अपहार ॥
दरसण[16] ग्याण सुख बल करि पूर। अति[17]सयवत दोखि[18] दुष दूर ॥४॥
तुम जुग[19] चरन कलपद्रुम[20] तनौ । आश्रय[21] करि सुख लहियै घनौ॥
रहै ण[22] चाह कोण[23] के चित्त । मिटै भ्राति मन होय पवित्र ॥५॥
इद्री-भोग-जोग पद जेह । तुम जन होय ण[25] वाछै[26] तेह ॥
विना चाह ते आश्रे करे। यह तुम महिमा जगजन परै ॥६॥

---

१ धर्म (धर्मनाथ, जैनियो के १५वें तीर्थकर), २ धर्मदायक-धर्म के मार्गदर्शक, ३ घातक, ४ विघ्न, ५ ज्ञान, ६ चक्र, ७ जिन मदिर, ८ जिन प्रतिमा, ९ मनोज्ञ, १०. तीन आवर्तन, ११ परिक्रमा, १२. स्तुति, १३. हर्ष, १४ जिनेन्द्र, १५. कर्म कलक पक,—कर्मों की दूषित कीच, १६ दर्शन ज्ञान सुख बल (अनत दर्शन, अनत ज्ञान, अनत सुख और अनत बल), १७ अतिशय वाले । १८ कर्म मल दोष और सासारिक कष्टो से रहित, १९. युग-चरण कमल, २०. कल्पद्रुम-कल्पवृक्ष (चतुर्थ काल के वे वृक्ष जो चाहने वालो को इच्छित पदार्थ देते हैं), २१ सहारा, २२ न, २३ कौन किसकी, २४. इद्रिय भोग योग्य-पचेद्रियो के भोगने योग्य, २५. नही, २६ इच्छा ।

जे अनादि विधि[१] वध खसेस । दायक चहुँ गति माहि क्लेस[२] ॥
विन प्रयास तुम[३] जणके सोय । कै सक्रमण[४] तथा छय[५] होय ॥७॥
भवि[६] जलधि मज्जत भविजेह[७] । दै वृख[८] बाहु[९] उवारत[१०] तेह ॥
तुम सम हितू ण[११] जगमे आण[१२] वरकल्याणक[१३] कारन थान[१४] ॥८॥
मिथ्या[१५] नीद मोह[१६] निश माहि । विषय[१७] चोर गुण[१८] धन मुसि[१९] खाइ ॥
तुम णिज[२०] ध्वनि करि करत सुचेत[२१] । धन्नि धन्नि तुम दया णिकेत[२२] ॥९॥
मण की व्याधि तथा तन व्याधि । जनम मरण दुष लगे असाधि ॥
तुम वर वोध[२३] सुधारस प्याय[२४] । अजर अमर मुख करत बनाइ ॥१०॥
तुम जगत्राता[२५] तुम जगभ्रात । तुम जग माता तात विख्यात ॥
तुम सव सुहित होत वरदेव । मण वच काय करू तुम सेव ॥११॥
असरन-सरन[२६] अधम उद्धार । सही भक्तवत्सल[२७] मनहार ॥
पर उपगारक[२८] जन सिर ताज । नमो नमो तुम पद जुग साज ॥१२॥
तिरे तिरेंगे जे भव[२९] वार । जे सुतरत इस समय मझार ॥
सौ तुम सव प्रताप ते देव । अवर[३०] प्रताप भने[३१] सहदेव ॥१३॥

---

१ कर्म, २ क्लेश, ३. तुम जन (आपके भक्त), ४. एक कर्म का दूसरे कर्म रूप में परिणत होना, उत्तर प्रकृतिया दूसरे रूप में भी परिणत हो जाती है, ५ विनाश, ६. ससार रूपी समुद्र मे डूबते हुए, ७. भव्यजीवो, ८. वृष-धर्म, ९ भुजा, १०. निकालना-उद्धार करना, ११ न, १२ अन्य, १३ श्रेष्ठ हित करने वाला, १४ स्थान, १५ मिथ्यात्व की नीद, १६ मोह की रात, १७ विषय रूपी चोर, १८ आत्मा के सच्चे गुण-रूपी सपत्ति, १९ चुराना, २० जिन शास्त्र, २१ सावधान, २२ दया के उत्तम स्थान, २३ श्रेष्ठ ज्ञान, २४ पिला कर, २५ उद्धारक, २६. अशरण-शरण, २७ भक्तो के प्यारे, २८ उपकारक, २९ ससार रूपी जल में, ३० अन्य, ३१ कहे ।

जा घट तुम सरूप आवास । ता घट होय न रिपुको त्रास ।।
आरणद-अबुध वचत हमेस । दूरि होत सब भाति क्लेस ।।१४।।
मै भव-[1]भोगरोग सो आज । भयौ विरक्त[2]-चित महाराज ।।
तुम भापित मुरिण[3] को आचार । साधन सनमुख भयौ अवार ।।१५।।
तुम साखी[4] ह्वै होउ सहाह । तुम सो यह विरणती[5] जिरण[6] राय ।।
इम कहि बार बार सिर नाइ । बाहिर चौक माहिफिर आय ।।१६।।

।। दोहा ।।

पचरणसो [7] कर जोरि के, अरज[8] करी इस रीति ।।
नही गुरु[9] इस समय जहा, तुम सुनियो करि प्रीति ।।१८।।
मै जिरण[10] दिच्छा धरत हो, तुम सब सापी होहु ।।
छमो सकल अपराध हम, अब्र मति[12] की जौ कोहु ।।१८।।
इमि कहि वसना[13] भरण सब, दूरि किये तत्कार[14] ।।
जथा जाति[15] ह्वै फिरि चए, परघट[16] वचन उचारि ।।१९।।

।। चौपाई ।।

त्रस[17] थावर[18] प्रानी[19] अपराध । करू न मन वच काया साध ।।
आनपास[20] करवाऊँ नही । करते भले न मानो कही ।।२०।

---

१ सासारिक विषय भोगो की बीमारी, २ उदासीन मन, ३ मुनि, ४. साक्षी-गवाह, ५ बिनती, ६. जिन राज, ७ पचो से, ८ निवेदन, ९ जैन आचार्य, १० जैनी दीक्षा, ११. क्षमा, १२ मना करा, १३ वस्त्राभरण कपडे तथा आभूषण, १४ तत्काल, १५ हाल के पैदा हुए समान, १६ प्रघट, १७. त्रस (दो इद्रिय जीव से पचेन्द्रिय जीव तक) १८ स्थावर (एकेन्द्रिय जीव = पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति काय के जीव) १९ जीव, २० अन्यो से ।

त्यो हो झूँठ अदत्त[1] विचार। कहूँ गहूँ[2] नहि रच[3] लगार[4] ॥
निज[5] परतिय[6] को तजी सनेह[7] । परिगह[8] रचरा[9] राखौ देह[10] ॥२१॥

मारग[11] सोधि[12] गमन अब करो। श्रुत[13] अनुसार बचन उच्चरो ॥
दोप टालि भोजन इक बार। धरण उठावण विधि[14] सचार ॥२२॥

प्रामुक[15] भूडारण[16] मलमूत[17] । करो सुवस पन[18] इन्द्री[19] भूत ॥
पट[20] आवस्य[21] क्रिया नित करौ। प्रासुकभू सेनासन[22] वरौ ॥२३॥

मजणदत[23] धवण नहि करौ। करो कचलुचन[24] अवर परि हरौ ॥
ठाडे[25] करौ अलप[26] आहार। इस विधि पालौ मुणि आचार ॥२४॥

और भाति णहि करौ कदापि[27] । प्रान[28] अत लौ वह वृत-साच[29] ॥
की साखि[30] प्रतिग्या[31] येह। धारि भए सबसौ निस्प्रेह[32]।२५।

---

१ विना दी हुई वस्तु, २ ग्रहण करना, ३ थोडा, ४ सम्बन्ध, ५. अपनी, ६ अन्य स्त्रियाँ, ७ प्रेम, ८ परिग्रह (१० प्रकार का वहिरग और १४ प्रकार के अतरग परिग्रह), ६ नही, १० शरीर, ११ मार्ग, १२ देख भाल कर, १३ शास्त्र, १४ यत्नपूर्वक, १५. जीवजतु विहीन, १६ पृथ्वी पर डालना, १७ मलमूत्र, १८ पाच, १६. इन्द्रियो, २० छ, २१ आवश्यक क्रियाएँ-मुनियो की ६ आवश्यक क्रियाएँ २२ सोना और बैठना, २३ स्नान करना, और दातो को धोना, २४ केश लोच (वालो को अपने हाथ से नोच कर उखाडना), २५. खडे होकर, २६. थोडा, २७. कभी भी, २८. जीवन पर्यन्त २६ प्रतिज्ञा, ३० साक्षी, ३१. प्रतिज्ञा, ३२ राग-द्वेप रहित ।

॥ दोहा ॥

धारौ बृह्मगुलाल रा, मुणि कौ भेष पवित्त[1] ॥
कोया जानौ स्वाग ही, कोया जानो सत्त[2] ॥२६॥

इति श्री वैराग्योत्पत्ति कारण भव सम्बन्ध निवारन श्री बृह्मगुलाल चरित्र मध्ये जिण मंदिर गमण जिनस्तुति सब की साखि मुनिवृत्त प्रतिज्ञा ग्रहण बरनन रुप सौलम संधि ॥१६॥

१. पवित्र, २ सत्य।

॥ दोहा ॥

जिन गरभागम[1] ही समे, कियौ प्रजा दुखदूर ॥
सह[2] सोलम सातेस[3] जिरण, देऊ ग्याग्ग भरिपूर ॥१॥

॥ चौपाई ॥

अब ऐ बृह्मगुलाल मुनीय । वचरण-निवाहरण[4] को चित[5] दीय ॥
मोर पक्ष[6] पिक्षिका[7] मनोग । लेकरि[8] काष्ट कमडल जोग ॥२॥
राज सभा प्रति कियो पयान[9] । हिरदे[10] पच[11] परम गुरु ध्यान ॥
भूमि रिगहारि[12] पगरिग[13] कू धरै । चलत[14] दिष्टि[15] इत उत
रगहि[16] करै ॥३॥
सग भए बहु जरग तिहिवार । कौतिक[17] वत हरष मरग धार ॥
सने सने[18] पहुँचे नृपधाम । लपि[19] नृप सभा अचिरजे ताम[20] ॥४॥
मुनि कौ देषि कही परधान[21] । कहौ सार[22] सबोधन वारिग[23] ॥
इम सुनि कहत भए मुनिराय । भूप प्रते मधुरे स्वरगाय ॥५॥

॥ चालि भरथरी ॥

हे राजरग[24] इस जगत मे । जीव करम[25] सनबध[26] ॥
सदा विभावरिग[27] परनवै[28] । फिरि फिर फसि विधिफद ॥
धरि धरि भव दु ख भोगवै ॥६॥

---

१ माता के गर्भ मे आते ही, २ वे, ३ शातिनाथ (जैनियो के १६ वें तीर्थ कर), ४ वचन निभाने, ५ चित दिया, ६ मोर के पख, ७ पीछी (जिसे जैन मुनि जीवो की रक्षा के लिए रखते हैं), ८ चैत्यालय तें चले मनोगे ऐसा पाठ 'ग' प्रति मे है, ९ कच्च, १० हृदय मे, ११ पचपरमेष्ठी, १२ देख देख कर, १३ पैरो, १४ चलने में, १५. निगाह, १६. नहिं, १७ तमाशा देखने वाले, १८ शनै शनै, १९ लखि, २० उनको, २१ प्रधानमत्री, २२ श्रेष्ठ, २३ वचन २४ राजन् ! २५ कर्म (ज्ञानावरणादि आठ कर्मो का सबध), २६ मवध, २७ विभाग (शरीरादि को आत्मा मानना ऐसा भाव) २८ परिरगति करना !

जा गति मे जो तन धरे। तहाँ अपरणपो[1] मानि ॥
तिरण[2] साधक वाधकनि मे। राग द्वेख[3] विधि ठानि ॥
विधि बस ह्वै भव भव भ्रमै ॥७॥

कोरण[4] कोरण सो रणहि[5] भए। कोरण कोरण सनवध[6] ॥
सब ही सब ही सो भए। बहु तक नासत[7] वध ॥
तिनकी कछु सष्या[8] नही ॥८॥

जनम[9] जनम जननी भई। पियो तिरणहि[10] तन क्षीर[11] ॥
जो एकत्र करो कही। कितो उदधि[12] मे नीर[13] ॥
अधिक होय ससै[14] रणहि[15] ॥९॥

भव[16] भव के नख[17] केस[18] को। जो कीजै इक[19] ठाइ ॥
अधिक होइ गिरि मेर[20] सो। सोचत धीरज[21] जाय ॥
फिरि फिर तिस[22] ही पथ पगौ ॥१०॥

जनम जनम लहि मरण[23] को। रुदरण[24] कियौ बहु मात ॥
असुवरण[25] जल सग्रह् इसी। कहा उदधि जलवात ॥
अधिक लखौ[26] ग्यायक[27] जना ॥११॥

---

१. अपना पना, २ तिन, ३ रागद्वेष, ४ कोन, ५ नहि, ६ सम्बन्ध, ७ नाश करना, ८ सख्या, ९ जन्म, १० उनका, ११ दूध, १२ समुद्र, १३ जल, १४ सशय, १५ नही, १६ सब जन्मो, १७ नाखून, १८ केश-बाल १९ एक स्थान, २०. सुमेरु पर्वत, २१ धैर्य, २२ उस ही, २३ मरना, २४. रोना, २५. आसुओ, २६ मालूम होना, २७ ज्ञायक जानने वाला (सर्वज्ञदेव)।

यो ही भव भव के विषे । भए कितक[1] सनवध[2] ॥
क्यो न विचारो ग्यान[3] सो । वृथा जगत को धध[4] ॥
सवही है है नसि[5] गए ॥१२॥

नसे सवन के कुल वडे । लघुता सत द्रग जोइ ॥
कोण[6] विवेकी रति[7] करै । रोवै मूरख लोइ ॥
जगत अथिर[8] ह्वै दुष[9] भरौ ॥२३॥

मात[10] तात[11] सुत कामनी[12] । सुसा[13] सहोदर[14] मित्त[15] ॥
सवै विपरजे[16] परणमे । जग सणवध[17] अणित्त[18] ॥
कोण[19] निहारौ नैन सो ॥१४॥

जहा मात सुत को हणे[20] नारि हणे पति प्राण ॥
पुत्र पिता को छै[21] करै । मित्र होइ अरिमान[22] ॥
यह जग चरित विचित्र है ॥१५॥

कोय[23] ण[24] काऊ को[25] सगो । सब स्वारथ[26] सणवध[27] ॥
का को गह[28] भरि रोइयै[29] । काको सौक[30] प्रवध ॥
करि क्यो भव दुष भोगियै ॥१६॥

भिन्न भिन्न सव जीव है । भिन्न भिन्न सव देह ॥
भिन्न भिन्न पर[31] नयन है । होय दुषी करि नेह[32]॥
यो भ्रम भूलि अनादि को ॥१७॥

---

१ जितने ही, २ सम्बन्ध, ३ ज्ञान से, ४ व्यापार, ५ नाश, ६ कौन, ७ प्यार, ८ विनाशशील, ९ दुःख, १० पिता, ११. माता, १२. स्त्री, १३. बहिन, १४ सगा भाई, १५ मित्र, १६ विपरीत-उल्टे, १७. सम्बन्ध १८ अनित्य, १९ क्यो न, २० मारे, २१. नाश, २२ शत्रु, २३ कोई, २४ न, २५ किसी का, २६ स्वार्थ २७ सम्बन्ध, २८ दिल भर, २९ गाना, ३० शोक, ३१ परिणति, ३२, स्नेह ।

कारज[1] उत्पति[2] हेत[3] दो, अतरग बहिरग ।।
अतर प्रण[4] मन सक्ति है, द्रव्य[5] चतुस्क प्रसग[6] ।।
वाहिज[7] हेत गुरा[8] कह्यौ ।।१८।।

यो ही जनम[9] सुमरन[10] मे । आयु करम है आदि[11] ।।
बाहिज हेत अरणेक[12] है । यह विवहार[13] अनादि ।।
साधक वाधक देषियै ।।१९।।

उपादान[14] जह[15] सबल है । तहा रिणमित[16] है गौरण[17] ।।
देखि परस्पर रीतियो । गह्यौ विवेकी[18] मोन[19] ।।
येच[20] खेच मे क्या परी[21] ।।

तीव[22] मद[23] रिणज[24] भाव सो । कियो जिसौ विधि[25] वध ।।
तिस[26] फल सुख दुख होत है । मोह[27] थकी[28] मति मद ।।
रिणज पर को करता गने ।।२१।।

स्वारण[29] वृत्ति मोहीन[30] की । करे रिणमित[31] सो रोस[32] ।।
करम[33] विपाक रण[34] वे वही[35] । गयारण[36] सिघ सरोस ।।
हतै करम[37] को सूर[38] ह्वै ।।

---

१ कार्य, ३ उत्पत्ति, ३ कारण, ४ प्राण, ५ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, ६ निमित्त, ७ बाह्य हेतु, ८ आचार्य, ९ जन्म, १० मृत्यु, ११ अतरग हेतु, १२ अनेक, १३ व्यवहार, १४ उपादान कारण, १५ जहा, १६ निमित्त कारण, १७ गौन, १८ ज्ञानी (आत्मा और शरीर को भिन्न-भिन्न जानने वाले) १९ चुप, २० ससार के झूठे झगडो, २१ सार, २२ तेज, २३ मदे, २४ निजपरिणाम, २५ कर्मवध, २६ उसका, २७ मोहनीय कर्म, २८ ठगा गया, २९. कुत्ता का व्यवहार, ३० मोह वाले, ३१ निमित कारण, ३२, गुस्सा, ३३ कर्म विपाक-कर्मो का फल, ३४ नही, ३५ देखता, ३६ ज्ञानसिंह-आत्मा के वास्तविक ज्ञान से शक्तिशाली, ३७ मोहनीय कर्म, ३८ शूर ।

कुमर मरण[1] मे भूपती । हम हे वाहिज[2] हेत ॥
अतर[3] आयु[4] णिसेस ही । जानि होऊ समचेत[5] ॥
हम सो रोस णिवारयै ॥२३॥

हम अग्याण[8] थकी[9] कियो । यह कुकरम[10] दुख दाय ॥
सो अव तप आयुध[11] थको । छेदेगे सुनि राय[12] ॥
या मे कछु ससै[13] नही ॥२४॥

॥ दोहा ॥

इते वचण[14] सुनि साधुके, भूपति सचिव प्रधान ।
मण[15] का सोच समेत[16] ही, तजी अदेसक[17] वाण[18] ॥२५॥
करत प्रसमा[19] साधुकी । सब विधि होय प्रसन्न ।
सब कारज[20] मे निपुन[21] यह, व्रहगुलाल रवन्न[22] ॥२६॥

इति श्री वैराग्योत्पत्तिकारन भव सवध निवारन श्री ब्रह्मगुलाल मुनि राज सभा प्रवेस भूपति सबोधन वचन वरनन रूप सत्तरहमी सधि ॥१७ ॥

---

१ कुमार के मरने मे, २ वहिरग निमित कारण, ३ अतरग, ४ आयुकर्म (जिस कर्मोदय से जीव अपने प्राप्त शरीर में निवास करें) ५ निश्चय, ६ ज्ञान परिणाम वाला, ७ निवारिये, ८ अज्ञान, ९ वस, १० राजकुमार के मारने का बुरा कार्य, ११ अस्त्र, १२ राजन, १३ सशय, १४ वचन, १५ मन, १६ सहित, १७ सशोधन कारक, १८ वात, १९ प्रशमा, २० कार्य, २१ दक्ष, २२ रमणीक ।

॥ दोहा ॥

जिण[1] के वचन विलास[2] मे, होय सवणि[3] प्रतिपाल[4] ।
सह जिण[5] कुथु[6] पदाम्बुरुह[7], प्रणमो सुरति सभाल ॥१॥

॥ चौपाई ॥

ब्रह्मगुलाल वचण[8] रस जोग[9] । दूरि भयो भूपति को सोग[10] ॥
होय प्रसन्न विचारी येह । अव कीजिये कुमर सो णेह[11] ॥२॥
यह सव कारज माही सूर[12] । वचण णिवाहक[13] साहसपूर ॥
जो जो आयस याको दियौ । सो सो सव कीनौ दे हियौ[14] ॥३॥
अब मै याहि णिवाहो[15] आज । सारो[16] या के मण के काज ॥
यह बिचार भूपति मृदुवेण[17] । कहे कुमरसो अति सुप देण ॥४॥
जो कुमार उरइच्छा लहो । सो अव लेऊ प्रघट करि कहो ॥
णिवसो[18] अपने गेह[19] सुखित[20]। मण से रचण[21] राख्यो चित[22] ॥५॥
इमि[23] सुणि वोले कुमर सुभाय[24] । हमहि नही कुछ चाह सुराय[25] ॥
इस परिगह मे दोष अपार । प्रघट[26] णेन[27] लखि नजो अवार ॥६॥

---

१ जिनके, २ प्रभाव, ३ सवो को, ४ उद्धार, ५ जिनेंद्र भगवान, ६ कुथु (कूंथुनाथ—जैनियो के १७ वे तीर्थंकर) ७ चरण कमल, ८ वचनसार ("वचणसार"—वचनशर ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है). ९ योग, १० शोक, ११ स्नेह, १२ शूर, १३ निर्वाहक, १४ दिल से किया है "देपियो ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है, १५ निवाहक, १६ करूँगा, १७. वचन, १८ निवसो १९ घर, २० सुखी होकर, २१ रचन-थोडी सी भी, २२ फिर, २३ [illegible] २४ अच्छे मन से, २५ सुराजन, २६ प्रगट, २७ नयन ।

प्रथम हिं चाह रुप दुख घनो। दुतिय[1] उपामरा[2] अघ सो सनो[3] ॥
तृतीय रखावत[4] श्रम है भूर। जतरा[5] विचारत सुप[6] है दूर ॥७॥
जाके हेत प्राण[7] वध करे। भूठ बोलि के चौरी वरे[8] ॥
क्रोध[9] मारा माया बोलियौ। वहु परपच[10] उपामे[11] हिये[12] ॥८॥
देस हि देस फिरै इस हेत। माडै[13] राडि[14] पौठ रण[15] खेत ॥
हनहिं[16] परस्पर पुनि सराावध[17]। अनुचित काम करै ह्वै अघ ॥९॥
वधत वधावै तिसना[18] दाह। नसत रासावै[19] सब सुख राह[20] ॥
सव विधि अहित रुप लखि माहि। ग्याराी[21] रिणवसे[22] भिन्न सुभाहि ॥१०॥
जव लो चाह[23] दाह दव दहै[24]। तव लौ सुख सवाद[25] नहिं गहै ॥
या वस भ्रमहिं जीवससार। जनम मरण दुख सहै अपार ॥११॥
हरहरादि[26] याके वस भये। व्याकुल चित्त क्लेसित ठए ॥
परिग्रहवत सुपी[28] राहि लेस[29]। रेरिग[30] दिवस भोगवै क्लेस ॥१२॥
या सौं[31] विरचि वसै वरागेह। भए परम सुखिया नर तेह ॥
तिराही को पुरिसारथ सार। जनम से सुखी सफल विचार ॥१३॥
हम अव तुम प्रसादते राय। परमारथ पथ लइयो सुभाय ॥
तजि उपाधि आराधि समाधि। लहि है सहजानद अगाध ॥१४॥

---

१. द्वितीय, २. उत्पादन, ३ सना हुआ, लिपटा हुआ, ४ रखवाली, ५ यत्न, ६ सुख, ७ हिंसा, ८ पसन्द करना, ९ क्रोध मान पाया, गुस्सा घमड छल कपट आदि, १० झगडे, ११ उत्पादन करना, १२ हृदय मे, १३. तैयार, १४ लडाई, १५ युद्ध मैदान, १६ मारना, १७ सवध, १८ अप्णा, १९ नसावै, २० मार्ग, २१ ज्ञानी, २२ निवमै, २३ चाह रूपी दावाग्नि, २४ चमकती है, २५. जायका, २६ ब्रह्मा आदि, २७ क्लेश, २८ सुखी, २९. लेश ३० रात, ३१ इसने।

॥ दोहा ॥

परिगह उपरोधक[1] वचन, सुनि भूपति फिरि याहि ॥
यह नही आई हम मनै, तुम भापी किम राह[2] ॥१५॥
जप तप वृत दानादिवहु, नानाविधि शुभ[3] कर्म ॥
परिग्रह ही के हेत[4] सव, आचरियै किन[5] धर्म ॥१६॥
परिगृह ही के जोगतै[6], सुप लखिये सव ठौर ॥
परिगृह विरण[7] सब जरण[8] दुखी, तुम भापी विधि और[9] ॥१७॥

॥ चौपई ॥

इस सुनि बहुरो[10] भरणे[11] ऋपीस । सुनो वचन हमरे अवनीस[12]
भरम[13] दुखी छाये द्रग[14] जास[15] । तिनको अजरण वटी सराम ॥१८॥
ते पुरुप पापाश्रव जोग । करे, आपकै दिढ भवरोग ॥
जे रिणरास इह विधि अनुसरै । अलप कपाय रुप मचरै ॥१९॥
जे नर परिगह प्रापत हेत । करे दान जप तपवृत रोत ।
ते सुभ[18] आश्रव जोग पसाय । विविध[19] गेय[20] आश्र[21] ह्वै जाइ ॥२०॥
सुभ[22] वा असुभ[23] प्रवृति[24] रिणवार[25] । ज्ञायक रुप होय अविकार ॥
वर विराग वल विधि[26] सव चूर । लहै सुभाविक[27] सुग्व भरिपूर ॥२१॥

---

१ रोकने वाले, २ प्रकार, ३ शुभ, ४ हेतु-कारण, ५ क्यों, ६ योग से, ७ विन, ८ जन, ९ और-अन्य रूप, १० विवरण, ११ कहे, १२ अवनीश-नृपति, १३ भ्रम, १४ नेत्र, १५ जिसके, १६ पापि, १७ निज, १८ पुन्य आश्रव-शुभ कर्मों के आने को जुटाते हैं, १९ अनेक प्रकार, २० ज्ञेय (यहां पर अर्थ पदार्थों का है), २१ प्राप्त करता है, २२ शुभ, २३ अशुभ, २४ प्रवृत्ति-परिणति, २५ निवार-दूर करो, २६ कर्म, २७ स्वाभाविक-आत्मीक ।

॥ दोहा ॥

जब लग आसो[1] बीज थित[2], जब लग वृत तप नेम[3] ॥
होय विपरजै[4] परण[5] मे, जो[6] ज्वर अन्न अषेम[7] ॥२२॥
आसा[8] करि जगवधि रह्यो । अन बाधौ किण[9] याहि[10] ॥
नलनी[11] को सो सुक[12] भयौ,णिज[13] सुधि[14] भूलि सुभाइ[15]॥२३॥
परिगह मण[16] व्याकुल करै, व्याकुलता दुख ठौर ॥
जे परिग्रह मे सुख लषे[17], ते मूरख[18] सिर मौर[19] ॥२४॥
भाग[20] जोग[21] गुर देसना[22], पाप लहै कहुँ बोध ॥
तौ अब मारग[23] सुगम[24] है, साधौ सुष विधि सोध[25] ॥२५॥
वार वार इह[26] विधि णही, किण सोचो मण राय ॥
करना है सो करि चुको, औसर वीतो जाय ॥२६॥
ग्याण बिराग भरे वचण, सुनि पायौ सब चैन ॥
भए अनुत्तर जन सबै, जोरि रहे जुग नैन ॥२७॥

इति श्री वैराग्योत्पति कारण भव सम्बन्ध निवारन श्री बृह्मगुलाल चरित्र मध्ये राजा प्रसन्न वरदान वचन ब्रह्मगुलाल नकार, परिग्रह निषेद बहुरि राजा प्रश्ण बृह्मगुलाल उत्तर रूप वरनन अष्टादसवी सधि संपूर्ण ॥१८॥

---

१ आशा, २ थित,-स्थित,-मौजूद, ३ नियम, ४, विपरीत,-उल्टे, ५ परिणमे-परिणमन, ६ ज्यो, ७ अक्षेम-हानिप्रद, ८. आशा-उम्मीद, ९ किसको, १० इसने, ११. आकाश, १२. शुक-तोता, १३ निज, १४ सुधि,-स्मृति. १५. "नुभाप' ऐसा, भी पाठ ग' प्रति में है, १६ मन, १७ लखै, १८ मूर्ख, १९ शिरमोर-सबसे बडे, २० भाग्य, २१ योग्य, २२ उपदेश, २३ मार्ग,-आत्मकल्याण पथ, २४ सरल, २५ शोध, २६ इह विधि-मुनि धर्म।

नमो तुमारे चरण को, मण वच काय लगाइ ।।
हरो हमारे अरिण [1] को अहो अरह[2] जिण राय ।।१।।

।। चौपाई ।।

सकल सभाजन छमौं मुनिन्द । दे सवोधण[3] वोधि[4] णरिन्द[5] ।।
निजकृतदोष[6] क्षमाये समस्त । कियो गमण मण होय दुरुस्त[7] ।।२।।
पुर वाहिर उपवण[8] माहि । जाय ठए मण माहि उमाहि[9] ।।
परियण आय करी अरदारा । चलि घर करौ असण[10] सुपरासि।।३।।

।। कुमर वाच ।।

हमरे आज असण को त्याग । तजो गेह परियण को राग ।
वण[11] णिवास वृष[12] भावण भोग । भिक्षा[13] भोजन करि है जोग[14] ।।४।।

तुम णिज[15] वास करौ विसराम[16]। हमरौ मौह तजौ दुख[17] धाम ।।
अव ण करि सकैं हम कछु और । करिहै तप साधण सुख ठौर ।।५।।

---

१. अरियो-शत्रुओ (ज्ञानावरण आदि ८ कर्मों को), २. अरहनाथ (जैनियो के १८ वे तीर्थ कर), ३ सवोधन, ४. ज्ञान, ६ नरेन्द्र, ६ अपने किये हुए दोषो के लिए क्षमा मागी (मुनि वनने से पूर्व हर एक से दोषो के लिये क्षमा मागनी पडती-है, ऐसा जैन शास्त्रो का आदेश है), ७ ठीक, ८ उपवन-वगीचा, ९. उमग, १० असन-भोजन, ११ वन निवास, १२ वृप भावना भोग-धर्म भावना के निमित्त, १३. भिक्षावृत्ति से आहार लेना, १४. योग-विधि पूर्वक, १५ निजवास, १६. विश्राम, १७ कष्टोत्पादक ।

इम सुणि भणो बहुर वे लोग । यह णहि कहिण कुमर तुम जोग ॥
तुम हम सब जीवण आधार । परिजण[1] पालक परम उदार ॥६॥
तजो स्वाग घर करी प्रवेश । होय हास्य हठ[2] करत असेस[3] ॥
बहुत कहण सो कारज कोय । उठौ वेगि जौ हम सुख होइ ॥७॥

॥ कुमार वाच ॥

जो कर आयो हाथ णिदाण । दायक वाञ्छितार्थ वरदाण ।
ताहि तजै क्यो मतिवर होइ । तजत ण ताहि सराहत कोय ॥८॥
यह तप सुप साधण हेत । पाप बिनासक पुन्य निकेत ॥
सर्व अर्थ पूरण परमेस । आहि त्यागि ह्वै ग्रह किमिनेस ॥६॥
तुम हमको वरजो[4] इस माहि । कोण[5] सयाणयहै[6] समझाइ ॥
यह घर कारागार समान । बहु उपाधि[7] सो भरो निदाण । १०॥
मित्र कलित्र[8] पुत्र परवार । धन आमिष[9] भक्षक णिरधार[10] ॥
तिय[11] तन धन बल वृष[12] छय[13] करें । दूर निकट मन
थिरता[14] हरै ॥११॥
अर क्रोधादि[15] कषायणि तनो[16] । सहज उपावण[17] कारण वनो ।
विपति मूल दुरगति को द्वार । सोकारति[18] भइ भरो अपार ॥१२॥

---

१ परिजन पालक-कुटिम्बजन पालक, २ 'शठ करत' ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति में है, ३ अशेष, ४ वरजौ-रोकना, ५ कौन सी, ६ होशियारी, ७ झगडो, क्लेशो, ८ कलित्र-स्त्री, ६. आमिष-मास, १० निराधार, ११ स्त्री, १२ धर्म, १३ क्षय, १४. स्थिरता, १५ क्रोधादि कषायन (क्रोध, मान, माया और लोभ १६ कषायो को), १६ वढाने वाला, १७ उत्पादन, १८ शोकारतिभय (शोक, अरति, भय जुगुप्सा आदि नो कषायो) ।

काऊ भाति ण[1] रहणे[2] जोग[3] । सब विधि हेय भणे[4] बुध[5] लोग ॥
जे मुणि[6] वृत पालण[7] छम[8] नाहि । तै ग्रह वसि वरतौ वृष[9] राइ ॥१३॥

विषै भोग कारण ग्रहवास । दुरगति माहि दिखामे[10] त्रास ॥
मै मुणि धर्म्म णिवाहक[11] धीर । जथा रीति भापी विधि वीर[12] ॥१४॥

सो णिवाहि हौ सक्ति[13] प्रमाण । तजौ ण[14] ताहि जाहु किनि प्राण॥
तुमै रुचे सो तुम अब करौ । हरष-विखाद[15] ण[16] मण[17] मे धरो।१५

भजौ देव अरहत[18] त्रिकाल[19] । पूजौ गुरु निरग्रथ[20] णिहाल[21] ॥
हिंमा रहत धर्म आचरो, जिण[22] भाषित सरधा[23] दिढ[24] करो ।१६।

पूजौ कुगुरु कुदेव ण[25] कदा । अतिसय वत[26] होय जो जदा ॥
राग रगीले[27] परिगह पूर, इणतै[28] तुम वरतो णित[29] दूर ॥१७॥

ठगियन माहि महाठग एह । मधुर वचण ठग भली देह ॥
सत[30] से मुखा भ्रष्ट कर सोइ। सार[31] धरम धन मूसे[32] मोहि ॥१८॥

---

१ न, २ रहने, ३. योग्य, ४ भने कहे, ५ पडितजन, ६ मुनि, ७ पालन, ८ क्षम-समर्थ, ९ वृष मार्ग-धर्म मार्ग, १०. दिखावें, ११ निवाहक, १२ महावीर (जैनियों के २४ वें तीर्थकर), १३ शक्ति, १४ न, १५. हर्ष विवाद-खुशी-रज, १६. न, १७ मन, १८ अरहत (ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण अतराय और मोहनीय कर्मों को जिन्होने नाश कर दिया हो) १९ प्रात मध्याह्न और सायकाल, २० परिग्रहरहित, २१. निहाल, २२ जिन भाषित (सर्वज्ञ के कहे हुए), २३ श्रद्धा, दृढ, २५ न, २६ आतेशयवत, २७ विषयानुरागी, २८. इन ते, २९ नित, ३० सदाचार, ३१, सारधर्म रूपी सपत्ति, ३२, चुराते हैं।

श्री जिण श्रुत[1] अवगाहन[2] करौ । त्रस[3] स्थावर की करुणा[4] धरौ ॥
अनसन[5] आदि महातप जेह । सक्ति[6] समान करौ सऊ[7] तेह ॥१९॥

औपधि[8] सास्त्र और आहार । दीजो दाण चार परकार ॥
इह[10] षट कर्म्म ग्रही[11] आचार । करे सफल सव गृह विवहार[12] ।२०।

भले प्रकार आराधन[13] करो । सुर[14] उपणीस सहज सुप वरौ ॥
या विन गृहाण फसि जीव । परि[15] दुरगति[16] दुप[17] लहै अतीव॥२१॥

यह ग्रहीन कौ वर आधार । करैं वैग भव मायर पार ॥
या मम मुहित न भुवन मझार । करे सफल नर कौ औतार ॥२२॥

थोरी कहणि[18] वहुत करि गुनौ[19] । जिस तिस भाति धर्म विधि मुनो[20] ॥
यो सुणि[21] सव अणवोले[22] रहे । मानो विधना[23] कीलित ठऐ ॥२३॥

सोचे कहा भयौ कह करे । दोलायत[25] नहिं समता[26] धरे ॥
कुमर कहे मो भी सतवेन[27] । धाम[28] णिहारत[29] लहत अचेण[30] ।२४।

---

१ जिन शास्त्र, २. ध्यान से पढना, ३ त्रस (दो इद्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के), स्थावर-एकेन्द्रिय जीव, ४. दया, ५ चार प्रकार के आहार का त्याग करना, ६ शक्ति समान, "शक्ति प्रमान" ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है । ७. सव, औपधि शास्त्र, अभय आहार, ९. दान, १०. ये षट्कर्म-ग्रहस्थो के दैनिक छ आवश्यक कार्य, ११. ग्रहस्थी १२ व्यवहार, १३ धर्म सेवन, १४ सुर= स्वर्ग, १५ पडकर, १६ दुर्गति, १७. दुख, १८ कहना, १९ मानो, २०. आचरण करो, २१ मुनि, २२. अनवोले-चुपचाप, २३. भाग्य, २४ कीलित-कील दिये हो, २५. दोलायत-मन अचानक डोलने लगा, २६. शाति, २७ मन वचन-सच्ची वात, २८ धाम-घर, २९ निहारत-अच्छी तरह से देखना, ३० अशान्ति ।

दोनो वरणी[1] कठिनविधि[2] आय । ग्रहण[3] त्याग[4] को अक्षम[5] थाय ।।
यो विचारि सव चिता लीन । जाय ठऐ गृह[6] वदरण मलीन[7] ।।२५।।

।। दोहा ।।

मोह करम[8] की प्रवलता[9], लखी प्रघट दुख[10] देरण ।।
दाव पडै चेते गाही[11], फिरि फिरि मीडे नैन[12] ।।२६।।

इति श्री वैराग्योत्पत्ति कारण भव-सवध-णिवारण श्री वृह्मगुलाल
चरित्र मध्ये परियण घर चलन, और कुमर घर चलन—
निषेध—वर्णनन रुप उन्नीसमी सधि सपूर्ण ।।१६।।

१ बनो, २ मुश्किल उपाय, ३ धारण करना, ४ छोडना, ५ असमर्थ, ६. चेहरे, ७ सुस्त, ८ मोह कर्म, (जिस कर्म के उदय से यह जीव अपने सम्यक् चारित्र गुण को न धारण कर सके), ९ उग्रता, १० दुख देने वाला, ११. नही, १२. नयन ।

॥ दोहा ॥

नमो मल्ल[1] जिरण[2] राज के, चरण कमल जुग सार[3] ॥
हरो हमारे सल्ल[4] त्रिय, करो ज्ञान अविकार[5] ॥१॥

॥ छन्द चालि ॥

घर आये सुजन[6] निहारे[7] । मुष[8] मलिन[9] उदास करारे[10] ॥
तव कुमर नारि अकुलाई । मरण भ्रमे भ्रमर[11] की नाई ॥२॥
तव कोई क[12] वोले असे । रणहि[13] आवत लामे कैसे ॥
वे जोग[14] थापि थिर[15] थाऐ । रणहिं[16] मारणत[17] हम हि मनाए ॥३॥
उन सार[18] वचन कहि हमको । अरण[19]-उत्तर कीरणे सबको ॥
वे भऐ अवसि[20] वरणवासी[21] । तजि दीनी ममता[22] फासी ॥४॥
कछु[23] कहत कही नहिं जाई । उन[24] करी उने जो[25] भाई ॥
अव जो जाको जो भावे । जो करो उपाय[26] सितावे ॥२५॥

॥ दोहा ॥

इस वचरण सरते हती, परी नारि भूमाहि ॥
मिली मूरछा सहचरी, दीरणे प्रारण वचाय ॥६॥

---

१ मल्ल नाथ (जैनियों के १६वें तीर्थंकर), २ तीर्थंकर, ३ श्रेष्ठ, ४ तीन शल्य (जो शूल-काटे के समान चुभे, वे तीन हैं—माया, मिथ्या और निदान), ५ निर्मल, ६ परिजन-लोग, ७ देखे, ८ मुख, ६. मलीन, १०. वहुत ज्यादा ११ भौंरा, १२ कुछ, १३. नही, १४ वैराग्य, १५ स्थिर, १६ नही, १७. मानते, १८ श्रेष्ठ, १६. विना उत्तर का, २०. अवश्य, २१ वन-वासी=मुनि, २२ मोह, २३ कुछ जन, २४ उन्होने (कुमार ने) २५ अच्छी लगी, २६. उपाय।

भई अचेतरण सुधि हरी, परी काठ समदेह ।।
मानो पिय तौ घर तजौ, डरण त्यागौ तन गेह ।।

परियरण जन घवराह के, कियौ सीत[1] उपचार[2] ।।
होय सचेत सुदुख भरी, रुदनि[3] पुकार पुकार ।।८।।

दाहे[4] मारे कज[5] जो[6], पाडुर[7] भयौ सरीर ।।
देपि[8] अवस्था तास की, परियरण घरे रण[9] धीर ।।९।।

तरुरण[10] नवोडा[11] वृद्ध[12] तिय[13] । मिलि समझाई एम[14] ।।
चलि लामे समझाय हम । तुम दुख काररण केम ।।१०।।

इमि[15] कहि सब मिलि सग ह्वै, गई कुमर के पास ।।
कहत भई आदर भरे, वहु विधि वचरण प्रकास ।।११।।

चलो कुमर घर आपरणे[16], जहाँ कहा सुख तोय[17] ।।
तो विरण[18] हम सब दुषित[19] है, धीरज करै रण[20] कोय ।।१२।।

इमि सुरिण[21] बोले कुमर तुम, सुनो वचरण कर गौर[22] ।।
दुष ही दुख सब जगत मे, नहि सुख काऊ ठौर ।।१३।।

---

१ शीत-शीतलता, २. उपचार-लाने के लिए, ३ रोती हुई, ४ झुलसना, ५ कमल, ६ ज्यो, ७ पीला, ८ देखकर, ९ नही, १० युवतिया, ११ जिन का विवाह अभी हुआ हो, ऐसी स्त्रिया, १२ बूढी, १३. स्त्रिया, १४. इस प्रकार, १५ इस तरह, १६ अपने, १७ तुम्हे, १८. विन, दुखित, २०. नही, २१. सुनि, २२ ध्यान ।

॥ चौपाई ॥

दरब[1] खेत[2] भव भाव रुकाल । पाँचौ ही दुख रुप णिहाल[3] ॥
कछु इक इण[4] सामोन्य[5] सरुप । सुनी प्रघट दुख[6] साधन रूप ॥१४॥
इदिय[7] रोचत जे सुभगेय[8] । तेण प्रसम[9] ह्वै दुख आलेय[10] ॥
अण[11] सुहावने होत सजोग[12] । भोगिए विविधि आपदा भोग ॥१५॥
असुहामना[13] सगावण[14] महा । ईति[15] भीति[16] कर पूरित लहा ॥
दुष्ट[17] क्लेस व्याधि[18] कर भरयौ । भोग[19] जोग हह पेत ण[20] षरो[21] ॥१६॥
गरभ[22] जणम[23] मृत[24] भूष[25] रुप्यास । विविध[26] व्याधि करि भरो सरास[27] ॥
पराधीण मलमूत सथान[28] । यह भव[29] महा दोष दुष[30] षान॥१७॥
मिथ्या[31] विषय[32] कषाइन सणे[33] । चाहदाह करि दाणिम[34] घणे॥
आरत रौद्र सोक[35] भय भरे । होत भाव[36] दुषदायक षरे ॥१८॥

---

१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ निहाल, ४ इन (द्रव्य क्षेत्र भव, भाव और काल), ५ मामूली वर्णन, ६ दुख देने का कारण, ७ इन्द्रियो को अच्छे लगने वाले, ८. शुभज्ञेय, ९ प्रसग से, १० लिप्त हो जाता है, ११. अनसुहावने = अनिष्ट, १२ सयोग, १३ अशोभनीक, १४ खराव, १५ अनावृष्टि आदि ६ दैवी आपत्तियाँ, १६ भय, १७ दुष्टो द्वारा कष्ट मिलना, १८ वीमारियो, १९ भोग योग्य, २० क्षेत्र, २१ न, २२ ठीक नही, २३ गर्भ, २४ जन्म, २५. मरण, २६ भूख, २७ अनेक प्रकार की, २८ सरास = वदवू सहित, २९ मलमूत्र स्थान, ३०. भव दुखो की खानि, ३१ मिथ्या = मिथ्यात्व, ३२ सासारिक विपयो और अनेक प्रकार की कपायो मे, ३३ सना हुआ, ३४ दणिम, ३५ आर्त रौद्र शोक, ३६ भाव = जीवो के परिणाम ।

दारुण[1] सीत तथा आताप[2] । बजूपात[3] घणवृष्टि[4] अलाप ।।
आस पास पसत[5] जु समीर[6] । काल[7] दोष दायक बहुपीर ।।१६।।
अैसे[8] बाहिज[9] वस्तु समस्त । एक[10] देस द्रुप रुप दुरस्त ।।
सो यह कहन लोक विवहार । णिहचे[11] सुष दुष आपुआधार[12] ।।२०।।

।। सोरठा ।।

लोक अवस्थित गेय[13], निज निज भावण[14] परनमे[15] ।।
होय ण[16] हेया[17] देय[18], पर परनपन न आदरे ।।२१।।

।। दोहा ।।

निज इच्छा उन[19] परण मण । एक होत सुख माणि ।।
भिन्न भन्न परनमन दुख । कहत विवुध[20] पहचान ।।२२।।
मोहकरम षय उपसमत[21], होत जथारथ[22] ग्याण[23] ।।
पर[24] सजोग वियोगते, विणसै[25] दुष सुष वाणि[26] ।।२३।।
हम दुख सुख कारण नही, कारण है तुम मान ।।
मोह[27] छोडि लषि[28] लेऊ अब, भली भाति पहचान ।।२४।।

---

१ कठोर, २. गर्मी, ३ विजली का गिरना, ४. अतिवृष्टि, ५ स्पर्श करती हुई, ६ ठडी ठडी हवा, ७. काल, ८ ये सब (द्रव्य क्षेत्र भव, भाव और काल), ९ वाह्यरूप, १० एक देस=थोडे रूप मे, ११ निश्चय से, १२. स्वयं आत्मा, १३ पदार्थ, १४ परिणामो=पर्यायो, १५. परिणमन करते हैं, १६ नही, १७ हेय=छोडने योग्य, १८ आदेय=गहण करने योग्य, १९ उन पुग्दल के निमित्त से हुई जीव की वैभाविक परिणति, २० विद्वान, २१ मोह कर्मक्षयोपशम से, २२ यथार्थ=ठीक ठीक, २३ ज्ञान, २४ परद्रव्य, २५. विनसे, २६ वानि,=आदन, २७ मोह रूप परिणाम, २८ देख ।

मोह बिना जग नसत है, दुख माणत[1] है कोण ॥
सुष दुष[2] कारण मोह को, समझि गहौ किन[3] मोण[4] ॥२५॥
कुमर वचण[5] रसपाणते, हठी गहगही[6] होय ॥
मण[7] सोचै मोचै[8] णाही[9], दोलायत[10] चित होय ॥२६॥

इति श्री वैराग्योत्पत्ति—कारण भव-सम्बन्ध-निवारण श्री बृह्मगुलाल
चरित्र मध्ये परियण घर गमण, कुमरनारि सोक दसा स्त्रीजन
समझाउ कुमर-मनावन कुवर सबोधन वरणन रूप
२० सधि सपूर्ण ॥ २० ॥

१ मानत, २. सुखदुख, ३ क्यो, ४ चुप, ५. वचन रूपी रस के पीने से, ६ भौचक्की सी, ७. मन, ८ छोडना, ९ नही, १० डावाडोल ।

॥ दोहा ॥

जिण[1] के वचरण[2] प्रसादते, भव्यभए[3] वृतवान[4] ॥
सो मुणि[5] सुव्रत जिण चरण, नमो त्रिविधि[6] हितमॉण ॥१॥

॥ चालि निहालदे ॥

देखि अनुत्तर कुमर तिय सबनिको ॥
अर णिज[7] पिय[8] चलत ण[9] निज घरै जानि ॥
विह्वल[10] तण ह्वै थर[11] हरीजी ॥
श्रम[12] करपट[13] आद्रत[14] भए तण[15] लगे[16] ॥
मणुगृही[17] वडोरी[18] ए हतो[19] वाणि कुमर[20] तजो
हम ना तजैजी ॥२॥

असुबण[21] जल कर दृग दुऊ[22] भरि रहे ॥
मनु प्रघट[23] दिषावत[24] नीच ना पास ॥
कुमर जात हम जाहिगे जी ॥
सिथल[25] भऐ सुरसुभगे[26] जे वचणऊ ॥
अर णिकसत[27] रह रह बडे[28] बडे स्वास[29]
विकल[30] भई । धीर ण[31] धरैजी ॥३॥

---

१ जिन, २ वचन, ३ भव्य (वे जीव जो ससार बधन से छूटकर मोक्ष को प्राप्त हो सकेगे), ४ वृत वाले, ५ मुनि सुव्रत जिन (जैनियो के २० वें तीर्थंकर), ६ मन वचन काय, ७ निज, ८ पति, ९. न, १० विह्वल=घबडाया हुआ, ११. थर थर कापने लगी, १२ पसीना, १३ पट=वस्त्र, १४ भीग गया, १५ शरीर, १६ चुपट गया, १७ मन मे चोट लगी, १८ बहुत करारी, १९ इतनी वात से, २० कुमर ने मुझे छोड दिया है, २१. अश्रु जलकर=आसुओ से, २२ दोनो नेत्र, २३ प्रगट, २० दिखावत, २५ बेकार से, २६ स्वर सुभग, २७ निकसत, २८ लम्बे लम्बे, २९ आहें, ३० दुखी, ३१ न ।

मन सोचै अब चुप रहे ना वर्णो ॥
मै करो वीणती[1] सामुही[2] जाय ॥
जो माणे[3] तो ह्वै भली जी ॥
यह विचार सन्मुख[4] भई गुण[5] भरी ॥
अर णामो[6] चरण जुग[7] प्रीति सो धाय[8] ॥
कहति भई गद गद्[9] सुरेजी ॥४॥

अहो नाथ तुम हमणि[10] को तजत हो ॥
अर[11] करण[12] कहत वण[13] का भला वास ॥
हम किस की ह्व[14] के रहै जी ॥
भूप[15] विना जोए पिया वाहिनी[16] ॥
अर वसत, विहनी ए पिया आस ॥
त्यो तुम विन हम थिति[17] नही जी ॥५॥

जो[18] विन तर[19] वर ए पिया बल्लरी[20] ॥
अर विन वाहक[21] जो ए पिय जान[22] ॥
त्यो तुम विण हम जनम हैं जी ॥
ज्यो ससि विण दिस नहिं पिया सोहई ॥
अर विन उतसव जो बहुजना थान ॥
त्यो तुम विन हम विधि लहेजी ॥६॥

---

१ प्रार्थना, २ सामने जाकर, ३ माना जाय, ४ सामने आई, ५ गुण-वती, ६ नमी, ७ युग=जोड़ें, ८ जल्दी से, ९ गदगद् वाणी से=आह भरे वचनो से, १० हम, ११ और, १२ करन, १३ वन, १४ होकर=आश्रय पाकर, १५ (मेरे लिए आप राजा हैं), १६. आशा, १७ स्थिति, १८ ज्यो, १९ वृक्ष, २०, बेल, २१ ले जाने वाला, २२ शरीर।

तुम बिण हम विधवा[1] तनो पद धरे।
परमाणविहूनी[2] ए पिया होय ॥
होय दुखी रहे सब जायगा जी ॥
जाय मनोरथ[3] मे करावा दि ही ॥
अरपूरहि न मन की ए पिया कोय ॥
निस दिण[4] जिय[5] दाझिन[6] रहे जी ॥७॥

पट[7] भूषण[8] विधवा तिया सोहणो[9] ॥
कह पहरे सुचि[10] करि ए पिया देह ॥
तो लगि दूषे[11] सब जनाजी[12] ॥
अपणे[13] मन की ऊपजी वारता[14] ॥
अर कहे कोण[15] सो पिया एह ॥
मण हो मन घुलतो रहे जी ॥८॥

पराधीण[16] बहु नाह[17] सो भरि रही ॥
अर सभय[18] समाकुल[19] ए पिया अग ॥
कामागिनि दाही दहोजी ॥
तण[20] दुप मण[21] दुप ए पिया वचन का ॥
दुख दिय महर[22] का अधिकही चग ॥
लगो रहै तियकौ सदा जी ॥९॥

---

१ विधवा स्त्री की सी चलन, २ प्रतिष्ठित, ३ मन की इच्छाए, ४ ४ निशदिन, ५ दिल, ६ वियोगाग्नि से झुलसता रहेगा, ७ वस्त्र, ८ गहनें, ९ शोभनो, १० पवित्र, ११ दोष देते हैं, १२ लोग, १३ अपने, १४ वार्ता, १५ कौन, १६ पराधीन, १७ इच्छाओ, १८ डर सहित, १९ बहुत ही पीडित, २० तन-शरीर, २१. मन, २२ स्त्री के माता पिता का घर।

नाह[1] विहूणी[2] ए पिवा ना भली ॥
पर प्राण-विहूणी[3] होय तो सार ॥
ढकि जामे[4] औगुण[5] सवैजी[6] ॥
नारि न कोई ए पिया अवतरो[7] ॥
अर होउ[8] तौ पतिमण[9] चौरणो हार[10] ॥
और[11] भाति[12] जीवन वृथा[13] जौ ॥१०॥

हे स्वामी तुम निज छतै[14] हमनि को ॥
अव विधवा पद मत[15] भो धनी[16] देऊ ॥
मै तुम जुग पायन[17] पडो जी ॥
उठो चलो घर आपणो[18] तुम अवै ॥
अर तजो गह्यो हठ ए पिया एह[19] ॥
करो सुपित हम सवनि को जी ॥११॥

सीप[20] ण[21] मानी ए पिया हम तुम तनी[22] ॥
सो छमो हमारे अव सवै दोख ॥
तुम गुण ग्राही पुरिप छोजी ॥
सफल करो हमरा पिया जनम को ॥
अर तजो मण तनो अव सवे रोप ॥
पुरवो हम मण कामना जी ॥१२॥

---

१ पति, २ रहित, ३. प्राणो से रहित, ४ छिप जाते हैं, ५ अवगुण, ६ सव तरह से, ७ पैदा हो, ८ है, ९ पतिमन, १०. चुराने वाली, ११. अन्य, १२ तरह १३ व्यर्थ, १४ छोडने, १५ नही, १६ भाग्यशाली, १७ पैरो, १८ अपने, १९ इस अवस्था को, २० सीख-नसीहत, २१ न, २२. तुम्हारी ।

॥ दोहा ॥

विणय[1] दीणता दुष भरे, सुणि[2] इम वचन कुमार ॥
कहत भए हितमित वचन, मधुरे सुरणि[3] उचार ॥१३॥

मोहित[4] ह्वै क्यो भ्रमभरी[5], होत अधीरज वाण ॥
हम भापित तुम चित धरो, जो सुष[6] होइ अमाण[7] ॥१४॥

(चोलि भरथरी की)

कोइ[8] न काहू[9] को कही[10], होय आधेय[11] आधार[12] ॥
निज निज आश्रे[13] परनमे[14] । सकल गेय[15] अणिवार[16] ॥
क्यो भ्रम वस आश्रे चहो ॥१५॥

थावर[17] विकलत्रे[18] बिषे । कहो कोण आधार ॥
निज निज आयु प्रजत[19] लो रहे अवस्थित सार ॥
कोण हणे पोपो कहो ॥१६॥

जो आश्रै आधार है । तो इस जग मे गेय ॥
एक अवस्था रुप ही । कोण परण मे तेय ॥
नाना पन को आदरे ॥१०॥

---

१. विनय दीनता दुख, २ सुनि, ३ स्वर से, ४ झूठी ममता मे फसी, ५ बहम से भरी हुई, ६ सुख, ७ बेशुमार, ८ कोई, ९ किसी को, १०. किसी भी स्थान पर, ११ आधेय-जो आश्रय लेने वाला है, १२ जिस पर आश्रय लिया जाय, १३ आश्रय, १४ परिणमन करना, १५ ज्ञेय, १६ अनिवार्य, १७ स्थावर=एकेन्द्रिय जीव (पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और वनस्पति काय के जीव), १८ विकलत्रय (दो इद्रिय, तीन इद्रिय और चतुर इन्द्रिय जीव), १९ पर्यंत।

जे आश्रे आधार की । करे कलपना[1] मूढ[2] ॥
ते न कहूँ ठहरे सुनो । भ्रम[3]-वाहरण आरुढ[4] ॥
भव भव मे भ्रमते फिरे ॥१८॥

पुन[5] परगुरण[6] परजाय[7] सो । शोभा[8] होय ण[9] लेस[10] ॥
निज गुरण निज परजाय सो । सोहत गेय[11] सवेस[12] ॥
यह रिणह्चे[13] करि जारिणयो[14] ॥१९॥

आश्रें सोभा पर[15] थकी[16] । मारिणत[17] जो दुलदाय ॥
निज आश्रे सोभा लखो । जो सुख होय अघाय[18] ॥
और[19] उपायरण[20] दुप लह्यो ॥२०॥

स्त्री की परजाय मे । दुष दिखलाये जेह ॥
सो तैसे ही है सही । हम मानो[21] सति[22] एह ॥
अब [23]तिस नासन[24] विधि[25] करो ॥२१॥

वीतराग[26] विज्ञारण[27] मे । भजो सदा जिरण[28] देव ॥
गुर[29] रिणरग्रथ तरणी करो । भक्ति थकी बहु सेव ॥
त्याग विपरजे[30] विधि सवै[31] ॥२२॥

---

१ ख्याल, २ वेवकूफ, ३ भ्रम वाहन-भ्रम की सवारी पर, ४ सवार, ५ पुन ६ अन्य द्रव्यो के गुण, ७ पर्याय, ८ शोभा, ९ न, १० रंच मात्र, ११ पदार्थ, १२ अच्छे रूप में, १३ निश्चय, १४ जानियो, १५ दूसरे, १६ गिर जाती है, १७ मानित, १८. सतोषित, १९ अन्य, २० उपायो द्वारा, २१ मानी, २२ सत्य = सच्चे, २३ उनका, २४ नाश करने का, २५ उपाय २६ राग द्वेष रहित, २७ केवल ज्ञान, २८ जिन देव, २९ मुनिनि ग्रन्थ = अपरिगही जैन साधु, ३० उल्टे, ३१. सभी को ।

धरम[1] अहिसा[2] आचरौ । झूठ[3] अदत्तहि[4] टालि[5] ॥
परिगृह[6] की सख्या धरौ । राखौ सील[7] सभाल ॥
सील[8] बिना करणी वृथा ॥२३॥

सील बडो आभरण[9] है । सील बडो आधार[10] ॥
सील बडो धन जगत मे । वाछित[11] सुख दातार ॥
सफल करै [12]नरजनम को ॥२४॥

वाडि[13] सहित रक्षा करो । तजि विषयण[14] की चाह ॥
सिद्धि[15] भयो सब सुख करै । पुरवे[16] सकल उमाह[17] ॥२५॥
सेवौ दिढचित[18] होय कै ॥२५॥

॥ दोहा ॥

इसे वचण[19] रस पांण तै, गयो अन्तरित[20] दाह[21] ॥
वृष[22] साधण रस रुचि ऊपजी, अथिर[23] जानि जगराह॥२६॥

इति श्री वैराग्योत्पत्तिकारण भव सम्बन्ध निवारण श्री बृह्मगुलाल चरित्र मध्ये, स्त्री-पुरुष प्रश्नोत्तर बरनन रूप २१ संधि सम्पूर्ण ॥२१॥

---

१. धर्म=अणुव्रत, २. अहिसा (सकल्पी हिसा का त्याग करना), ३. झूठ (झूठ बोलने को), ४ चोरी (बिना दी हुई दूसरी चीज को लेना, ५. छोडना, ६. परिग्रह परिमाण, ७. ब्रह्मचर्य व्रत, ८. "सफल करो नरजनम को" ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है, ९ शोभा की वस्तु, १० सहारा, ११. चाहा हुआ, १२. "सुर शिवदायक है सही" ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है, १३ ऊची मेंड (खेत की सुरक्षा के लिए उसके चारो ओर ऊची मेंड) १४ ससार के पदार्थों, १५. सफलता, १६ पूर्ण करती है, १७ कार्यों को, १८. दृढचित, १९. वचन रस पान से, २० मन का, २१. मोहाग्नि सताप, २२. धर्म साधन, २३ अनित्य, २४. सासारिक मार्ग=दुनिया का वर्तमान चलन ।

॥ दोहा ॥

जलज[1] अलङ्कृत जास[2] पद[3], हाटक तरणपप चाप ॥
श्री नमि[4] जिरण को रणमत[5] हो, मिटी मकल भवताप[6] ॥१॥

॥ चौपाई ॥

ए अबला[7] समचित[8] भई । आपस माहि अवाचित ठई[9] ॥
देपे मवै कुमर की ओर । मानो साति[10] सुधारस ठौर ॥२॥

अधो भाग धृग थिरतरण[11] जास[12]। इद्रिय विपयरिण[13] माहि उदास॥
मरण[14] प्रसन्न सुमरन[15] परण[16] इष्ट । गेह दिसी रणहि[17] दीसत
दिप्ट ॥३॥

देपौ इस वय मे इह काज । इरण आरम्भौ वहु दुप साज ॥
क्यौ रिणवाहि है नाजक गात । कीनी कुमर अनोपी वात ॥४॥

कहै कहा कछु कही रण जाय । अरण वोले ही वरणे सुभाय ॥
चलौ सपी घर थिति अनुसर्‌यो । हरप-विपाद कछू मति करो ॥५॥

होरणी हो मोई यह भई । अव जो होय सुभोगौ सही ॥
निज वाइस की सोकरि लई । अब कछु उकति न उपजै नई ॥६॥

---

१ कमल, २ जिसके, ३ चरण, ४ श्रीनमिनाथ (जैनियो के २१ वें तीर्थंकर), ५ नमन, ६ ममार के दुखो की आग, ७ स्त्रिया, ८ 'स्थिर मन सोचित' ऐमा भी पाठ 'ग' प्रति मे है) ९ चुप रही, 'अवाछित ठई ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है, १० शाति, ११ स्थिर शरीर, १२ जिसका, १३ विषयो, १४ मन, १५ ध्यान, १६ पचपरमेष्ठी (अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मर्व साधु) १७ नही, १८ दीखती, १९ दृष्टि = निगाह,

इमि सब समझि गई णिज[1] थान । आगे और सुनौ बुधिवाण ॥
नगर लोग सुणि[2] वहु[3] दुष लह्यो । कुमर न आये अति हठ गह्यो ॥७॥
कहें मल्ल सो दै दै तोष[4] । सुणि सुणि उपजै मण मे रोष[5] ॥
वडे मित्र तुम घर थिति[6] लई । कुमरहि वण[7]-निवास विधि भई ॥८॥
यह न प्रीति की रीति मनोग[8] । यासो हसै सवै पुरलोग ॥
मित्र सुपहि सुष दुख दुख भोग । सो वर प्रीति सराहण[9] जोग[10] ॥९॥
देषौ[11] ससि[12] सागर के माहि । घटे वढे सम काल[13] स्वभाहि[14] ॥
सलभ[15] ध्वात अरि नासन हेत । अधिकौ कहा प्राण निज देत ॥१०॥
क्षीर[16] णीर वा पंकज भांण[17] । प्रीति सराहत जे विध्वाण[18] ॥
अधम[19] प्रीति तिल[20] तेल निहाल[21] । कारण पाय जुदे ह्वै हाल ॥११॥

त्यो तुम कुमर प्रीति हम लषी[22] । कारण पाय भिन्नता[23] अषी ॥
यो सुनि मल्ल लाज मण[24] धार । तुम ह्वै गये सुगेह मझार ॥१२॥

॥ दोहा ॥

त्यो हो वहु[25] तिय मिलि कही, मल्ल नारि सों टेरि ॥
सो भी सुणि[26] लज्जित भई, दियो ण[27] उत्तर हेरि ॥१३॥

---

१ अपने घरो को, २ सुनि, ३ वहुत दुख, ४ सतोष, ५ क्रोध, ६ स्थिति=ठहरना, ७ वैरागी, ८ मनोज्ञ, ९ प्रशसा, १० योग्य, ११ देखो, १२. चद्रमा, १३. एक ही समय में, १४ स्वभाव, १५ पतगा, १६. दूध, जल, १७ कमल और,भानु, १८. विद्वान्, १९. नीच प्रेम, २० तिल और तेल, २१ देखो, २२ लखी, २३ जुदाई, २४. मन, २५. वहुत सी स्त्रियो ने, २६. सुनि, २७. न ।

सजरा[1] सुभावी[2] पुरिप[3] जे, तिरा[4] दिल मोम समान ॥
चाहे तित को मोडिल्यो, जोग वचरा[5] विधि[6] ठाड ॥१४॥

सज्जरा[7] तरा[8] धरा[9] वचरा दे, करत सबरा[10] उपगार[11] ॥
पस वोई[12] फल देत है, चदरा तरु सहकार[13] ॥१५॥

दुरजरा[14] की परराति[15] बुरी, विरा[16] काररा दुष[17] देत ॥
नाक कटावै आपराी[18], पर असगुन के हेत ॥१६॥

॥ चौपाई ॥

नारि[19] पुरुप मिलि आपस माहि । लोक[20] कहरिा कहि मरा[21] अकुलाहि ॥
कहत भये अव करिये कहा । बुरी भई जग अपजस[22] लहा ॥१७॥
अपजस[23] वारा पुरिष जग माहि । वृथा जनम धारे सक नाहिं ॥
करि न सकै दृग[24] सरामुख सोय । बोलि सकै नहि बढि के कोय ॥१८॥

॥ दोहा ॥

मुख मलीन आकुलित चित, तन सकुचित निदान ॥
जीवित ते मरनो भलौं, अपजस सुनै न कान ॥१९॥

---

१ सज्जन, २. अच्छे परिणामी, ३ पुरुष, ४ उनका, ५ योग्य वचन, ६ तरीके से, ७ सज्जन, ८ तन, ९ धन वचन, १० सबो का, ११ उपकार, १२ गध, १३ आम्र, १४ दुर्जन, १५. कार्य करने की पद्धति, १६ विना १७. दुखदेत, १८ आपनी, १९ नारि=पुरुप-स्त्री, पुरुष, २० लोगो के कहने को, २१ मन, २२ अपयश, २३ अपयश वाला, २४ दृग सन्मुख-आखो के सामने।

अजस दाह[1] दाडिम तिया[2]। कहति भई मृदुवेरा[3] ॥
सुनो प्राण पियारे पिया, हम वच अति सुख देरा ॥२०॥

जोरा[4] उपायरा[5] सो धरे, आये[6] बृह्मगुलाल ॥
तोरा[7] उपायरा लाइये, तुम बुधिवत बिसाल[8] ॥२१॥

मथुरामल सुन इमि कही, वह नहि मारो[9] एक ॥
हठ ग्राही वह पुरिष[10] है, तजै न पकरी टेक[11] ॥२२॥

बार बार पेरित[12] भई, तिया माडि[13] हट जोर।
मल्ल अपाडे[14] होय करि। आहत[15] वचरा[16] कठोर ॥२३॥

कहे तुमारे[17] ते प्रिया, मै जाऊँ उन पास ॥
जो नहिं आये तो सुनौ, मति कीजौ हम आस ॥२४॥

यो[18] कहि कुमर करो[19] गए, कही चल्यो घर यार ॥
क्यो बैठे हठ माडि के। पुर[20] परियन[21] दुपयकार[22] ॥२५॥

---

१ ताप पीडित, २ स्त्री, ३. मीठे वचन, ४ जिन किसी, ५ प्रयत्न, ६ आंवे, ७ तिस, ८ विशाल, ९. भानै, १० पुरुष, ११ प्रतिज्ञा, १२. प्रेरित, १३. ठान ली, १४ अखाडा-कुश्ती करने की जगह (जैसे पहलवान अखाडे के लिए तैयार किया जाता है उसी तरह मल्ल को तैयार किया गया), १५. पीडित, १६. वचन, १७. तुम्हारे, १८. इस प्रकार, १९ कुमर के पास, २०. पुरवासी जन, २१. कुटुम्बी जन, २२ दुखकार।

देषौ[1] राग[2] विराग कौ, अतर[3] भाव विलास[4] ॥
वह चाहे घर वास कौं, वह चाहे वनवास ॥२६॥

इति श्री वैराग्यौत्पत्तिकारण भव संबध निवारन श्री बृह्मगुलाल चरित्र मध्ये स्त्रीजन घर आगमन पुरजन मथुरा मल सो उराहना मथुरा मल कुमर पास गमन वरणन रुप बाईसवी सधि सपूर्ण ॥२२॥

---

१ देखो, २ मोह और वैराग्य, ३ विशेषता, विचित्रता, ४ भावनाओ।

॥ दोहा ॥

मदरण[1] मार परदरण[2] करन, भरन भविक[3] मरण आस[4] ॥
रणेमनाथ[5] जिन तुम चरन, नमो हरो मम त्रास[6] ॥१॥

घर मे क्या दुष तुम लह्यौ, जो काडो सब साज ॥
पूछे मल्ल कुमार सो, जो उमढो तपकाज ॥२॥

॥ सवैया तेईसा ॥

भौगहि छांडिके जोग लियौ तुम जोग मे मीठौ[7] कहा है गुसाई ।
सेज विचित्र सकोमल[8] सुच्छ[9] तजी घर कामिरिण[10] काहे के ताई[11] ॥
इन्द्रिन के सुख छांडि प्रतक्ष[12] कहा दुख देखन सीतत ताई ।
मल्ल कहे सुरिण वृह्मगुलाल सुकाररण[13] कोरण कियौ तप आई ॥३॥

॥ उत्तर ॥

भोग किये तरण[14] रोग बढै अति जोग किये जम[15] आवै न जौरे[16] ॥
कामिनि सेज दिना दस की, पुनि जै है सवै जु कियौ कछु औरे ॥
इन्द्रिय[17] स्वाद अनेक किये नहि तृप्ति कहूँ फिरि बादत खोरे ।
वृह्मगुलाल कहे मथुरा सुनि योग बिना नहि निर्भै ठौरै[18] ॥४॥

---

१. कामदेव, २. नाश, ३. भव्यो के मन, ४. आशा, ५ नेमिनाथ (जैनियो के २३वे तीर्थकर), ६. ससार के कष्टो को, ७. भलाई, ८ सुकोमल, ९ स्वच्छ, १० युवा पत्नी ? ११ निमित्त, १२. प्रत्यक्ष, १३. विशेप कारण, १४ तन-रोग, १५. यम, १६. पास, १७ पच इद्रियो के मनोज्ञ विषय, १८. निर्भय-ठौर-वह स्थान जहा कोई डर न हो ।

॥ प्रश्न ॥

गिरभै ठौर कहाँ हम पाये[१] अवै सुख छाँडि कहा[२] दुख देखे ॥
ये अगले[३] भव की विधि भाषत[४] हाल अबै[५] सुष जात अलेखें[६] ॥
जे हे सवै मरि वेही के मारग जोगिय[७] भोगिय टारि परेषे ॥
मल्ल कहे सुनि वृह्मगुलाल वृथा दुख देखत भोग[८] विसैषे[९] ॥५॥

॥ उत्तर ॥

यो ही विचार तजे घर राज सुभोग विलास करे हम काको[१०] ॥
जो कछु देखिय सो सब नासत पुत्र कलित्र[११] पिता अर मा कौ ॥
जोवरण[१२] जीवरण[१३] जात चलौ रण[१४] रहै अपनौ तरण[१५] सुन्दर ताकौ ॥
वृह्मगुलाल कहे मथुरा सुनि अमृत छाणि पिये विष पाको ॥६॥

॥ प्रश्न ॥

जो तजि राज कियौ तप सारण तौ करि जोग कहा सुष पाये ॥
वालक वयस[१६] पियाल[१७] किए तरनायै[१८] तिया[१९] भुज भेटत आवै ॥
वृद्ध भए सव पाल कुटुम्ब सुपूरण आयु सुहोत लषा[२०] मे ॥
मल्ल कहे सुनि वृह्मगुलाल तबै[२१] दिरण[२२] चार महातप ठावे[२३] ॥७॥

---

१. पावै, २ क्यो, ३ परलोक, ४ कहना, ५ अभी का, ६ देखता नही, ७ वैराग्य, ८ भोगो, ९ विशेप-खास रूप में, १० किन के लिए, ११ स्त्री, १२ यौवन, १३ जीवन, १४. न, १५ शरीर, १६ अवस्था, १७ ख्याल, १८. जवानी, १९ स्त्री, २० मालूम हो, २१ तव-उस समय, २२. दिन, २३. धारण करें।

॥ उत्तर ॥

एकहि रूप रहो गहि के, किरा जोग करो किस भेसक[१] भेई ।
बालक ह्वै तरुनायो[२] लहयो कह वृद्ध भये कविहू किरा लेई ॥
पुत्र कुपुत्र समारा[३] दुहू[४] धरावत[५] किधो ह्वे[६] निर्धन केई ॥
ब्रह्मगुलाल कहे सुनि तू जिरा[७] के वृत रुप तिरे[८] जरा तेई[९] ॥८॥

॥ प्रश्न ॥

भोग करे फिर जोग धरे तो रहे थिरता[१०] परमारथ वाराी ॥
इद्रिन के अभिलाष[१२] वडे नहि सुदर सुद्ध सरुप प्रमाराी ॥
भोग विना वहि जोग गयो जिम[१३] द्वादस वर्ष वसी मरा काराी[१४] ॥
मल्ल कहैं सुरिा[१५] ब्रह्मगुलाल जु ऐसौ विचार करे मति प्रााराी ॥६॥

॥ उत्तर ॥

जिरा को दिढ[१६] चित्त सदा[१७] थिर है, तिरा[१८] भोग कियो न कियो तो कहा है ।
सब जाराात[१९] स्वाद जहा के तहा नउ[२०] एक छुही[२१] अनुभौई[२२] लहा है ॥
सुपीइक[२३] ध्याराा अनत सुखामृत[२४] ऐसो विचार तो आछो[२५] महा है॥
ब्रह्मगुलाल कहे सुन तो मरा मे अभिलाख विषे को रहा है ॥१०॥

---

१ भेषक, २ तरुणायो=जवानी मे आया, ३ समान, ४ दोनो, ५ धन वाला, ६ किधो=चाहे, ७ जिन पुरुषो के, ८ तरते हैं, ९ वे ही, १०. स्थिरता, ११ आत्महित, १२ विषयो की इच्छा, १३ जैसे, १४. मन कानी (कानी स्त्री मे चित्तफसा हुआ व्यक्ति का) १५ सुनि, १६. दृढचित १७. स्थिर, १८ उन्होने, १९. जानते हैं, २०. नही, २१. क्षरामात्र भी, २२ अनुभव, २३ खूब पीकर, २४ अनन्त सुख=आत्म सुख, २५ अच्छा ।

॥ प्रश्न ॥

अैसो कि जोग खरो[1] कि दिढावत भोग मे अैसी कहा परला है ॥
मौपै सुनौ करतूति[2] दुहनि[3] की कोण[4] का भाव महा निवला[5] है ॥
वा परनाम[6] रहे पर अस्तित[7] या परनाम[8] जुदे व कला है ॥
मल्ल कहे सुणि ब्रह्मगुलाल जती[9] ते कछू जु ग्रहस्थ भला है ॥११॥

॥ उत्तर ॥

जो जु जती[10] ते ग्रहस्थ भलौ है तौ राजन राज[11] तजै क्यो अयाने[12] ॥
काँपय[13] कुंजर[14] कामिनि कंचण[15] घोडे परिग्रह त्यागत थानें ॥
मोती पदारथ लाल[16] चुनी जरवा फल राऊ[17] तजे छिन माने ॥
ब्रह्मगुलाल कहे मुनि मल्ल जु तौसो गरीव कहा तजि जानै ॥१२॥

॥ प्रश्न ॥

गरीव अवे ण[18] तवै[19] हो गरीब घर छाडि के मागत गेलो[20] ॥
जाय ग्रहस्थ के होउ पगे[21] दिण पेट भरौ और अषैणिधि[22] बोलो ॥
लेंन न देत न द्रव्यण अवर[23] सख भपो रहो संषहि मोलो ॥
मल्ल कहे सुणि[24] वह्मगुलाल जु कौन हमारे फिरे अब तोलौ॥१३॥

---

१ क्या ठीक है, २ काम, ३ दोनों के, ४ किसका, ५ कमजोर, ६ परिणाम, ७ दूसरे के आश्रित, ८ अन्य रूप, ९ मुनि, १० मुनि, ११. राज्य, १२ ना समझ, १३ डरते है, १४. हाथी, १५. सोना, १६ लाल और चुन्नी (जवाहरात की किस्मे) १७. राजा, १८ अभी, १९ तभी, २० जगह-जगह, २१ पडगाहना, २२ अक्षयनिधि, २३ आकाश, २४ सुनि।

॥ उत्तर ॥

जती को प्रताप[1] कह्यौ नहि जात जिते[2] नरनाथ तिते[3] सब हीना ॥
इन्द्र[4] णरिंद्र[5] धनिद्र[6] नमे कर[7] जोरि के सन्मुख होत हे लीना ॥
जिनको दिये दाण लहे सुख सुर्ग सु सुदर देह महापरबीना[8] ॥
ब्रह्मगुलाल कहे सुनि मल्ल अैसे जती व्रत मे चितदीना ॥१४॥

॥ प्रश्न ॥

अैसो जतीत्व[9] सुनो हम ऊ पै गृहस्थ को धर्म कहा घटि जानौ ॥
औपदि[10] दांण अहार घटाव करै षट कर्म्म[11] दयारस सानौ ॥
बचै पर द्रव्थ[12] रु नारि विराणी[13] विरवा[14] तजि सैव घटै जल[15] छानौ ॥
मल्ल कहे सुनि ब्रह्मगुलाल गृहस्थ को धर्म जगत्र[16] वषानौ[17] ॥१५॥

॥ उत्तर ॥

औषदिदान अहार घटाय करे षट कर्म्म भयौ जन जौई ॥
दाण[18] विणे पर कौ उपगार प्रतीति गहै करना नित नौई ॥
तीरथ जज्ञ करे तन आदि विधान की रीति करे सब कौई ॥
ब्रह्मगुलाल कहे सुनि मल्ल जु तत्व बिना पर मोक्ष ण होई ॥१६॥

---

१ महत्व, २ जितने, ३ वे सब, ४ स्वर्गों का राजा, ५. मनुष्यो का राजा, ६ पाताल लोक का स्वामी, ७ हाथ जोडकर, ८. बडे विद्वान, ९ मुनि पना, १० औषधिदान, ११. पटकर्म (गृहस्थ के) ६ आवश्यक कर्म—१ जिन पूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, सयम, तप और दान), १२ दूसरे की वस्तुओ, १३ परस्त्री, १४ परिग्रह, १५ जल छान कर पीना, १६ तीनो लोक, १७. वखानो, १८ दान ।

॥ प्रश्न ॥

दुद्धर[1] है महाव्रत को पालिवो फाटक देह सो सहन[2] परीसा[3] ॥
सीत[4] न ताप[5] तथा जु वृष्टि[6] छुधा[7] तृषा[8] को परे अति घीसा[9]॥
षीरा[10] परे रा[11] सहाउ करौ छिरा[12] माहिं टरै परमारथ[13]
रीसा ॥
मल्ल कहे सुरिा ब्रह्मगुलाल षिसै[14] वृततै गृन जाय
छतीसा[15] ॥१७॥

॥ उत्तर ॥

वहु सुष मूल[16] जती पन को कोऊ व्रत मान धरे वृतप्रानी ॥
डुगले[17] न कही मरा[18] सजम[19] ते परनाम[20] विचार रहे निज[21]
ध्यानी ॥
जपते तपते पठते[22] गुराते जु टरे नहि टारे ते सुदर[23] वाराी ॥
ब्रह्मगुलाल कहें मथुरा सुनि दौरि चलें न गिरे गुरुज्ञानी ॥१८॥

॥ प्रश्न ॥

जाइ समे तप लेय महाजन, काल विशेष[24] रहै नही तैसो ॥
आवत जात जोई दिन आगलेस्यो घटती जो घटै तन अैसो ॥
सजम ते परनामनि सो चित आकुल व्याकुल बालक जैसो ॥
मल्ल कहे सुनि ब्रह्मगुलाल जु पचमकाल पलै वृत कैसो ॥१९॥

---

१ कठिन, २ सहन करना, ३ परीषह (क्षुधा आदि २२ परीषह), ४. ठड, ५ गर्मी, ६ वर्षा, ७ क्षुधा (भूख), ८ प्यास, ९ बहुत वडा चक्कर, १० क्षीरा=कमी, ११ नही, १२ थोडे से काल मे, १३. मुनिमार्ग, १४ चिगै, १५ दि० मुनियो के ३६ गुण हैं, १६ सुख का कारण, १७ डिगै, १८ मन, १९ सयम से, २० परिणाम, २१ आत्म ध्यानी, २२ स्वाध्याय, २३ हित-मित वचन से, २० ठीक समय ।

॥ उत्तर ॥

पचम काल कहा करै कातर[1] जीव जहा व्रत आय सभालै ॥
काहे कू कालहि षौरि[2] लगावै जती[3] तपसी जु महाव्रत[4] पालै ॥
सश्रत देह तजै सब भोग[5] उदास रहे सब स्वादणि वाले[6] ॥
ब्रह्मगुलाल कहै मथुरा सुनि ऐसो जतित्व लै पार उतालै ॥२०॥

॥ प्रश्न ॥

पाग[8] बनाइ सवार धरे सिर[9] जाइ बने कि[10] दिगबर ही जू ॥
राग[11] सुनौ कि उदास रहौ करि हो कोई कोई विचार मही जू ॥
घर वार[12] तजौ घर माहि रह्यो कि उद्यागा[13] तजौ कि रहौ
वग्ा[14] होजू ॥
कहै मल्ल गुलाल कहा[15] करिये णहि[16] पचम काल मे मोक्ष
कहौ जू ॥२१॥

॥ उत्तर ॥

पचम काल मे मोक्ष णही, इन पाल महाव्रत जाय विदेहै ॥
द्रव्य जु क्षेत्र मिले भव भाव जु काल चतुर्थ सदा रहे जे है ॥
कारन पाय के होय दिगबर कर्म्मनि पेय करे जब ते है ॥
ब्रह्मगुलाल कहे मथुरा इन भाति न मोक्ष मिलै नव मै है ॥२२॥

॥ प्रश्न ॥

उदया[१] गति आनि झकौले[२] जबे, तौ कहा करै ग्रहस्त[३] कहा ब्रह्मचारी[४] ॥
कछु ते कछू परनाम[५] करें, डगले[६] वृत ते नहि होति समारी ॥
पाय कलेस[७] विपाद वच बमि[८] डारे तबै सुमहाव्रत भारी ॥
मल्ल कहे सुनि वृह्मगुलाल लिषो[९] विधि[१०] रेप मिटै न मिटारी ॥२३॥

॥ उत्तर ॥

धर्म कियें ते जु होय बुरौ तो बुरौ ऊ भए फिरि धर्म्महि[११] ध्याये[१२]॥
जीव कियें जे सुभासुभ[१३] सचित[१४], एक रणही[१५] फिर एक सतावे ॥
कर्म्म धका[१६] भी सहारि गहै,[१७] बल ताते अरणत[१८] महाबल पावै॥
कातर[१९] काय[२०] लै कर्मथपै[२१], सुनि मल्ल गुलाल तुझै समझावैं ।२४।

---

१ अशुभ कर्मों का उदय होने पर, २ बहुत तग हो जाता है, ३ गृहस्थ, ४ ब्रह्मचारी=आत्मा के ही आनन्द को सर्वस्व मानने वाला, ५ भाव-परिणति, ६ डिग जाते हैं, ७ झगडा और रज वाले वचन, ८ वमन दे, ९ लिखी, १० भाग्य लकीर=कर्म बध, ११ धर्म को, १२ ध्यान करना, १३ शुभ और अशुभ कर्म, १४ एकत्रित, १५ नही, १७ कर्म्म का फदा, १७ नष्ट होने पर, १८ अनन्त महाबल (अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त बल आदि), १९ कातर=कायर पुरुष, २०, शरीर, २१ कर्मों की बाधता है ।

॥ पुनि उत्तर ॥

कारज[1] सिद्धि है कारण ते विण कारण कारज होइ न काऊ[2] ॥
जो[3] दधि[4] मे जु मिलो घृत तत्व[5] विना मथवे कहि काहेकू[6] पाऊं ॥
जैसो ही जाण[7] करौ तप कारन सहजहि[8] ।होय सुमोष[9] सुहाऊ ॥
वृह्मगुलाल कहे मथुरा मुनि औरहि पूछत काहे कू काऊ ॥२५॥

॥ दोहा ॥

यो वहु[10] प्रश्नोत्तर थकी[11] । मल्ल होइ प्रति बुद्ध[12] ॥
भव[13] भोगण को मगणता[14], जाणी[15] दसा[16] अशुद्ध[17]।२६।

इति श्री वैराग्योत्पतिकारण भव संवध-निवारण श्री व्रह्मगुलाल चरित्र मध्ये,
मथुरामल व्रह्मगुलाल प्रश्नोत्तर सवाद वरनन रूप २३वी
सधि समाप्त ॥२३॥

१ कार्य सिद्धि, २. किसी का, ३. जैसे, ४ दही, ५. घी वस्तु, ६. किस प्रकार, ७. ज्ञान, ८ आसानी से, ९, शुभ मोक्ष, १०. वहुत ११ थक गया, १२ चेतनता प्राप्त हुई, १३ भव भोगो से, १४ मगनता=सुख, १५ जानी, १६ दशा=अवस्था १७ विकार वाली ।

॥ दोहा ॥

पारस[1] पद परसत[2] मिटौ, भव वारसता[3] भाव ॥
समरससर[4] अवगाइमे[5] वणौ अहिणिसि[6] चाव[7] ॥१॥

॥ चौपाई ॥

मल्ल विचारत अब णिज[8] मने। घरणिवसत[9] हम जुगति[10]
णा[11] बणौं[12] ॥
नसै प्रतिज्ञा जस[13] की हानि। परभव[14] हेत न सधै विधान[15]॥२॥

यह विचारि बोले करि प्यार। वृह्मगुलाल सुनो हम यार ॥
जो ण[16] चलौ तुम घर इस बार। तौ हम भी वरतै तुम लार[17] ॥३॥

मुणि व्रत पालन सक्ति[18] न हमे। यह तुम ही सो साधन[19] पमे ॥
पुनि मध्यम[20] श्रावक[21] आचार। पालौं बृह्मचरज व्रतसार[22] ॥४॥

सुनत होय मन मुदित कुमार। मल्ल प्रतै भाषत वच सार ॥
भली भई त्यागौ घर वास। धन[23] कन[24] सुत[25] कामनि[26]
गल पास[27] ॥५॥

---

१ भगवान पार्श्वनाथ (जैनियो के २४ वे तीर्थंकर), २ स्पर्श करते ही ३ संसार मे जन्म-मरण की, ४ आत्म रस रूपी सरोवर मे, ५ अवगाहना मे, ६ दिन रात, ७ उत्साह, ८ निजमनें, ९ निवसत, १० साधना, ११ नही, १२ वनें, १३ यश, १४ आत्म कल्याण, १५ व्रत, १६ न, १७ पास, १८ शक्ति, १९. साधना = अच्छी तरह से पालना, २० बीच का मार्ग, २१. गृहस्थ धर्म, २२ सर्वश्रेष्ठ व्रत, २३ गाय भैंस आदिक, २४ अनाज, २५, संतान, २६ स्त्री, २७ गले की फास।

बसी भूत बरतत सब लोय[३] ॥
इण सो विरचै[१] विरला[२] कोय।
भामिनि[४] तन अनुराग समान। बधन[५] निबड[६] न जगमहि आन ॥६॥

॥ दोहा ॥

सारभूत गेयण[७] विषै, राग[८] होय तो होउ ।
वामा[९] तण निस्सार मे, क्यो आणे[१०] जिय[११] मोह ॥७॥
भरी धात[१२] उपधात[१३] सों, अति घिनि रोग सथान[१४]॥
पट-भूषन[१५] के जोग[१६] सो, मोहत मूढ[१७] अजान[१८] ॥८॥

॥ चौपाई ॥

लीप[१९] जूक[२०] मल जुक्त[२१] कुवास। असमारित[२२] भीषन[२३] कच[२४] जास[२५]
नैन[२६] सगोड[२७] नीर[२८] णित[२९] झरे। काण[३०] मेल लषि मन थर हरै ॥९॥
सिनक[३१] भरै नासा[३२] पुट दोय। घुआवाल[३३] पूरित अवलोह[३४]॥
त्यौं ही जास कपोल[३५] सलोम[३६]। मुकति[३७] समाण कहौ बुधि ओम ॥१०॥

---

१ त्याग को, २. कोई कोई, ३. लोग, ४. स्त्री, ५. वधन-रूप, ६ चक्र, ७. ज्ञेय पदार्थों, ८ प्रेम, ९, स्त्री तन, १० आवें, ११ जीव को मोह, १२ धातुए, १३ उपधातु, १४ स्थान, १५. वस्त्र-गहनो, १६ सयोग सो, १७. मूर्ख, १८ अज्ञानी, १९ लीखें-चुटइया, २० डीगर, २१ युक्त, २२ अगर काडे (सभाले) न जाय, २३ भीषण, २४ वाल=केश, २५ जिसके (स्त्री के) २६ नयन, २७ कीचड़, २८. आख, २९ नित, ३०. कान, ३१ रेंट, नाक का मैल, ३२ नाक के नथने, ३३ धुए के रग के वाल, ३४. देखना, ३५. गाल, ३६ लोम वाले, ३७. 'मुकर समान' ऐसा पाठ से० कू० की प्रति मे है।

मुखते[१] ग्रावत वास ग्रतीव । लार थूक करि भरो सदीव ॥
छर्दित[२] पित श्लेपम[३] राह[४] । दत कीट[५] मल श्रोनित[६] नाह ॥११॥

ग्रसमीचीन[७] वचरण[८] जल छार[९] । निकसन को मरणद्वार[१०] उदार ॥
ताहि विवेक विहीन[११] पुमान । मारिण[१२] चद्र सम रचे रिणदान ॥१२॥

श्रोनित भरे ग्रधर जुग[१३] जास[१४] । परस[१५] सरस नहि पुरवै[१६]
ग्रास[१७] ॥
त्यो हो मास पिड कुच[१८] दोइ । धरे रसौली[१९] जिमि तरण होय॥१३॥

बाहु[२०] प्रष्ठ[२१] छाती श्रमवत । ग्रति कुवास मल नाभि[२२] धरत॥
जघन-रध्र[२३] दुरगध[२४] ग्रतीव । ग्रावत छार[२५] जल सजल[२६]
सजीव ॥१४॥

मास[२७] मास प्रति श्रोनित[२८] धार । झरै महान दोष दुषकार[२९]॥
भीपन काम भुजग[३०] निवास । करै सकाम[३१] जननि को ग्रास[३२]॥१५।

---

१ मुह से, २ टट्टी, ३ श्लेषम=कफ, ४ मार्ग=द्वार, ५. कीड़ो का मैल, ६ श्रौरिणत=खून, ७ बुरे, ८ वचन, ९ खारी, १० मन, ११ वेवकूफ, १२ मनि, १३ होठो का जोडा, १४ जिसका (स्त्री का), १५. स्पर्श=परसपरस ऐसा भी पाठ 'ग' प्रति मे है, (इसका ग्रर्थ है कि ग्रापस में स्पर्श करते हैं), १६ पूरी करना, १७ ग्राशा, १८ कुच=चूची, १९ रसौली=रसौली की सी गाठ, २० भुजा, २१ पीठ, २२ सूंडी, २३ योनि, २४ दुर्गन्ध, २५ पेशाव, २६ जल सहित, २७ हर महीने, २८ स्त्रियो का मासिक धर्म, २९ दुख कारक, ३० काम रूपी सर्प, ३१ कामी पुरुषो, ३२ ग्रास=भक्षण।

भिष्टा[1] भाजरण अति अपवित्त[2] । सौषै प्राण धरम धन लित्त ॥
अहित हेत अध तरुवर[3] मूल । भव दुख सब याकै फल फूल ॥१६॥

॥ दोहा ॥

सब अनर्थ की भूमिका[4], दूरगति[5] दुषको[6] द्वार ॥
तुम याते विरकत[7] भए, उतरोगे भवपार ॥१७॥
सम्यग्दर्शन[8] आदि निस[9], असन[10] त्याग परजत[11] ॥
धारि प्रतिज्ञा फिरि गहौ, ब्रह्मचरज[12] व्रत[13] अत ॥१८॥

॥ चौपाई ॥

भूलि करौ मति तियथल[14] वास[15] । राग रहित तजि रिणरषनि[16] तास[17] ॥
तिस परजंक न[18] आसन[19] जोग । पट[20] अतर तजि वचन सजोग ॥१९॥
तन[21] अगार गरिष्ट[22] अहार । तजि पूरव[23] क्रत भोग विचार[24] ॥
मन मथ[25] कथन[26] असन दुरपूर[27] । मति कीओ तुम बुद्धि सुहूर[28] ॥२०॥

---

१ भिष्टा का वर्तन, नितम्ब, २ अपवित्र, ३ पाप वृक्ष, ४. भूमि का= प्रमुख आधार, ५ दुर्गति नरक और और पशु गति, ६ दुख, ७ विरक्त, ८. सम्यग्दर्शन, ९ रात, १० खाने का त्याग (रात्रि भोजन त्याग), ११. पर्यंत, १२ ब्रह्मचर्य व्रत, १३ वृत अन्त=जिसके अन्त में ब्रह्मचर्य व्रत है अर्थात् ४ अरण वृत (अहिंसा सत्य, अचौर्य्य और ब्रह्मचर्य), १४ स्त्री के पास, १५ रहना, १६ देखना, १७ उसका, १८. पर्यंक=पलग, १९ बैठना २० कपडा (पर्दे मे), २१ शरीर की सजावट, २२. वहुत देर मे पकने योग्य, २३ पहिले किये हुए, २४. भोगो को सोचना, २५. कामदेव, २६ कहना २७. कच्चा पक्का खाना, २८. हे अच्छी वुद्धि वाले ।

इनते[1] तै बृह्मचरज को घात । होय सही, नहि मिथ्यावात[2] ॥
निर्जन[3] थल गुरु आश्रै[4] पाय । बृह्मचरज वृत णिर्मल[5] थाय[6]।२१।

॥ दोहा ॥

बृह्मचर्यवृत फल थकी, लहै सहज[7] सिव सर्म्म[8] ॥
तो सुर्गादि क[9] रिद्धि की, कोण[10] बात है पर्म्म[11] ॥२२॥

॥ चौपाई ॥

सुणि[12] वैराग्य भरे वच[13] सार । मथुरा मल चित लह्यो करार[14]॥
समाधान[15] परियण[16] को कियो । आपुन[17] ग्यान[18] सुधारस[19] पियो ॥२३॥
करी प्रतिज्ञा मण वच काय । जिम[20] वृत साधण[21] विधि जिन[22] गाय ॥
माया[23] मिथ्या[24] अवर[25] निदान[26] । रहित प्रर्वति गही वृष[27] वाण ॥२४॥
वृह्मगुलाल धरै रिषि[28] भेष । बृह्मचरज[29] घर मल्ल असेस[30] ॥
जोवत गुर आगम[31] की राह । कोयक दिन निवसे तिहि ठाह[32] ॥२५॥

---

१ इनते, २ झूठी वात, २ एकात स्थान, ४ आश्रय, ५ निर्मल, ६ रहना है, ७ आसानी से, ८ शिवशर्म्म=मोक्षरूपी सुख, ९ स्वर्ग आदिक ऋद्धि, १० कौन सी बात, ११ परम=बढी, १२ सुनि, १३ श्रेष्ट वचन, १४ निश्चय, १५ समझाया, १६. कुटुम्बीजनो, १७ अपने आप, १८ ज्ञान, १९ अमृत रस, २०. जैसे कि, २१. साधन, २२ जिनेन्द्र देव ने कहा है, २३ माया (झलक पट), २४ मिथ्या, २५ और, २६. निदान पर भव के लिए सुखादिक की इच्छा, मिथ्या अविरत दान=ऐसा पाठ 'ग' प्रति में है, २७ धर्म सेवा, २८ मुनि भेष, २९ ब्रह्मचर्य, ३० पूर्ण रूप से, ३१ शास्त्र मार्ग, ३२ उस स्थान पर ।

॥ दोहा ॥

जे विष या[6] रस मे रचै[7], ते वूढे[8] भुव वारि[9] ॥
जे विरचे[10] भव भोगते, ते विचरे[11] भवपार[12] ॥२६॥

इति श्री वैराग्योत्पत्ति कारण भव सम्बन्ध निवारन श्री वृह्मगुलाल
चरित्र मध्ये, मथुरामल्ल वृह्मचर्य्य वृत ग्रहण प्रतिज्ञा
वरणन रुप चौवीसमी सधि सम्पूर्ण ॥२४॥

---

६ ससार के विषय भोगो मे सलग्न है, ७ डूव गये, ८ ससार रूपी समुद्र में, ९ विरक्त, १०. स्वतन्त्र होकर घूमना, ११ ससार, १२ समुद्र से पार कर।

॥ दोहा ॥

वरधमाण[1] जिनको नमो, वर्तमाण[2] जिस वेण[3] ॥
सुनि भवियण[4] वृष[5] रीति गहि, पावत वर[6] सुष चैन ॥१॥

॥ चौपाई ॥

रिपी[7] वृह्मचारी[8] ए दोह । जग सो अति उदास रुष[9] होइ ।
आसन[10] सैन[11] अहार विहार[12] । करे जिनेक्ति[13] जथा विवहार[14] ॥२॥

सत्रु मित्र तिण[15] कचण[16] माहि । राग द्वेष विन सौम्य[17] सुभाहि ॥
इष्ट[18] वदना त्रिविधि[19] त्रिकाल[20] । करत तथा थुति[21] सुरति[22] सभाल ॥३॥

ग्यान[23] अग्यान दोष छ्म[24] हेत । प्रति[25] क्रमण माही मण देत ॥
श्रुत[26] अभ्यास तथा व्युत्सर्ग[27] । तजे ण[28] आवत तण[29] उपसर्ग ॥४॥

यो निवसत कैयक[30] दिण[31] गया, गुरु आगमन जु सरधौ[32] हिया[33] ॥
कियौ विहार स्व पर हितकाज । जाणि एक थल वास अकाज ॥५॥

ग्राम नगर पुर पट्टण माहि । करे जोगथिति ममता नाहिं ॥
कही एक दिन द्वै दिण कही । चार पाच दिणतें बढ नही ॥६॥

---

१ भगवान वर्द्धमान (महावीर भगवान, जैनियो के अन्तिम यानी २४वें तीर्थंकर हैं), २ वर्तमान-अभी हाल मे मौजूद, ३ जिन शास्त्र, ४ भव्यगण, ५ धर्म मार्ग, ६ अनत सुख, ७ ऋषि-मुनि, ८ व्रह्मचारी-श्री मथुरामल्ल, ९ झुकाव, १० वैठना, ११ सोना, १२ गमन, १३ जिनेंद्र भगवान ने जैसा कहा है, उसके अनुसार, १४ व्यवहार, १५ तिण-तिनका, १६ कचन-सोना, १७ शान्त, १८ इष्ट वदना-अपने से उत्कृष्टो को नमस्कार, १९ मन वचन काय, २० त्रिकाल सुवह दोपहर और सध्या समय, २१ स्तुति, २२ स्मरण कर, २३ जानकर या वेजाने से हुए दोषो को, २४ नाश के लिए, २५ प्रति-क्रमण-की हुई भूलो का शोध करना, २६ शास्त्रो का पढना, २७ व्युत्सर्ग-त्याग, २८ नहीं, २९ तन उपसर्ग-शरीर पर कोई उपसर्ग । ३ कितने ही, ३१ दिन, ३२ श्रद्धा, ३३ हृदय में ।

कहि वृष[1] भेद प्रबोधे[2] जना । धरम लीन कीने नर घना[3] ।
द्वि[4] विध भाति शिव[5] मग दिढ[6] करे । उन्मारग[7] प्रवृत्ति पहिहरे[8] ।।७।।

तीरथ[9] जात धरम परभाव । करत दुविधि[10] तप मरण धर चाव ।।
विषय कषाय रहित चित कियौ । वरत भावना[11] वासित[12] हियौ ।।८।।

सव जीवण सौ मैत्री[13] भाव । गुणि[14] यण माहि प्रमोद[15] बढाव ।।
दुषियण[16] देषि[17] दया रस भरे । लषि[18] विपरीत[19] साम्यता[20] धरे ।।९।।

लागत उदे[21] परीसह[22] योग । रहे सुथिर अविचल[23] जो[24] भोंग[25] ।।
वा[26] हिज ते गिाज[27] सुरति सकोच[28] । प्राप्ति[29] करी माहि मरण[30] सोचि ।।१०।।

श्री जिण[31] आग्यासोस चढाइ । भव[32] छेदक चितवै उपाय ।।
विधि[33] विवाक रस ज्ञाता होइ । लोक[34] सरुप चितारे सोय ।।११।।

---

१ धर्म का उपदेश, २. वहुत ज्ञान कराया, ३ वहुतो को, ४ दो प्रकार-मुनि और श्रावक धर्म, ५ मोक्ष मार्ग, ६ दृढ, ७ खोटे मार्ग का चलन, ८ हटाते, ९. तीर्थयात्रा, १० दो प्रकार के तप (अतरग और वहिरग), ११ भावना-वैराग्योत्पादन के लिए, १२ भावनाएं, १३ मित्रता के परिणाम, १४- गुणी जनो मे, १५ देखकर प्रसन्नता, १६. दुखी जनो, १७ देखि, १८. देख, १९. उल्टी प्रवृत्ति, २० शात परिणाम, २१. कर्मोदय से, २२. वाईस परीषहो, २३ अडिग, २४ ज्यो-जैसे, २५ भवन, २६ शरीर आदि, २७ निज मन की प्रवृत्ति, २८ रोक, २९ प्राप्ति, ३० मन शोचि-मानसिक पवित्रता, ३१. श्री जिन, आज्ञा, ३२. ससार को नाश करने वाला, ३३ कर्मो की निर्जरा, ३४. लोक स्वरूप भावना ।

यो णिवाहि[1] चिर सजम भार[2]। किये पुराकृत[3] अघ सब छार[4] ॥
आयुणिकट[5] निज जानी जबै। माडीवर[6] सन्यासहि[7] तबै ॥१२॥

तजौ अहार विहार समस्त। प्रासुख[8] भूमि थए चित सुस्त[9] ॥
वस्तु स्वभाव विषे उपयोग। थापौ णिसन्देह[10] गुण[11] योग ॥१३॥

मै दृगग्याणभई[12] चिन[13] गेय। स्वे[14] अनुभव गोचर आदेय[15] ॥
वरनादिक[16] न हमारो रुप[17]। रागादिक[18] विभाव
भ्रमकूप[19] ॥१४॥

त्यो[20] ही गति[21] जात्यादिक एह। मोते भिन्न[22] रुप सब तेह[23] ॥
मै मै ही पर परहि सरुप। भयो ण[24] होय नहेइक[25] रुप ॥१५॥

यो चितवत अनसण[27] तप वृद्धि। होत भई कस काय[28] समृद्धि ॥
सूखो[29] श्रोनत[30] मास समस्त। ठठरो[31] मात्र रहे तण
अस्त[32] ॥१६॥

---

१ निर्वाह, २ सयम पालन, ३ पूर्व में किए हुए, ४ नष्ट, ५ आयु निकट शरीरात का समय समीप समझ, ६ ले लिए, ७ समाधि-मरण, ८ प्रासुक भूमि-शुद्ध भूमि, ९ स्वस्थ आत्मा मे लवीन, १०. निस्सदेह, ११ गुण स्थान। १२ दर्शन ज्ञान मयी, १३ चैतन्य रूप, १४ स्वानुभव गोचर=अपने अनुभव से ही ज्ञातव्य, १५ आदेय=ग्रहण योग्य, १६ वरण=रस गंध स्पर्श आदि गुण, १७ स्वरूप, १८ राग-द्वेष आदि विभाव परिणाम है, १९ भरम का कुआं, २० तेसे, २१ गति जाति शरीर, आगोपाग आदि नाम कर्म की ९३ प्रकृतियो मे उत्पन्न हैं, २२ अलग, २३ उससे, २४ भया हुआ, २५ नही, २६ समान स्वरूप, २७ अनसन= उपवास (चारो प्रकार के आहारो का त्याग), २८ निर्बल शरीर, २९. सूखा, ३० रक्त, ३१ हड्डियों का ढाचा, ३२. छूटने योग्य।

तो पण[1] आराधना समाज । माहि भयो थिर थित[2] सुष साज[3] ॥
विसद[4] भाव की वृद्धि समेत । तजि परजाय[5] बसे दिव षेत[6] ॥७॥
त्यो ही मथुरामल शुभचित्त । सुमरि पंच पद[7] परमपवित्त ॥
बर समाधि[8] साधन परमान । तजि निज काय लह्यो सुरथान[9] ॥१८॥
जहा करन[10] रोचित सब गेय[11] । सहज सुषद[12] सब षेत[13] मुनेय॥
बरते समय वसत[14] सदीव । प्रीति सहज सब गिबसे जीव ॥१९॥

॥ दोहा ॥

जहा सकल विधि[15] सुष मई, दुष की नाहि लगार[16] ॥
तास थान[17] मे जुगम[18] सुर, भए धरम विधि धार ॥२०॥

॥ सोरठा ॥

देपौ[19] धरम प्रभाव, नर घातक[20] भी सुर[21] भए ॥
करुणा[22] आद्रित[23] भाव, तिण पुरिषण[24] की का[25]
कथा[26] ॥२१॥
धरम सदा सुष द्वार, इस भव परभव के विषे ॥
श्री जिण भाषित सार, आणि[1] कथित दुष[2] कर सर्व ॥२२॥

---

१ पच आराधना, २. स्थिर स्थिति, ३. सुख का वढिया सामान, ४. निर्मल, ५ पर्याय=मानव शरीर, ६ दिवक्षेत्र=स्वर्गलोक, ७ पच परमेष्ठी, ८. समाधि, मरण, ९ देवस्थान, १० इद्रिया, ११. इद्रियो के, ज्ञेय=चीजें, १२ सुखद, १३ क्षेत्र=स्थान, १४ वसत ऋतु, १५ सव व्यवस्था, १६. सम्वन्ध, १७. स्थान=स्वर्ग, १८. युगमसुर=युगल सुवर=युगल देव, १९. देखो, २० मनुष्य को मारने वाला, २१ देव पर्याय प्राप्त की, २२. करुणा=दया, २३. भीगे, २४ उन पुरुषो, २५. क्या, २६. कहना ।

१ आणि=और यानी राग केपमयी, २. दुपकर=दुखकर ।

॥दोहा ॥

धन दे मरण दे वचरण दे, और देय तरण सार ॥
एक धरम सचय करो, ज्यो न त्यो न विधि धार ॥२३॥

॥ पद्धडी छद ॥

यह ब्रह्मगुलाल चरित्र सार । पूरण कीनो उर प्रीति धार ॥
वक्ता श्रोतरण को श्रेय रुप । हूजो सदैव सुष वारि कूप ॥२४॥
सवत्सर विक्रम तनो सार । रस नभ रस ससि ए अकलार ॥
वदि माघ द्वादसी सनी माझ । पूरण रिषि पुर्वाषाड माझ ॥२४॥

॥ छप्पै ॥

नमहु आदि अरहत बहुरि श्री सिद्ध चरन को ॥
आचारज उपझाय साधु जिरण वचरण वरन को ॥
नमहु उभैविधि धरम दया पूरन आचार ॥
वीत राग विज्ञान भाव सब विधि सुषकार ॥ २५॥
समवादिसरण तीरथनि को कल्यानक कालहि वरो ॥
पदनमत छत्र सिर नाय करि चरित अत मगल करो ॥ २६ ॥

इति श्री वैरागोत्पत्ति कारण भव सम्बन्ध निवारण श्री ब्रह्मगुलाल चरित्र मध्ये ब्रह्मगुलाल मथुरामल मुनि ब्रह्मगुलाल वृत निवाहन समाधि मरणमांडि देवगति प्राप्त ध्यान रूप पच्चीसमीं सधि सपूर्ण ॥२५॥

॥ दोहा ॥

जव लग जल निधि ग्रह नषत, तारावल ससि भान ॥
तव लग इह चारित प्रवर, करो जगत कल्यान ॥

॥ इति श्री ब्रह्मगुलाल चरित्र समाप्तम् ॥

विशेष शब्दकोष

पहला अध्याय

१. **बोध**—रवि-ज्ञान रूपी सूर्य ।

स्याद्वाद—"स्याद् अस्ति, स्याद नास्तिआदि" जैन दर्शन के सप्त नय, जिनसे पदार्थो का ज्ञान ठीक २ रूप मे किया जाता है ।

जिनबैन-जैन शास्त्र ।

३. **कषाय**—क्रोध, मान, माया और लोभ ।

४. **निजध्यान**—आत्मध्यान (जैन शास्त्रानुसार बिना आत्मध्यान के अनत सुखमयी मोक्ष नही प्राप्त होता, इससे परमात्मध्यान से भी बढकर आत्मध्यान हैं। जैन मुनि प्रतिदिन आत्मध्यान की साधना करते हैं ।

सुगुरु—सच्चे गुरु-जैन मुनि ।

वस्तु-स्वाभाविक धर्म-वस्तु का जो अपना भाव है वह ही उसका धर्म है। क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, सयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य है, ये आत्मा के दस स्वभाव हैं, इनका नाम ही धर्म है । जैन शास्त्रो का आशय है कि इन (१० धर्मो) के पालन करने से आत्मा अपने स्वभाव की ओर परिणति करता है ।

दूसरा अध्याय

१. **जिनजुगादि**—भगवानऋषभदेव =जैनियो के आदि तीर्थंकर ।

थापित—स्थापित ।

२ **आरजषेत**—आर्यक्षेत्र । जैनाचार्यों के कथनानुसार भारतवर्ष के "म्लेच्छ और आर्य" दो खड हैं । आर्य खड मे कभी भोग भूमि तो कभी कर्मभूमि की व्यवस्था है । एक कल्प काल मे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दो समय होते हैं, उत्सर्पिणी काल मे जीव के सुख जीवन आयु आदि वृद्धि को प्राप्त होते है,

परन्तु अवसर्पिणी काल मे इनका ह्रास होता है। अवसर्पिणी के छ कालो मे से प्रथम के तीन कालो (सुखमा सुखमा, सुखमा और सुखमा दुखमा) मे भोग भूमि की रचना रहती है। इसमे भोग भूमिया जीव जुगलिया पैदा होते हैं। यहा दस प्रकार के कल्पवृक्ष होते है, जो इन्हे खाना, कपडा, प्रकाश आदि मन वाछित भोगोपभोग की वस्तुओ को देते रहते है। भोग-भूमिया जीव कुछ भी अपनी आजीविका के लिये उद्यम नही करते। तीसरे काल मे अन्तिम समय भोग भूमि की रचना समाप्त हो जाती है, और उसके स्थान पर धीरे धीरे कर्मभूमि की व्यवस्था प्रारम्भ होने लगती है। कर्मभूमि की रचना मे कल्पवृक्ष नही रहते, जीव अपने अपने कर्म (जीविका अर्जन) को करते है।

अतिम कुलकर—आखिरी कुलकर। चौथे काल मे १४ कुलकर होते हैं और ये सब व्यवस्था करते है। इनमे आखिर कुलकर।

३. नाभिनृप—नाभिराजा। तीर्थकर ऋषभदेव के पिता।

४ कल्पवृक्ष—जैनशास्त्रानुसार ये वृक्ष विशेष होते हैं और भोगभूमि के जीवो को अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन, बढिया वस्त्र, आभूषण आदि मन वाछित रूप मे देते हैं। इस कारण भोग भूमि के जीव भोगोपभोग मे ही लीन रहते हैं।

भूष दिखावत त्रास—भूख लगने तथा खाना न मिलने से कष्ट। जब कल्पवृक्ष नष्ट हो गये, तब भोग भूमियो को खाना आदि नही मिलने लगा, वे भूख के कारण बहुत दुखी हो गये।

६ जीवन विधि—जिन्दगी रखने का तरीका। कल्पवृक्ष मिटने के बाद जब प्रजाजनो को खाना आदि मिलना बद हुआ, तब उन्होने अपने शासक-राजा नाभि-से प्रार्थना की कि वे अपनी उदर पूर्ति कैसे करे? इस पर राजा ने उन्हे बतलाया कि ईख मे से रस निकाल कर पियो।

७. आदि पुरुष—जैनियो के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव।

८ चौरासी लष पूर्व—चौरासी लाख पूर्व। पूर्व एक विशेष सख्या है।

९ जानी हरि अवधि—जैन शास्त्रो मे लिखा है कि जब जगत के जीवो

के कल्याण के निमित्त भगवान तीर्थंकर जन्म लेने को होते हैं, तब उससे ६ माह पूर्व स्वर्ग के शासक इन्द्र का सिंहासन अपने आप हिलने लगता है, इसे देखकर इन्द्र अपने अवधि ज्ञान से जान लेता है कि मनुष्य लोक मे तीर्थंकर का जन्म होगा, फिर वह अपने खजाची कुबेर को आदेश करता है कि जिस नगर मे तीर्थंकर का जन्म हो, वहा रत्नो की वर्षा होनी चाहिये।

१२. लषि सुपण मत—तीर्थंकर के गर्भ मे आने के पूर्व उनकी जननी को स्वप्न मे १६ वस्तुए दिखाई देती हैं। इन १६ वस्तुओ के अलग-अलग फल होते हैं।

१८ कर्म भूमि विधि—कर्म भूमि मे लोग अपने अपने कामो द्वारा जीविका अर्जन करके उदर पालना करते है। ये कर्म छ रूप हैं—१ असि (तलवार या शस्त्र चलाना-क्षत्रियवृत्ति) २ मसि (स्याही-लिखकर कमाना-लेख पाल आदि) ३ कृषि (खेती बाडी-कृपकवृत्ति) ४ सेवा (सेवकवृत्ति) ५ वाणिज्य (व्यापार, वणिकवृत्ति) ६।

१९ देस थापना—तीर्थंकर भगवान बनारस, कुरुक्षेत्र, आदि देशो (प्रातो) की स्थापना करते हैं, तथा उनमे कस्बा, गाव आदि की रचना करने और राजाओं को प्रजा पालन करने की विधि बतलाते हैं। भगवान ही पुरुषो के विशेष गुण को देखकर पृथक पृथक वर्गो की स्थापना करते हैं।

२२ दाण तीर्थ—भगवान ऋषभदेव ने कर्मों के नष्ट करने के उद्देश्य से जिन दीक्षा ले ली, उस समय घोर तप तपा, लोगो को यह पता नही था कि दि० जैन मुनि के आहार की विधि क्या है? इसका परिणाम यह हुआ कि भगवान ऋषभदेव को ६ माह तक निरतर अतराय होने से आहार नही हुआ था। हस्तिनापुर के राजा श्रेयास कुमार को जाति स्मरण होने से मालूम हुआ कि दिगम्बर जैन मुनि को इस प्रकार से आहार दिया जाता है। राजा श्रेयास ने श्री ऋषभदेव को आहार दिया, इससे उनके कुल की कीर्ति बढ गई।

२२. पुरुषोत्तम—इस सोभवश मे राजा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि अनेक चरम शरीरी उत्पन्न हुए हैं। जिन्होने प्रजा पालन करके अन्त मे घोर तप तपकर मोक्ष प्राप्त की है।

तृतीय अध्याय

२. पद्मनगर—प्राचीन काल मे यह एक महा नगर था, जिसमे अधिकतर पद्मावती पुरवाल बधु रहते थे। (कृपया पद्मावती नगरी नामक अध्याय को पढे)।

३. सिह धार—सिह और धार ये पद्मावती पुरवालो के दो प्रसिद्ध गोत्र हैं।

४ धनकनकचन करि भरे—धन = गौ भैंस आदि पशु, कन = अनाज, कचन = सोना। पद्मनगर के निवासी गौ भैस, विविध धान्यो और स्वर्ण आदि से सम्पन्न थे।

४. सुगुन आगरे—श्रेष्ठ गुणो के भडार।

५ दिगवर गुरु—दिगम्बर जैन मुनि।

१०. मरनवर साधि समाधि—समाधि मरण। मरण के पूर्व धीरे-धीरे परिगह आरम्भ और ममता को छोड क्रमश अन्न जल आदि का भी त्यागकर व्रतो का पालन करते हुए जो समाधि पूर्वक शरीर का त्याग करना है, उसे समाधि मरण कहते हैं।

१२ अल्ल—पद्मावती पुरवाल जाति का विख्यात पूर्व पुरुष।

१६ मध्यदेश—गगा और जमुना के बीच का इलाका (खासकर एटा, मैनपुरी, आगरा, अलीगढ जिलो का भाग।

चतुर्थ अध्याय

५ कालजीभ की उपमा—यम की भयकर जिह्वा के समान आग बडी भयानक थी, जिस प्रकार यम के सामने से बचाव नही हो सकता, ठीक इस भयानक आग से उस गाव का बचना बहुत ही कठिन था।]

५. चपला ताप मे—बिजली के समान तापमान है। जिस प्रकार बिजली की ताप बडी जल्दी भस्म करती है, उसी के समान यह भीषण आग कार्य कर रही है।

८. आरण गेय रस पगे--कोई अन्यो=स्त्री माता पिता आदि सम्वन्धियो या और वस्तुओ को लेकर ।

११ पुरवाहन को उमंगी—समस्त नगर को जलाने के लिये ही जल्दी-जल्दी बढती जा रही हैं ।

१२. फैलो तप मानो निसि भई--आग का काला-काला धुआ अधकारसा हो गया और ऐसा मालूम होने लगा मानो रात हो गई हो ।

१३. लगी झाल तन भुरता भये--आग के झुलसने से पशुओ और व्यक्तियो के शरीर बैंगन के भुरते से हो गये ।

१६ तरुवर भसम होय भूपरे--आग बडी लम्वी और भयानक थी, इसमे बडे-बडे मकान स्त्री, पुरुष, वालक बालिका, पशु पक्षी, यहा तक कि ऊचे-ऊचे पेड भी जल कर पृथ्वी पर गिर पडे ।

१६. भूमि भई जलि भस्म समान—यहा तक कि उस नगर की भूमि भी जलकर राख हो गई ।

१९. करम उदै सब बरती फबै—सभी जीव (चाहे जिस गति और पर्याय मे हो ।) अपने-अपने कर्मो के अनुसार शुभाशुभ फलो को प्राप्त करते है ।

पांचवां अध्याय

मरण थिति मत्र--मन मे उठा हुआ गुप्त-विचार ।

४ जै मंगई तो पाछें फिरी--जिससे भी कहा कि तू अपनी पुत्री का विवाह हल्ल के साथ कर दें, उसने ही मत्री के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया ।

१३ जोण कहा भूप मरण ठयौ--न मालूम राजा ने अपने मन मे क्या विचारा है ?

१७. हम कहनो सोभा फबै—हमारा कहना कुछ अच्छा तभी है, जब तुम मेरे कहे वचनो को मान लो ।

छठा अध्याय

१ कुमत नग चूर—खोटे विचार रूपी पहाडो को चूर-चूर करते हैं।

२ त्रिपति न होय रमे धरि हेत—जिस प्रकार भ्रमर कमल-रस पान करने के लिये कमल के समीप ही चक्कर काटता रहता है, उसी प्रकार हल्ल अपनी सुन्दर स्त्री के साथ रमण करते है, विषयो के सेवन करने मे उनकी अनुरक्ति अधिक बढ गई।

३ णिरखत जो चकोर थिर भेस—जिस प्रकार चकोर पक्षी अपने मन-भावन चन्द्रमा की ओर स्थिर चित्त से देखता है, उसी प्रकार हल्ल भी अपनी प्रिया का सुन्दर मुखडा देखने के इच्छुक रहते।

५ अधरण लगार—हल्ल अपनी पत्नी के होठो को अपने मुख मे लगाते और उसे सुरस मानकर पीते थे।

६ जेम रेनुका जमदग्न—श्री हल्ल अपनी स्त्री के साथ ऐसे रमण करते थे जैसे कि जमदग्न (ऋषि) अपनी पत्नी रेणुका के साथ। रेणुका यह एक नव यौवना सुन्दरी एक लब्धप्रतिष्ठ राजा की कन्या थी, किन्तु इसके पिता (राजा) ने इसका विवाह प्रसिद्ध ऋषि जमदग्नि से किया था। जमदग्नि बूढे व लब्ध प्रतिष्ठ महान् तपस्वी थे। इन दोनो से पुत्र परशुराम की उत्पत्ति हुई। वैष्णव सम्प्रदाय मे परशुराम एक प्रमुख अवतार माने गए हैं। रेणुका सुन्दरी राज कन्या व नव यौवन-सम्पन्ना थी। किन्तु जमदग्नि ऋषि बूढे थे। इधर हल्ल जवानी पार कर खूसट हो गए थे, पर उनकी स्त्री बडी सुन्दर व नव यौवना थी, इन दोनो की उपमा कविवर छत्रपति ने रेणुका जमदग्नि से दी है, जो १०० प्रतिशत ठीक बैठी है।

१० जो प्राची दिन करतार—जिस तरह से पूर्व दिशा प्रभात समय सूर्य को उगाकर दिन लाती है, उसी प्रकार पूरे नौ माह बीतने पर हल्ल की भार्या ने सुन्दर बालक को जन्मा।

११ हृदय सरोज विकसित ठयो—जिस प्रकार प्रभात काल मे सूर्य के उदय होते ही सरोवरो मे कमल खिल जाते हैं, उसी प्रकार सुन्दर बालक को

देखकर जननी का हृदय कमल प्रसन्नता से खिल उठा।

११ बाल अर्क सम मुख परकास—प्रभात कालीन सूर्य के तेज के समान बालक ब्रह्मगुलाल का सुन्दर मुख चमकता था।

११ गरभजन्म दुख तम कृतनास—ऊषा काल मे सूर्य उदय होते ही जिस प्रकार घोर अन्धकार विलीन हो जाता है, उसी प्रकार बालक के जन्म लेते ही माता के गर्भ और पुत्रजनन आदि की पीडा चली गई।

१४. पान पयोधर चन्द्र समान—जननी के स्तन पान करने से बालक ब्रह्मगुलाल का शरीर द्वितया के चन्द्रमा के समान बढने लगा। (वैद्यक शस्त्रानुसार तथा वैज्ञानिको के कथनानुसार जननी का दूध पीने से बालक मे बाल्यकाल मे ही शरीर निर्माण शक्ति, सम्पन्नता और स्नेह सवर्धन ही नही होता, बल्कि इस दूध द्वारा प्रकृति उसमे इतनी शक्ति ला देती है कि २८ वर्ष तक की आयु तक कितना ही अधिक कठिन कार्य करें अथवा स्त्री के साथ अतिशय रूप मे रति क्रिया द्वारा वीर्य क्षीण हो जाने पर भी, उसे अधिक अशक्तता का अनुभव नही हो पाता, किन्तु डिब्बे के दूध और अग्रेजी शिक्षा पद्धति ने हमारे युवको को कमजोर ही नही बनाया, बल्कि उन्हे हमारी प्राचीन सभ्यता और सस्कृति से दूर हटा दिया है।

मानो कामिनी द्रगख्वर ..ठनो—बालक ब्रह्मगुलाल का ऊँचा और अधिक चौडा माथा इतना सुन्दर व चित्ताकर्षक था कि कवि छत्रपति उसकी उपमा कामिनी के चक्षु रूपी धनुष से देते हैं और कहते हैं कि ब्रह्मा ने इसे इतना महत्त्व पूर्ण बनाया है कि एक निशाने मे ही सब पर मोहिनी फेर देता है।

१८. सजल सलोय...नैन अनूप—बालक ब्रह्मगुलाल के अनुपम सुन्दर नेत्रो की उपमा कमल दल से देते हैं। विद्वान कवि उनके अश्रुओ को जल से पुतली के हरे भाग को कमल के पत्ते और भौओ से, पलको के छोटे बालो तथा बिन्नियो को कमल के काटो को मानकर नेत्रो को लाल कमल से उपमा देते हैं। कमल दल से नेत्र की उपमा १६ आना फबती रहती हैं। दूसरी गयेथू वाली प्रति में "सजल सरोवर वर्ग स्वरूप" आदि पाठ हैं। उसका अर्थ यह

है, जल से भरे सुन्दर सरोवर मे खिले हुए कमनीय कमल दल के समान नेत्र हैं।

१६ दसरण पाति उपमा लीज—बालक गुलाल के मुख मे सुन्दर दत पक्ति ऐसी थी, मानो अनार के भीतर उसके दानो की लाइन। दात इतने स्वच्छ, सफेद तथा आकर्षक थे मानो चन्द्रमा की चारु चन्द्रिका की किरणें आकाश मडल को आलोकित कर रही हो। दातो की उपमा अनार के दानो तथा उनकी धवलता की उपमा चन्द्र किरणो मे बडी सुन्दर जच रही हैं।

सातवां अध्याय

६ मुकुर विषैं बढ गई—कविवर शिशुगुलाल की सुन्दर बाललीला को बतलाते हैं कि दर्पण मे जब वह अपने चेहरे का प्रतिबिम्ब देखते, तो झट उसे पकडने को हाथ फैलाते थे। किन्तु जब वह उनकी पकडाई मे नही आता तो घूर-घूर कर थप्पड मारते, इतने पर भी उस पर कोई असर न देखते तो बडे खीझते थे।

८ बुद्धि थकी कल्याणकववन—पढने से बुद्धि बढती है, बुद्धि से मानव हित-अनहित की पहचान कर अपने कल्याण की ओर प्रवृत्ति करता है।

११. कल्पवृक्ष—भोग भूमि मे एक प्रकार के वृक्ष होते हैं, जो इच्छित भोजन, वस्त्र, रत्न, आभूषण, प्रकाश आदि देते हैं।

११ चितामणि सार—एक प्रकार की सुन्दर मणि, जिस व्यक्ति के पास यह मणि होती है, वह व्यक्ति जिस वस्तु की भी कामना करता है, वह ही उसे मिल जाती है, ऐसी कवियो की कल्पना है।

१७ वैयाव्रत . विविध—विद्यार्थी को तन मन धन से गुरुजनो की उचित सेवा, सुश्रुषा और सम्मान करना उचित है।

आठवॉ अध्याय

२ सुहृद जण सग—अच्छे मन वाले मित्रो के साथ।

५ कौतिकरूप अनुसरी—जिनसे जनता को कौतुक (आश्चर्य) और नवीन विचारो की प्रेरणा मिल सके, उनकी ओर गुलाल की प्रवृत्ति बढ गई।

नाटक, स्वाग आदि करने लगे, उनका उद्देश्य था कि कौतूहल कर जनता को मुग्ध किया जाये ।

९. **मुकरी**—मुकरियाँ, जैसे कविवर खुसरो ने अनेक मुकरियाँ लिखी हैं । एक हिन्दी कवि ने ग्रज्यूएट पर निम्न मुकरी लिखी है —

एक वुलावे सत्तर आवैं, निज निज दुखडा रोय सुनावे,
भूकै फिरैं भरैं नहिं पेट, कहि सखि साजन, ना सखि ग्रेज्यूएट ।

पहेरी वादि—पहेलियो के जवाब सवाल । जैसे —
बाबा सोवे जा घर मे, टाग पसारे वा घर मे । उत्तर 'दिया' ।

१२. **मोर मुकुट**—गुआर = सिर पर मोर मुकुट हाथ मे वशी को ले (गोपाल कृष्ण वन) ग्वाले के समान गायो को चराने का स्वाग दिखाते ।

१४ **राघव लीला**—रामलीला, रामायण मे वर्णित रामचरित ।

१५. भरथरी तप—ग्रन्थ की सन्दर्भ कथा प्रकरण मे राजा भर्तृहरि की एक कथा पढें ।

१६ गोपीचन्द्र की रीति—ग्रन्थ की सदर्भ कथा प्रकरण मे गोपीचन्द्र का वृत्तात पढें ।

२०. **जौं जल बूंद जलज दल वहैं**—जिस प्रकार कमल के चिकने पत्ते पर जल की बूंद नही ठहरती, उसी प्रकार स्वाग, बहुरूपिया न वनने की सीख भी गुलालजी के चित्त मे नही जमी ।

नवम अध्याय

७. **नाचैं वरंगना मन को हरैं**—पुराने समय मे, यहा तक कि ३०-३५ वर्ष पूर्व तक, जैन समाज मे यह कुप्रथा थी कि विवाह या हर्ष अवसर पर वैश्या का नृत्य होता था । अब इस कुप्रथा की करीब-करीब समाप्ति सी हो गई है ।

११. **जोंनार जिमाए सार**—पद्मावती पुरवाल जैनो मे यह प्रथा है कि वर पक्ष वाला बरात ले जाने से करीब एक दिन पूर्व ज्यौनार (प्रीतिभोज) करता

है, जिसमे अपने कुटुम्बीजन, जातीय बन्धु तथा अन्य सम्बन्धियो आदि को पक्ति भोज देता है।

मनुहार विसाल—मनोहार, पद्मावती पुरवालो मे यह भी प्रथा है कि वे ज्योनार (जीमनवार) या वर पक्ष वालो को दावत देने के बाद सत्कार किये गये व्यक्तियो के सम्मुख अपनी लघुता तथा जीमने वालो की महत्ता, अपने साधनो व आयोजनो मे त्रुटि व अक्षमता को प्रदर्शन करते हुये क्षमा-याचना करते हैं, इसके उत्तर मे अतिथि गण भी सत्कार करने वाले पक्ष की प्रशसा जी खोलकर करते है। पद्मावती-पुरवाल जाति मे विवाह वाले दिन मनोहार होती है, इसमे वधूपक्ष वाला अपने कुटुम्बी, पचायत तथा सम्बन्धियो को लेकर बरात मे जाता है। अपने साथ एक पीतल की कूंड, दुशाला और अधिक से अधिक २१ रु० लेकर जाता है, इस भेंट को देकर निवेदन करता है कि "आप महान सज्जनो के योग्य न तो मैं निवास, और न स्वादिष्ट भोजन और न सत्कार की ही व्यवस्था कर सका, आप मुझे क्षमा करें, आपने मुझे निभाया है।" इसके उत्तर मे वर पक्ष वाला लडकी के पक्ष वालो के आदर-सत्कार की तारीफ करता है। इस प्रकार दोनो पक्ष परस्पर मे अनुनय, विनय और हार्दिक प्रेम प्रदर्शन करते हैं। इस क्रिया को विवाह सस्कार कराने वाले पाण्डे ही रोचक कविता के गायन के साथ कराते हैं। इसके बाद दोनो पक्षो मे मिलन क्रिया चलती है। समधी से समधी, मामा से मामा, बहनोई से बहनोई, मौसा से मौसा आदि खूब गले लगकर मिलते हैं। इस आनन्दमयी प्राचीन प्रथा से दोनो पक्षो मे केवल प्रेम सवर्ध ही नही होता, बल्कि पारस्परिक परिचय और ममता भी बढती है।

२० **किये नेग तिस दिवस**—पद्मावती पुरवालो मे जिस दिन बरात पहुँचती है, उस दिन नेगचारो मे ही अधिक समय जाता है। वे नेग हैं लग्न आना, बरात की चढत, दर्वाजा, भात पनहाई और सप्रदान आदि क्रियायें हैं। प्रथम दिन लडकी पक्ष वाले की ओर से खाना नही दिया जाता, बल्कि वर पक्ष वाला स्वय इसका प्रबन्ध करता है। प्राय सभी बरात के लिये कच्ची रसोई बनती है, इसे रूख रोटी (वृक्षो की छाया मे कच्ची रसोई) कहते हैं।

२१. भोर भये जेंई जौनार—वरात आने के दूसरे दिन खाने-पीने की व्यवस्था लडकी वाले के यहाँ होती है, इसे ज्योनार कहते हैं। "ज्योनार" मे पक्का खाना वनता है, ज्यौनार सर्वप्रथम खाना वरात मे आये हुये अजैन वन्धुओ (जिनमे वाजे वाले, नाई, कहार, भृत्यादि भी होते हैं।) को दिया जाता है वाद मे जैन वन्धु-गण खाते हैं।

२१ कामिरिण मिलि मगल धुनि चई—पद्मावती पुरवालो के विवाह मे यंह प्रथा है कि सव नेगचारो तथा विवाह की विविध क्रियाओ का प्रारम्भ और पूर्ति महिलाओ के मगलमयी गीत और गायनो मे चलती है और ये गीत भी वडे पुराने विनोद और रसपूर्ग होते हैं, इन्हे "गाली" के नाम से पुकारा जाता है।

२३. इष्ट नमन कर मंगल पाठ—पच परमेष्ठियो (अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और सर्वसाधू) को नमस्कार कर प्रथम मगल पाठ होता है। जैनियो मे यह प्रथा है कि वे प्रत्येक शुभ कार्य के आदि मे पच परमेष्ठियो को प्रणाम करते हैं।

२५. पान मान जुत कीने विदा—विवाह क्रिया हो जाने के बाद बरात जव विदा होती है, उस समय वधू पक्ष वडे सम्मान से हर बराती वन्धु का टीका करता है और उसे कपडे (खासकर गाढे की पैरावनी) भेंट होती है।

दशम अध्याय

ब्याह अपरि...प्यार—वर पक्ष तथा वधू पक्ष द्वारा विवाहोत्सव के अवसर पर एक दूसरे के प्रति जो अनेक क्रियायें और व्यवहार किये गए, उतसे दोनो पक्षो मे पारस्परिक प्रेम की वृद्धि हुई। पद्मावती पुरवाल जाति मे विवाह विधि वडी सादा तथा प्रत्येक नेगो पर लेन-देन भेंट आदि इतनी स्वल्प और सीमित रखी गई है कि गरीब और अमीर मध्यम स्थिति के गृहस्थ पर विशेष भार नही पडता। उदाहरण के लिये लग्न दर्वाजा पर कम से कम १-२ रु०, और अधिक से अधिक ५५ व ४५ रु० होते हैं। इससे अधिक कोई भी धनिक नही दे सकेगा। इसी प्रकार सोना, कपडा आदि भी वहुत मामूली होता है। विवाहो

मे व्यर्थ-व्यय बुरा समझा जाता है, लडको की सगाई केवल एक रुपया और स्वल्प मीठा देकर ही पक्की की जाती है। अब कुछ अन्य जातियो की देखा देखी पद्मावती पुरवाल जाति मे भी कही-कही अधिक सोना दहेज मे, ठहराव और व्यर्थ व्यय बढता जा रहा है, इससे जाति की प्राचीन मर्यादा को ही ठेस नही पहुँचती, अपितु पहले जैसा वैवाहिक आनन्द और दोनो पक्षो मे प्रेम नही बढता।

५. गौना रौना करि सुख लहै—पद्मावती पुरवाल जाति मे विवाह के बाद गौना और फिर रौना की रस्म है। विवाह के उसी वर्ष या तृतीय वर्ष या पाँच वर्ष बाद गौना होता है। इसमे लडकी का पिता अपनी कन्या की विदा मे वर पक्ष के सम्बन्धियो को वस्त्र, मिष्ठान्न और पुत्री को जेवर व वस्त्र आदि देता है। गौना के बाद पिता घर मे पुत्री विदा को रौना कहते है।

२३. मानो विधना भ्रमावे सोय—कविवर छत्रपति का आशय है कि कलाकार ब्रह्मगुलाल विविध स्वागो के भरने तथा उनके अनुरूप एक्टिंग करने मे इतने कुशल हो गये थे कि उनकी उपमा ब्रह्मा (सृष्टि रचयिता) से दी जाती है। जिस प्रकार ब्रह्मा अपनी रची अनोखी सृष्टि से सबो के चित को चकित करता है, उसी प्रकार कुमार ब्रह्मगुलाल ने अपने विविध-स्वागो से जनता के मन को मोहित कर लिया था।

२५ लखि भूलें जन-भूप—कुमार ब्रह्म गुलाल के स्वागो को देखकर साधारण जनता और महाराजा तक आश्चर्यान्वित हो गये।

ग्यारहवां अध्याय

२ उद्धत भयो मान पद छको—राजादिको द्वारा प्रशसा किये जाने से यह कुमार ब्रह्मगुलाल बडा मानी और उदड हो गया है।

३. वह वारिणक मृगया अधिकार—यह कुमार गृहस्थो के व्रतो का पालक है, यह किसी भी हालत मे पशुओ का शिकार नही करेगा। जैन श्रावक शिकार खेलने की क्रिया कभी भी नही कर सकता। व्रतो के धारण करने से पूर्व सप्त व्यसनो (जुआ खेलना, मास, मद्य, वेश्या, शिकार परस्त्री रमण) का पूरा त्यागी

होता है। सच्चा जैनी कभी भी जानकर किसी भी जीव का प्राण हरण नही कर सकता।

८. **निरमायौं भ्रम कूप**—कुमार ब्रह्मगुलाल सिह स्वाग बनाने मे लग गये, किन्तु प्रधानमत्रीजी का ब्रह्मगुलाल जी के अपमानित करने का यह एक भयानक षडयत्र था। अत कविवर छत्रपति जी कुवर के इस कार्य को "भ्रम कूप" बनाने की खपती हुई उपमा देते हैं।

१६. **ज्यो बिन पवन–नहिं कोय**—सिह स्वाग धारी कुमार ब्रह्मगुलाल राज दरबार मे अपने सम्मुख हिरण के बच्चे को देखते हैं तो उनकी प्रखर बुद्धि में आया कि राज दरबार मे यह हिरण का शिशु अवश्य ही महाराजा की अनुमति से लाया गया होगा, महाराज ने बुरा किया। यदि मैं (सिह स्वभाव के अनुरूप इसका वध करता हूँ, तो मेरा धर्म जाता है और यदि मैं इसको छोडता हूँ, तो कलाकार के कर्तव्य से विमुख होता हूँ।

बारहवां अध्याय

६. **ये सुमित्र···पैरक परनए**—कुमार सोचते है कि सहयोगी सखाओ ने स्वाग कार्य करने की मेरी प्रवृत्ति को बढाया, इसी कारण आज मेरे द्वारा हत्या कार्य हुआ है। अत ये सखा मेरे शत्रु के बराबर है।

११. **परि परभव बिगरो डरों**—कुमार ब्रह्मगुलाल इस पाप के कारण सभावित धन, माल और अपने प्राणो के विनाश तक की परवाह नही करते, किन्तु उन्हे केवल एक चिन्ता है कि चौरासी लाख योनियो मे सर्वोत्तम मानव जन्म पाकर भी उन्होने कोई आत्महित साधना न कर, अपना परभव बिगाड लिया। जैन शास्त्रानुसार ऐसा सुविवेक निकट भव्य-जीव के होता है।

१६. **कहीं कहीं अजगति नुमो**—ससार मे चल रही प्रवृत्ति के विपरीत तुम्हारा कहना है।

१६. **रणसन्मुख · सुरवास**—रणक्षेत्र मे शत्रु से युद्ध करता हुआ कोई मर जाता है, तो उसे स्वर्ग प्राप्त होता है। यह केवल कहावत है, किन्तु यह जन सिद्धात से विपरीत है।

२२-२३ निद्रा विकथा तथा कषाय सदीव—स्वप्न मे, कथाओ के कहने मे कषाय, स्नेह, ममता, भय, आशा आदि भावो से अन्य जीवो के प्राणो का व्याघात होता है, तो उसमे अवश्य ही हिंसा का दोष लग जाता है। यह जिनागम का कथन है, ऐसी स्थिति मे जो लोक मे कहावत है, "हते को हनिये, पाप दोष नहि गिनिये"। यह ठीक नही है।

तेरहवां अध्याय

५. उदयागति कछु जाय न कही—राजा कितना दानी प्रतापी और विवेकी है, स्वप्न मे भी इस प्रकार इनके पुत्र-वध होने का किसी को भी ध्यान न था। पूर्व के किये हुए कर्म उदय आने पर अवश्य अपना फल देते हैं। इसी सिद्धात-अनुसार राजा के किन्ही अशुभ-कर्मो के फल रूप यह दुर्घटना हुई।

१० मैं इन वडिन साथ उपकार—श्री ब्रह्मगुलाल जी के पिता हल्ल ने, आग मे सर्वस्व चले जाने के वाद, राजा का आश्रय लिया था। राजा ने ही वडे प्रयत्न से हल्ल का विवाह कराया था।

१६ जनमत' चेतणराय—यह एकत्व भावना का रूप है, जैसा कि कविवर दौलतराम ने भी कहा है।

"आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यों कहु इस जीव को, साथी सँगा न कोय॥"

चौदहवां अध्याय

१ ग्यायक ग्येयाकार—कवि का आशय है कि तीर्थंकर विमलनाथ मे जो श्रद्धा करता है, उस व्यक्ति को अपने स्वरूप का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

६. पुरधनग्रह छाडौ आस—इस नगर, धनधान्य घर आदि की ममता छोड दो।

६ कोष थान जहा होइन हाँहि—विश्व मे कोई स्थान ऐसा नही है, जहाँ हानि न हो सके, भावार्थ हाँनि होने की सर्वत्र आशका है।

१३. सब विधि वध विदारण हार—दिगम्वर मुनि का जीवन सर्वोत्तम है, क्योकि इसमें घोर तप-तपकर जीव सर्व प्रकार के कर्म वधनो से छुटकारा

पा सकता है । जैन धर्मानुसार घोर तप किए बिना इस जीव की मुक्ति नही हो सकती ।

१७. कोट्या मुणि...वरनये—जैन शास्त्रानुसार अब तक करोडो दिगम्बर मुनियो ने तप साधना कर मुक्ति प्राप्त की है । "निर्वाण काड" नामक ग्रथ मे वर्णन किया है कि किन-किन स्थानो से कितने-कितने मुनि अब तक मोक्ष गए हैं ।

पन्द्रहवां अध्याय

१. दोरण आवरण ज्ञान के—रचयिता का आशय है कि मेरा अपना ज्ञान गुण (केवल ज्ञान) ज्ञानावरण कर्म ने ढक रक्खा है, कृपया इसके आवरण (पर्दा) को दूर कर दीजिए, ऐसा होने के बाद मेरी आत्मा मे अनत ज्ञान का प्रकाश होने लगेगा ।

३. दिढ़...चित देत—वैराग्य भाव को बढाने के उद्देश्य से अनुप्रेक्षाओ (१२ भावनाओ) का चितवन करते हैं ।

५. विवहारे परमेष्ठी पंच—जैन धर्मानुसार निश्चयनय से इस जीव के लिए कोई शरण योग्य पदार्थ नही है, किन्तु व्यवहारनय से पच परमेष्ठियो (अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु) को ये अपना शरण मानते हैं । फिर भी इनको यह विश्वास है कि ये पच परमेष्ठी इस जीव को मोक्ष अथवा स्वर्ग नरक आदि शुभाशुभ गतियो को नही दे सकते, यह तो आत्मा ही स्वय कर्म वध और कर्म मोचन करता है । कर्म वध छुडाने अथवा मोक्ष मे पहुँचाने मे पच परमेष्ठी निमित्त कारण हो सकते है, उपादान कारण तो स्वय आत्मा है ।

१०. मिथ्या अविरत ..चिदराय—मिथ्यात्व, अविरत (हिंसा भूठ चौरी, कुशील और परिग्रह) योग (मन वचन और काय) कषाय (क्रोध, मान, माया, और लोभ) ये सब कर्म-बन्ध के कारण हैं । जब आत्मा मे उपर्युक्त कारण नही रहते, तो आये हुए कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध नही होता ।

गुपति . परमानन्दनिगर्व—गुप्ति (मनोगुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति), समिति (ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, और आदान निक्षेपण समिति) धर्मो (उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, सयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य) परीषहो (क्षुधातृषा आदि २२ परिषहो) को जीतना, इन क्रियाओ से कर्मो का आना रुकता है तथा आत्मा को भी परमानन्द का स्वाद मिलता है। उपर्युक्त सभी क्रियाओ को जैन मुनि को नित्य नियमित रूप से पालना पडता है। जरा से भी इनसे विचलित हुए तो मुनि धर्म मे दोष आ जाता है।

१६. गति गति माहि भ्रमे यह जीव—कविवर का आशय है कि यह जीव आत्मा धर्म के विपरीत चलता है और इसका परिणाम यह होता है कि नरक, तिर्यंच मनुष्य और देव गति में भ्रमण करता है।

सोलहवॉ अध्याय

८ भवजलधि उवारत तैंह—हे जिनेन्द्र देव! जो भव्य जीव ससार रूपी समुद्र मे डूब रहे थे, आपने अपने धर्मोपदेश रूपी हस्तावलम्बन से उनका उद्धार किया है।

६ मिथ्या नींद मोह—मोह की काली रात मे ससारी जीव मोह नीद मे अचेत पडे हुए हैं, विपय भोग रूपी चौर, आत्मा के गुणो की सम्पत्ति को चुरा रहे हैं, किन्तु हे भगवन् तुम अपनी वाणी द्वारा ससारी जीवो को सचेत करते हो।

१७. नहि गुरू इस समय जहाँ—इस समन यहाँ कोई जैन मुनि (आचार्य) नही हैं। ऐसा नियम है कि मुनि दीक्षा आचार्य से ली जाती है, किन्तु आपत-काल मे, यदि जैनाचार्य समीप में न हो तो जिनालय मे जिन प्रतिमा के सम्मुख और जैन पचो की साक्षी से यह ली जाती है।

१८ क्षमो सकल अपराध हम—मुनि दीक्षा लेने के पूर्व साधक सबसे क्षमा मागता है।

१६. जथा गति ह्वै—दिगम्बर मुनि हाल के उत्पन्न हुए बालकके समान नग्न रहते हैं और ये निर्विकार होते हैं।

२०. थापर .कही—दिगम्बर मुनि पाँच महाव्रतो को पालता है, इसमे प्रथम महाव्रत अहिसा है। ससार के समस्त प्राणियो को हिंसा का त्याग मन, वचन, और काय से तथा कृत, कारित और अनुमोदना सहित करना सो अहिंसा महाव्रत है।

२१ त्योहीं .देह—(सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्याग ये चार महाव्रत हैं) इन चार महाव्रतो की पालना भी जैन मुनि को करनी होती है।

मारग. मलमूत—जीवो की हिंसा से बचने के लिए जैन मुनि यत्नाचार-पूर्वक क्रियाओ को करते हैं, इसे समिति कहते हैं। समिति के चार भेद हैं — (१) सम्यक ईर्या समिति (चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना (२) सम्यक भाषा समिति (हित-मित-रूप प्रिय वचन बोलना) (३) सम्यक् एपणा (दिन मे एक बार शुद्ध निर्दोष आहार लेना (४) सम्यग आदान निक्षेपण समिति (देख भाल कर किसी वस्तु को उठाना व रखना और (५) सम्यग उपसर्ग समिति (निर्जीव स्थान पर मल मूत्र क्षेपण करना)।

२४ मजण आहार—जैन मुनि स्नान और दतधोवन नही करते और वे कैंची छुरा आदि से हजामत भी नही बनवा सकते, (केश बढने पर वे स्वय अपने हाथो से केश लुच कर सकते हैं) ऊनोदर यानी थोडा भोजन लेते है, वह भी खडे होकर लेते हैं।

२६. कोया.. सत्त—श्री ब्रह्मगुलाल जी ने मुनि दीक्षा लेली, किन्तु अनेक व्यक्तियो ने उनके अन्य स्वागो की भाति इसे भी स्वाग समझा, पर कुछ व्यक्तियो ने (जो उनके स्वभाव और विचारो को जानते थे), इसे वास्तविक जिन दीक्षा समझी।

सत्रहवां अध्याय

२ मोर पक्ष जोग—जैन मुनि मोर के पखो की बनी पीछी और काठ का कमडल अपने समीप रखते हैं, दोनो वस्तुओ को लेकर वे चल पडे।

६ जीव करम भोगवे—जीव चैतन्य रूप है, कर्म पुद्गल रूप है, किन्तु इन दोनो मे सम्बन्ध हो रहा है, वह भी अनादि काल से है। इसी से आत्मा की वैभाविक परिणति हो रही है। जीव अपनी भली बुरी परिणतियो से शुभा-शुभ कर्मो का बध करता है और पुन फल भोगता है। इसी तरह यह हर योनि मे दु खो को उठाता है।

८ सबही सबही सौं भये—इस जीव ने अब तक अनेको भवो मे अनेको शरीर धारण किए हैं, जो किसी जीव का आज पिता है, वह ही अन्य भवो मे उसका बेटा रहा है। इस जीव ने आज तक असख्य शरीर धारण किए हैं। इस कारण सब जीवो का आपस मे सबध हो चुका है।

११ ज्ञायक जना —ज्ञानी जन (यहा पर कविवर का आशय केवल ज्ञानी से है)।

१७ भिन्नभिन्न सब जीव अनादिक—ससार मे सब जीव पृथक्-पृथक् हैं, सब के शरीर भी भिन्न हैं, किन्तु यह जीव भूल से दूसरो (पिता, पुत्र माता, पुत्री, स्त्री आदि) को अपना समझकर ममता और स्नेह करता है। इससे यह दु खी होता है। किन्तु यह भूल इस जन्म ही की नही, बल्कि अनादि काल से चली आ रही है।

१८ कारज कह्यो—प्रत्येक कार्य के उत्पादक दो कारण हैं, (१) अत-रग और (२) बहिरग। जिस जीव ने जैसे कर्मो का बध किया है उसी के अनुसार उनका उदय होता है। उसी के अनुरूप कार्य बनता और बिगडता है। इसलिए स्वकर्मोदय अतरग कारण है। इसके अतिरिक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि अन्य वस्तुएँ (जो निमित्त मात्र हैं, वे) बहिरग कारण है।

१९ यो ही जन्म आदि—प्रत्येक जीव के जन्म और मरण का कारण अतरग आयु कर्म है, जितनी जिस जीव की आयु है, उससे वह एक क्षण भी अधिक किसी भी हालत मे जीवित नही रह सकता।

२० तीव्र मद गने—इस जीव के कर्म-बध होता है, कभी वह तीव्र परिणामो से, तो कभी मद भावो से। तीव्र परिणामो से हुआ बध कर्म का सुख-दु ख फल भी तीव्र रहेगा और मद परिणामो का मदा रहेगा। किन्तु मोह

(मोहनीय कर्म) वश विपरीत वुद्धि से यह जीव समझता है कि इस कार्य को उसने बनाया या विगाडा है। यह कार्य मैंने किया है आदि।

२१ स्वाणवृत्ति वेबही--जिस प्रकार कुत्ता दूसरे कुत्ते को देखकर स्वभावत भौकता है, उसी प्रकार मोहनीय कर्म से पीडित मोही जीव अवाछित कार्य के हो जाने पर इसे कर्मों का फल नही मानते, वल्कि व्यर्थ ही निमित्त कारण पर अपना रोप प्रकट करते हैं।

अठारवां अध्याय

१ ते पुरुष रोग--जो मनुष्य इस ससार मे धन आदि परिग्रह इस उद्देश्य से करते हैं कि इसके द्वारा हम खूब दान देगे, हमारे दान से मुनियो, ब्रह्मचारियो आदि का जप-तप और नियमो आदि का पालन होगा। कवि की दृष्टि से उनका कार्य भी पाप कर्मो के आस्रव का कारण है। (क्योकि धन सचय मे जो प्रयत्न आदि करने पडते हैं उनमें शुभ योग वहुत थोडा रहता है और पाप योग का अधिक अश रहता हैं) इस पापास्रव द्वारा जीव के जन्म मरण आदि सासारिक रोग बढ जायेगे।

२०. जो णिरास.. ह्वे जाय—जो व्यक्ति विना किसी विशेप आशा और तृष्णा के धनोपार्जन कर पाते हैं और इसमे कषाय वहुत सूक्ष्म रूप से रहती है, तो इस जीव के पुन्य कर्मों का आस्रव हो जाता है। इससे इस जीव के शरीरादि को सुख देने वाले पदार्थों का सयोग मिल जाता है, पर इस शुभास्रव से आत्म-हित नही हो पाता।

२१. सुभ . अविकार—श्री ब्रह्मगुलाल का आशय है कि शुभ योग और अशुभ योग दोनो ही ससार के निमित्त रूप हैं, अत इनको त्यागना ही श्रेष्ठ है। इसका त्याग तभी स भव है, जव मनुष्य ससार के सब परिग्रहो को छोड कर मुनि धर्म पालने लगता है, तप द्वारा कर्मो को नष्ट करता है, तव उसकी आत्मा मे केवल ज्ञान तथा अन्य आत्मीय गुण पूर्ण रूप मे प्राप्त हो जाते है।

२२. आसा करि अभेय—जब तक जीव के मन रूपी महल मे तृष्णा दीपक की आशा लौ जल रही है, यह जीव कितने ही कडे व्रतो और उग्र-तपो

को करें, पर उनका फल उसे विपरीत ही मिलेगा। जिस प्रकार दोषी ज्वर मे रोगी को किसी भी प्रकार दिया हुआ अन्न। उसे हानि ही पहुचाएगा उसी प्रकार तृष्णा और आशा के रहते साधक की सभी साधना व्यर्थ हैं।

नलिनी को सौ सुक भयो—तोते को पकडने वाले एक नली पर एक छल्ला लगा देते हैं, जैसे ही तोता उस नली के छल्ले पर बैठता है, वह छल्ला घूम जाता है, उसके साथ-साथ तोता उल्टा हो जाता है, तोता यह समझता है कि मैं फस गया हूँ। मेरा छूटना असम्भव है, पर यह उसकी भ्रान्त धारणा है, ठीक यह ही स्थिति ससारी जीव की है।

उन्नीसवां अध्याय

२ **राज कृत दोष क्षमाएँ समस्त**—श्री ब्रह्मगुलाल ने राजा से अपने अब तक के किए गए दोषो भूलो की क्षमा मागी, और राजा ने भी उन्हे क्षमा दी। जैन शास्त्रो मे ऐसा नियम है कि चोर डाकू, कातिल आदि पापी को जिन-दीक्षा नही देनी चाहिए। यदि उसे अपने पापाचारो पर घृणा है, और आत्म शुद्धि के लिए उसके हृदय मे तडपन है, तो उसके लिए भी जिन-दीक्षा का विधान है। इसके सिवाय यह भी नियम है कि जिन-दीक्षा लेने के पूर्व सभी से क्षमा मागी जाती है, तथा और जीवो के प्रति भी क्षमा भाव करना पडता है।

४ **भिक्षा-भोजन**—जैन शास्त्रो का कथन है कि दिगम्बर मुनि दिन मे एक बार निश्चित समय पर विधिपूर्वक भिक्षावृत्ति से एक ही स्थान पर शुद्ध और सादा आहार लेते हैं, अगर इनकी विधि न मिले या इनके ही निमित्त को लेकर कोई विशेष भोजन बनाया गया हो, तो आहार नही लेंगे। यदि आहार करते समय कोई अतराय आ जाय, तो वे आहार त्याग देते हैं। जैन मुनि तप साधन के लिए थोडा आहार लेते हैं, इनको आहार विधि और इनके नियम बडे कडे हैं। योग्य आहार विधि न मिलने से भगवान ऋषभ देव को ६ माह तक आहार नही हो पाया था।

बीसवां अध्याय

मोह करम . ग्याग्ण--ग्रथ-रचयिता का ग्राशय है कि मोहनीय कर्म के उदय से यह जीव शरीर ग्रादि पर पदार्थो को ग्रपना समझकर दु ख उठाता ग्रा रहा है ।

इक्कीसवॉ ग्रध्याय

१५. निज निज ग्रणिवार—ग्रथ कर्त्ता का ग्राशय यह है कि प्रत्येक प्राणी किसी ग्रन्य प्राणी के ग्राधीन नही है। वह जैसा करता है, उसके ग्रनुसार कर्म वधकर उसके फल को भोगता है। यह ही वास्तविक स्थिति है। स्त्री होने के नाते, तुम्हे मेरे ग्राश्रित नही रहना चाहिए। तुम ग्रात्मकल्याण मे लग जाग्रो।

१६. परगुण'' लेस—ग्रापका ग्रात्मा व शरीर ग्रलग है, यह स्त्री पर्याय कर्मवधन के कारण पुद्गल से हुई है। इससे कोई ग्रात्मा की शोभा नही है। तुम इस शरीर से मोह छोडकर धर्म सेवन मे लग जाग्रो। इससे ग्रापकी ग्रात्मा की शोभा होगी, साथ ही साथ तुमको परम सन्तोष भी होगा।

२२. बाडि सहित ''करो—ग्रथ रचयिता का ग्राशय यह है कि हर प्राणी के लिये ब्रह्मचर्य व्रत पालना ग्रति ग्रावश्यक है। जैन शास्त्रो मे, ग्रहिंसा, सत्य, ग्रचौर्य्य, ब्रह्मचर्य्य, परिग्रहत्याग ये व्रत वतलाये है किन्तु इन पाचो मे शील, (ब्रह्मचर्य्य) प्रधान है, इसकी स्थिति खेत की वाडि के सदृश है। खेत की रक्षा के लिए चतुर किसान उसके चारो ग्रोर वाढ (ऊची ऊची मेड) वाध देते हैं, उसी प्रकार समस्त व्रतो की रक्षा के लिए व्रती के लिए ब्रह्मचर्य्य व्रत वडा है।

तेइसवॉ ग्रध्याय

५. गिर भै पार्य—जैन शास्त्रो मे कहा गया है कि इस पचमकाल (कलिकाल) मे कोई भी जीव इस क्षेत्र से मोक्ष नही जा सकता। ग्रत श्री मथुरामल्ल कहते हैं कि यार, इस क्षेत्र से मोक्ष तो होगी नही, फिर इस सुख-मयी ससार को क्यो छोड रहे हो ?

११. वा परनाम'' कला है—मल्ल जी कहते हैं कि जैन मुनि भिक्षा वृत्ति

से अपना आहार लेते हैं, इस कारण उनका जीवन पराश्रित रहता है, किन्तु गृहस्थी मे रहते जीव स्वाधीन व सुखी रहते हैं, अत स्वाधीन गृहस्थ पराश्रित मुनि से श्रेष्ठ है ।

२२ पचमकाल''विदेह—जैन शास्त्रो का कथन है कि पचमकाल मे जीव कितना ही तप तपे, किन्तु यहाँ से मोक्ष नही हो सकती, ऐसा हो सकता है कि जीव तप तपकर सन्यासमरण कर यदि विदेह क्षेत्र मे जन्म ले और वहाँ मुनि व्रत पालन करके अष्ट कर्मों को यदि नष्ट कर दे, तो उसकी मोक्ष कर (ससार से छूट) हो सकती है ।